Visit Dwarkadheeshvastu.com For

FREE Vastu Consultancy, Music, Epics, Devotional Videos
Educational Books, Educational Videos, Wallpapers

****

All Music is also available in CD format. CD Cover can also be print with your Firm Name

****

We also provide this whole Music and Data in PENDRIVE and EXTERNAL HARD DISK.

Contact : Ankit Mishra (+91-8010381364, dwarkadheeshvastu@gmail.com)

॥ श्रीहरि ॥

महाभारत

(भाग–एक)

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

(आदिपर्व)

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
	(अनुक्रमणिकापर्व)	
१-	ग्रन्थका उपक्रम, ग्रन्थमें कहे हुए अधिकांश विषयोंकी संक्षिप्त सूची तथा इसके पाठकी महिमा	१७
	(पर्वसंग्रहपर्व)	
२-	समन्तपंचकक्षेत्रका वर्णन, अक्षौहिणी सेनाका प्रमाण, महाभारतमें वर्णित पर्वों और उनके संक्षिप्त विषयोंका संग्रह तथा महाभारतके श्रवण एवं पठनका फल	४१
	(पौष्यपर्व)	
३-	जनमेजयको सरमाका शाप, जनमेजयद्वारा सोमश्रवाका पुरोहितके पदपर वरण, आरुणि, उपमन्यु, वेद और उत्तंककी गुरुभक्ति तथा उत्तंकका सर्पयज्ञके लिये जनमेजयको प्रोत्साहन देना	६७
	(पौलोमपर्व)	
४-	कथा-प्रवेश	८४
५-	भृगुके आश्रमपर पुलोमा दानवका आगमन और उसकी अग्निदेवके साथ बातचीत	८६
६-	महर्षि च्यवनका जन्म, उनके तेजसे पुलोमा राक्षसका भस्म होना तथा भृगुका अग्निदेवको शाप देना	८९
७-	शापसे कुपित हुए अग्निदेवका अदृश्य होना और ब्रह्माजीका उनके शापको संकुचित करके उन्हें प्रसन्न करना	९०
८-	प्रमद्वराका जन्म, रुरुके साथ उसका वाग्दान तथा विवाहके पहले ही साँपके काटनेसे प्रमद्वराकी मृत्यु	९२
९-	रुरुकी आधी आयुसे प्रमद्वराका जीवित होना, रुरुके साथ उसका विवाह, रुरुका सर्पोंको मारनेका निश्चय तथा रुरु-डुण्डुभ-संवाद	९४
१०-	रुरु मुनि और डुण्डुभका संवाद	९६
११-	डुण्डुभकी आत्मकथा तथा उसके द्वारा रुरुको अहिंसाका उपदेश	९८
१२-	जनमेजयके सर्पसत्रके विषयमें रुरुकी जिज्ञासा और पिताद्वारा उसकी पूर्ति	९९
	(आस्तीकपर्व)	
१३-	जरत्कारुका अपने पितरोंके अनुरोधसे विवाहके लिये उद्यत होना	१००
१४-	जरत्कारुद्वारा वासुकिकी बहिनका पाणिग्रहण	१०३
१५-	आस्तीकका जन्म तथा मातृशापसे सर्पसत्रमें नष्ट होनेवाले नागवंशकी उनके द्वारा रक्षा	१०४
१६-	कद्रू और विनताको कश्यपजीके वरदानसे अभीष्ट पुत्रोंकी प्राप्ति	१०४
१७-	मेरुपर्वतपर अमृतके लिये विचार करनेवाले देवताओंको भगवान् नारायणका समुद्र-मन्थनके लिये आदेश	१०६
१८-	देवताओं और दैत्योंद्वारा अमृतके लिये समुद्रका मन्थन, अनेक रत्नोंके साथ अमृतकी उत्पत्ति और भगवान्‌का मोहिनीरूप धारण करके दैत्योंके हाथसे अमृत ले लेना	१०८
१९-	देवताओंका अमृतपान, देवासुरसंग्राम तथा देवताओंकी विजय	१११
२०-	कद्रू और विनताकी होड़, कद्रूद्वारा अपने पुत्रोंको शाप एवं ब्रह्माजीद्वारा उसका अनुमोदन	११५
२१-	समुद्रका विस्तारसे वर्णन	११६
२२-	नागोंद्वारा उच्चैःश्रवाकी पूँछको काली बनाना; कद्रू और विनताका समुद्रको देखते हुए आगे बढ़ना	११८

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
२३-	पराजित विनताका कद्रूकी दासी होना, गरुडकी उत्पत्ति तथा देवताओंद्वारा उनकी स्तुति	११९
२४-	गरुडके द्वारा अपने तेज और शरीरका संकोच तथा सूर्यके क्रोधजनित तीव्र तेजकी शान्तिके लिये अरुणका उनके रथपर स्थित होना	१२२
२५-	सूर्यके तापसे मूर्च्छित हुए सर्पोंकी रक्षाके लिये कद्रूद्वारा इन्द्रदेवकी स्तुति	१२३
२६-	इन्द्रद्वारा की हुई वर्षासे सर्पोंकी प्रसन्नता	१२५
२७-	रामणीयक द्वीपके मनोरम वनका वर्णन तथा गरुडका दास्यभावसे छूटनेके लिये सर्पोंसे उपाय पूछना	१२६
२८-	गरुडका अमृतके लिये जाना और अपनी माताकी आज्ञाके अनुसार निषादोंका भक्षण करना	१२७
२९-	कश्यपजीका गरुडको हाथी और कछुएके पूर्वजन्मकी कथा सुनाना, गरुडका उन दोनोंको पकड़कर एक दिव्य वटवृक्षकी शाखापर ले जाना और उस शाखाका टूटना	१२९
३०-	गरुडका कश्यपजीसे मिलना, उनकी प्रार्थनासे वालखिल्य ऋषियोंका शाखा छोड़कर तपके लिये प्रस्थान और गरुडका निर्जन पर्वतपर उस शाखाको छोड़ना	१३२
३१-	इन्द्रके द्वारा वालखिल्योंका अपमान और उनकी तपस्याके प्रभावसे अरुण एवं गरुडकी उत्पत्ति	१३६
३२-	गरुडका देवताओंके साथ युद्ध और देवताओंकी पराजय	१३९
३३-	गरुडका अमृत लेकर लौटना, मार्गमें भगवान् विष्णुसे वर पाना एवं उनपर इन्द्रके द्वारा वज्र-प्रहार	१४१
३४-	इन्द्र और गरुडकी मित्रता, गरुडका अमृत लेकर नागोंके पास आना और विनताको दासीभावसे छुड़ाना तथा इन्द्रद्वारा अमृतका अपहरण	१४३
३५-	मुख्य-मुख्य नागोंके नाम	१४५
३६-	शेषनागकी तपस्या, ब्रह्माजीसे वर-प्राप्ति तथा पृथ्वीको सिरपर धारण करना	१४६
३७-	माताके शापसे बचनेके लिये वासुकि आदि नागोंका परस्पर परामर्श	१४९
३८-	वासुकिकी बहिन जरत्कारुका जरत्कारु मुनिके साथ विवाह करनेका निश्चय	१५२
३९-	ब्रह्माजीकी आज्ञासे वासुकिका जरत्कारु मुनिके साथ अपनी बहिनको ब्याहनेके लिये प्रयत्नशील होना	१५४
४०-	जरत्कारुकी तपस्या, राजा परीक्षित्का उपाख्यान तथा राजाद्वारा मुनिके कंधेपर मृतक साँप रखनेके कारण दुःखी हुए कृशका शृंगीको उत्तेजित करना	१५५
४१-	शृंगी ऋषिका राजा परीक्षित्को शाप देना और शमीकका अपने पुत्रको शान्त करते हुए शापको अनुचित बताना	१५७
४२-	शमीकका अपने पुत्रको समझाना और गौरमुखको राजा परीक्षित्के पास भेजना, राजाद्वारा आत्मरक्षाकी व्यवस्था तथा तक्षक नाग और काश्यपकी बातचीत	१६०
४३-	तक्षकका धन देकर काश्यपको लौटा देना और छलसे राजा परीक्षित्के समीप पहुँचकर उन्हें डँसना	१६३
४४-	जनमेजयका राज्याभिषेक और विवाह	१६६
४५-	जरत्कारुको अपने पितरोंका दर्शन और उनसे वार्तालाप	१६७
४६-	जरत्कारुका शर्तके साथ विवाहके लिये उद्यत होना और नागराज वासुकिका जरत्कारु नामकी कन्याको लेकर आना	१६९
४७-	जरत्कारु मुनिका नागकन्याके साथ विवाह, नागकन्या जरत्कारुद्वारा पतिसेवा तथा पतिका उसे त्यागकर तपस्याके लिये गमन	१७१

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
४८-	वासुकि नागकी चिन्ता, बहिनद्वारा उसका निवारण तथा आस्तीकका जन्म एवं विद्याध्ययन	१७४
४९-	राजा परीक्षित्‌के धर्ममय आचार तथा उत्तम गुणोंका वर्णन, राजाका शिकारके लिये जाना और उनके द्वारा शमीक मुनिका तिरस्कार	१७६
५०-	शृंगी ऋषिका परीक्षित्‌को शाप, तक्षकका काश्यपको लौटाकर छलसे परीक्षित्‌को डँसना और पिताकी मृत्युका वृत्तान्त सुनकर जनमेजयकी तक्षकसे बदला लेनेकी प्रतिज्ञा	१७९
५१-	जनमेजयके सर्पयज्ञका उपक्रम	१८३
५२-	सर्पसत्रका आरम्भ और उसमें सर्पोंका विनाश	१८४
५३-	सर्पयज्ञके ऋत्विजोंकी नामावली, सर्पोंका भयंकर विनाश, तक्षकका इन्द्रकी शरणमें जाना तथा वासुकिका अपनी बहिनसे आस्तीकको यज्ञमें भेजनेके लिये कहना	१८५
५४-	माताकी आज्ञासे मामाको सान्त्वना देकर आस्तीकका सर्पयज्ञमें जाना	१८७
५५-	आस्तीकके द्वारा यजमान, यज्ञ, ऋत्विज्, सदस्यगण और अग्निदेवकी स्तुति-प्रशंसा	१८९
५६-	राजाका आस्तीकको वर देनेके लिये तैयार होना, तक्षक नागकी व्याकुलता तथा आस्तीकका वर माँगना	१९१
५७-	सर्पयज्ञमें दग्ध हुए प्रधान-प्रधान सर्पोंके नाम	१९४
५८-	यज्ञकी समाप्ति एवं आस्तीकका सर्पोंसे वर प्राप्त करना	१९७
	(अंशावतरणपर्व)	
५९-	महाभारतका उपक्रम	१९९
६०-	जनमेजयके यज्ञमें व्यासजीका आगमन, सत्कार तथा राजाकी प्रार्थनासे व्यासजीका वैशम्पायनजीसे महाभारत-कथा सुनानेके लिये कहना	२००
६१-	कौरव-पाण्डवोंमें फूट और युद्ध होनेके वृत्तान्तका सूत्ररूपमें निर्देश	२०२
६२-	महाभारतकी महत्ता	२०६
६३-	राजा उपरिचरका चरित्र तथा सत्यवती, व्यासादि प्रमुख पात्रोंकी संक्षिप्त जन्मकथा	२१०
६४-	ब्राह्मणोंद्वारा क्षत्रियवंशकी उत्पत्ति और वृद्धि तथा उस समयके धार्मिक राज्यका वर्णन; असुरोंका जन्म और उनके भारसे पीड़ित पृथ्वीका ब्रह्माजीकी शरणमें जाना तथा ब्रह्माजीका देवताओंको अपने अंशसे पृथ्वीपर जन्म लेनेका आदेश	२१९
	(सम्भवपर्व)	
६५-	मरीचि आदि महर्षियों तथा अदिति आदि दक्षकन्याओंके वंशका विवरण	२२३
६६-	महर्षियों तथा कश्यप-पत्नियोंकी संतान-परम्पराका वर्णन	२२७
६७-	देवता और दैत्य आदिके अंशावतारोंका दिग्दर्शन	२३२
६८-	राजा दुष्यन्तकी अद्भुत शक्ति तथा राज्यशासनकी क्षमताका वर्णन	२४२
६९-	दुष्यन्तका शिकारके लिये वनमें जाना और विविध हिंसक वन-जन्तुओंका वध करना	२४३
७०-	तपोवन और कण्वके आश्रमका वर्णन तथा राजा दुष्यन्तका उस आश्रममें प्रवेश	२४५
७१-	राजा दुष्यन्तका शकुन्तलाके साथ वार्तालाप, शकुन्तलाके द्वारा अपने जन्मका कारण बतलाना तथा उसी प्रसंगमें विश्वामित्रकी तपस्यासे इन्द्रका चिन्तित होकर मेनकाको मुनिका तपोभंग करनेके लिये भेजना	२४९
७२-	मेनका-विश्वामित्र-मिलन, कन्याकी उत्पत्ति, शकुन्त पक्षियोंके द्वारा उसकी रक्षा और कण्वका उसे अपने आश्रमपर लाकर शकुन्तला नाम रखकर पालन करना	२५४
७३-	शकुन्तला और दुष्यन्तका गान्धर्व विवाह और महर्षि कण्वके द्वारा उसका अनुमोदन	२५६
७४-	शकुन्तलाके पुत्रका जन्म, उसकी अद्भुत शक्ति, पुत्रसहित शकुन्तलाका दुष्यन्तके	

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
	यहाँ जाना, दुष्यन्त-शकुन्तला-संवाद, आकाशवाणीद्वारा शकुन्तलाकी शुद्धिका समर्थन और भरतका राज्याभिषेक	२६०
७५-	दक्ष, वैवस्वत मनु तथा उनके पुत्रोंकी उत्पत्ति; पुरूरवा, नहुष और ययातिके चरित्रोंका संक्षेपसे वर्णन	२७५
७६-	कचका शिष्यभावसे शुक्राचार्य और देवयानीकी सेवामें संलग्न होना और अनेक कष्ट सहनेके पश्चात् मृतसंजीवनी विद्या प्राप्त करना	२७९
७७-	देवयानीका कचसे पाणिग्रहणके लिये अनुरोध, कचकी अस्वीकृति तथा दोनोंका एक-दूसरेको शाप देना	२८७
७८-	देवयानी और शर्मिष्ठाका कलह, शर्मिष्ठाद्वारा कुएँमें गिरायी गयी देवयानीको ययातिका निकालना और देवयानीका शुक्राचार्यजीके साथ वार्तालाप	२८९
७९-	शुक्राचार्यद्वारा देवयानीको समझाना और देवयानीका असंतोष	२९३
८०-	शुक्राचार्यका वृषपर्वाको फटकारना तथा उसे छोड़कर जानेके लिये उद्यत होना और वृषपर्वाके आदेशसे शर्मिष्ठाका देवयानीकी दासी बनकर शुक्राचार्य तथा देवयानीको संतुष्ट करना	२९५
८१-	सखियोंसहित देवयानी और शर्मिष्ठाका वन-विहार, राजा ययातिका आगमन, देवयानीकी उनके साथ बातचीत तथा विवाह	२९८
८२-	ययातिसे देवयानीको पुत्र-प्राप्ति; ययाति और शर्मिष्ठाका एकान्त मिलन और उनसे एक पुत्रका जन्म	३०१
८३-	देवयानी और शर्मिष्ठाका संवाद, ययातिसे शर्मिष्ठाके पुत्र होनेकी बात जानकर देवयानीका रूठकर पिताके पास जाना, शुक्राचार्यका ययातिको बूढ़े होनेका शाप देना	३०४
८४-	ययातिका अपने पुत्र यदु, तुर्वसु, द्रुह्यु और अनुसे अपनी युवावस्था देकर वृद्धावस्था लेनेके लिये आग्रह और उनके अस्वीकार करनेपर उन्हें शाप देना, फिर अपने पुत्र पूरुको जरावस्था देकर उनकी युवावस्था लेना तथा उन्हें वर प्रदान करना	३०८
८५-	राजा ययातिका विषय-सेवन और वैराग्य तथा पूरुका राज्याभिषेक करके वनमें जाना	३११
८६-	वनमें राजा ययातिकी तपस्या और उन्हें स्वर्गलोककी प्राप्ति	३१४
८७-	इन्द्रके पूछनेपर ययातिका अपने पुत्र पूरुको दिये हुए उपदेशकी चर्चा करना	३१५
८८-	ययातिका स्वर्गसे पतन और अष्टकका उनसे प्रश्न करना	३१७
८९-	ययाति और अष्टकका संवाद	३२०
९०-	अष्टक और ययातिका संवाद	३२३
९१-	ययाति और अष्टकका आश्रमधर्मसम्बन्धी संवाद	३२६
९२-	अष्टक-ययाति-संवाद और ययातिद्वारा दूसरोंके दिये हुए पुण्यदानको अस्वीकार करना	३२८
९३-	राजा ययातिका वसुमान् और शिबिके प्रतिग्रहको अस्वीकार करना तथा अष्टक आदि चारों राजाओंके साथ स्वर्गमें जाना	३३१
९४-	पूरुवंशका वर्णन	३३५
९५-	दक्ष प्रजापतिसे लेकर पूरुवंश, भरतवंश एवं पाण्डुवंशकी परम्पराका वर्णन	३३९
९६-	महाभिषको ब्रह्माजीका शाप तथा शापग्रस्त वसुओंके साथ गंगाकी बातचीत	३४७
९७-	राजा प्रतीपका गंगाको पुत्रवधूके रूपमें स्वीकार करना और शान्तनुका जन्म, राज्याभिषेक तथा गंगासे मिलना	३४८
९८-	शान्तनु और गंगाका कुछ शर्तोंके साथ सम्बन्ध, वसुओंका जन्म और शापसे उद्धार तथा भीष्मकी उत्पत्ति	३५१

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
९९-	महर्षि वसिष्ठद्वारा वसुओंको शाप प्राप्त होनेकी कथा	३५४
१००-	शान्तनुके रूप, गुण और सदाचारकी प्रशंसा, गंगाजीके द्वारा सुशिक्षित पुत्रकी प्राप्ति तथा देवव्रतकी भीष्म-प्रतिज्ञा	३५७
१०१-	सत्यवतीके गर्भसे चित्रांगद और विचित्रवीर्यकी उत्पत्ति, शान्तनु और चित्रांगदका निधन तथा विचित्रवीर्यका राज्याभिषेक	३६७
१०२-	भीष्मके द्वारा स्वयंवरसे काशिराजकी कन्याओंका हरण, युद्धमें सब राजाओं तथा शाल्वकी पराजय, अम्बिका और अम्बालिकाके साथ विचित्रवीर्यका विवाह तथा निधन	३६८
१०३-	सत्यवतीका भीष्मसे राज्यग्रहण और संतानोत्पादनके लिये आग्रह तथा भीष्मके द्वारा अपनी प्रतिज्ञा बतलाते हुए उसकी अस्वीकृति	३७३
१०४-	भीष्मकी सम्मतिसे सत्यवतीद्वारा व्यासका आवाहन और व्यासजीका माताकी आज्ञासे कुरुवंशकी वृद्धिके लिये विचित्रवीर्यकी पत्नियोंके गर्भसे संतानोत्पादन करनेकी स्वीकृति देना	३७५
१०५-	व्यासजीके द्वारा विचित्रवीर्यके क्षेत्रसे धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुरकी उत्पत्ति	३८०
१०६-	महर्षि माण्डव्यका शूलीपर चढ़ाया जाना	३८२
१०७-	माण्डव्यका धर्मराजको शाप देना	३८३
१०८-	धृतराष्ट्र आदिके जन्म तथा भीष्मजीके धर्मपूर्ण शासनसे कुरुदेशकी सर्वांगीण उन्नतिका दिग्दर्शन	३८६
१०९-	राजा धृतराष्ट्रका विवाह	३८८
११०-	कुन्तीको दुर्वासासे मन्त्रकी प्राप्ति, सूर्यदेवका आवाहन तथा उनके संयोगसे कर्णका जन्म एवं कर्णके द्वारा इन्द्रको कवच और कुण्डलोंका दान	३९०
१११-	कुन्तीद्वारा स्वयंवरमें पाण्डुका वरण और उनके साथ विवाह	३९३
११२-	माद्रीके साथ पाण्डुका विवाह तथा राजा पाण्डुकी दिग्विजय	३९४
११३-	राजा पाण्डुका पत्नियोंसहित वनमें निवास तथा विदुरका विवाह	३९८
११४-	धृतराष्ट्रके गान्धारीसे एक सौ पुत्र तथा एक कन्याकी तथा सेवा करनेवाली वैश्यजातीय युवतीसे युयुत्सु नामक एक पुत्रकी उत्पत्ति	३९९
११५-	दुःशलाके जन्मकी कथा	४०२
११६-	धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंकी नामावली	४०३
११७-	राजा पाण्डुके द्वारा मृगरूपधारी मुनिका वध तथा उनसे शापकी प्राप्ति	४०५
११८-	पाण्डुका अनुताप, संन्यास लेनेका निश्चय तथा पत्नियोंके अनुरोधसे वानप्रस्थ-आश्रममें प्रवेश	४०८
११९-	पाण्डुका कुन्तीको पुत्र-प्राप्तिके लिये प्रयत्न करनेका आदेश	४१३
१२०-	कुन्तीका पाण्डुको व्युषिताश्वके मृत शरीरसे उसकी पतिव्रता पत्नी भद्राके द्वारा पुत्र-प्राप्तिका कथन	४१६
१२१-	पाण्डुका कुन्तीको समझाना और कुन्तीका पतिकी आज्ञासे पुत्रोत्पत्तिके लिये धर्मदेवताका आवाहन करनेके लिये उद्यत होना	४१८
१२२-	युधिष्ठिर, भीम और अर्जुनकी उत्पत्ति	४२१
१२३-	नकुल और सहदेवकी उत्पत्ति तथा पाण्डु-पुत्रोंके नामकरण-संस्कार	४२८
१२४-	राजा पाण्डुकी मृत्यु और माद्रीका उनके साथ चितारोहण	४३२
१२५-	ऋषियोंका कुन्ती और पाण्डवोंको लेकर हस्तिनापुर जाना और उन्हें भीष्म आदिके हाथों सौंपना	४३७
१२६-	पाण्डु और माद्रीकी अस्थियोंका दाह-संस्कार तथा भाई-बन्धुओंद्वारा उनके लिये जलांजलिदान	४४०

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
१२७	पाण्डवों तथा धृतराष्ट्रपुत्रोंकी बालक्रीड़ा, दुर्योधनका भीमसेनको विष खिलाना तथा गंगामें ढकेलना और भीमका नागलोकमें पहुँचकर आठ कुण्डोंके दिव्य रसका पान करना	४४२
१२८	भीमसेनके न आनेसे कुन्ती आदिकी चिन्ता, नागलोकसे भीमसेनका आगमन तथा उनके प्रति दुर्योधनकी कुचेष्टा	४४८
१२९	कृपाचार्य, द्रोण और अश्वत्थामाकी उत्पत्ति तथा द्रोणको परशुरामजीसे अस्त्र-शस्त्रकी प्राप्तिकी कथा	४५१
१३०	द्रोणका द्रुपदसे तिरस्कृत हो हस्तिनापुरमें आना, राजकुमारोंसे उनकी भेंट, उनकी बीटा और अँगूठीको कुएँमेंसे निकालना एवं भीष्मका उन्हें अपने यहाँ सम्मानपूर्वक रखना	४५५
१३१	द्रोणाचार्यद्वारा राजकुमारोंकी शिक्षा, एकलव्यकी गुरुभक्ति तथा आचार्यद्वारा शिष्योंकी परीक्षा	४६१
१३२	अर्जुनके द्वारा लक्ष्यवेध, द्रोणका ग्राहसे छुटकारा और अर्जुनको ब्रह्मशिर नामक अस्त्रकी प्राप्ति	४६८
१३३	राजकुमारोंका रंगभूमिमें अस्त्र-कौशल दिखाना	४६९
१३४	भीमसेन, दुर्योधन तथा अर्जुनके द्वारा अस्त्र-कौशलका प्रदर्शन	४७३
१३५	कर्णका रंगभूमिमें प्रवेश तथा राज्याभिषेक	४७५
१३६	भीमसेनके द्वारा कर्णका तिरस्कार और दुर्योधनद्वारा उसका सम्मान	४७९
१३७	द्रोणका शिष्योंद्वारा द्रुपदपर आक्रमण करवाना, अर्जुनका द्रुपदको बंदी बनाकर लाना और द्रोणद्वारा द्रुपदको आधा राज्य देकर मुक्त कर देना	४८१
१३८	युधिष्ठिरका युवराजपदपर अभिषेक, पाण्डवोंके शौर्य, कीर्ति और बलके विस्तारसे धृतराष्ट्रको चिन्ता	४८७
१३९	कणिकका धृतराष्ट्रको कूटनीतिका उपदेश	४८९

(जतुगृहपर्व)

१४०	पाण्डवोंके प्रति पुरवासियोंका अनुराग देखकर दुर्योधनकी चिन्ता	४९७
१४१	दुर्योधनका धृतराष्ट्रसे पाण्डवोंको वारणावत भेज देनेका प्रस्ताव	५००
१४२	धृतराष्ट्रके आदेशसे पाण्डवोंकी वारणावत-यात्रा	५०२
१४३	दुर्योधनके आदेशसे पुरोचनका वारणावत नगरमें लाक्षागृह बनाना	५०३
१४४	पाण्डवोंकी वारणावत-यात्रा तथा उनको विदुरका गुप्त उपदेश	५०५
१४५	वारणावतमें पाण्डवोंका स्वागत, पुरोचनका सत्कारपूर्वक उन्हें ठहराना, लाक्षागृहमें निवासकी व्यवस्था और युधिष्ठिर एवं भीमसेनकी बातचीत	५०७
१४६	विदुरके भेजे हुए खनकद्वारा लाक्षागृहमें सुरंगका निर्माण	५१०
१४७	लाक्षागृहका दाह और पाण्डवोंका सुरंगके रास्ते निकल जाना	५१२
१४८	विदुरजीके भेजे हुए नाविकका पाण्डवोंको गंगाजीके पार उतारना	५१३
१४९	धृतराष्ट्र आदिके द्वारा पाण्डवोंके लिये शोकप्रकाश एवं जलांजलिदान तथा पाण्डवोंका वनमें प्रवेश	५१६
१५०	माता कुन्तीके लिये भीमसेनका जल ले आना, माता और भाइयोंको भूमिपर सोये देखकर भीमका विषाद एवं दुर्योधनके प्रति उनका क्रोध	५२०

(हिडिम्बवधपर्व)

१५१	हिडिम्बके भेजनेसे हिडिम्बा राक्षसीका पाण्डवोंके पास आना और भीमसेनसे उसका वार्तालाप	५२३
१५२	हिडिम्बका आना, हिडिम्बाका उससे भयभीत होना और भीम तथा हिडिम्बासुरका युद्ध	५२६
१५३	हिडिम्बाका कुन्ती आदिसे अपना मनोभाव	

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
	प्रकट करना तथा भीमसेनके द्वारा हिडिम्बा-सुरका वध	५३०
१५४	युधिष्ठिरका भीमसेनको हिडिम्बाके वधसे रोकना, हिडिम्बाको भीमसेनके लिये प्रार्थना, भीमसेन और हिडिम्बाका मिलन तथा घटोत्कचकी उत्पत्ति	५३४
१५५	पाण्डवोंको व्यासजीका दर्शन और उनका एकचक्रा नगरीमें प्रवेश	५४१
	(बकवधपर्व)	
१५६	ब्राह्मणपरिवारका कष्ट दूर करनेके लिये कुन्तीकी भीमसेनसे बातचीत तथा ब्राह्मणके चिन्तापूर्ण उद्‌गार	५४२
१५७	ब्राह्मणीका स्वयं मरनेके लिये उद्यत होकर पतिसे जीवित रहनेके लिये अनुरोध करना	५४६
१५८	ब्राह्मण-कन्याके त्याग और विवेकपूर्ण वचन तथा कुन्तीका उन सबके पास जाना	५४९
१५९	कुन्तीके पूछनेपर ब्राह्मणका उनसे अपने दुःखका कारण बताना	५५१
१६०	कुन्ती और ब्राह्मणकी बातचीत	५५२
१६१	भीमसेनको राक्षसके पास भेजनेके विषयमें युधिष्ठिर और कुन्तीकी बातचीत	५५५
१६२	भीमसेनका भोजन-सामग्री लेकर बकासुरके पास जाना और स्वयं भोजन करना तथा युद्ध करके उसे मार गिराना	५५७
१६३	बकासुरके वधसे राक्षसोंका भयभीत होकर पलायन और नगरनिवासियोंकी प्रसन्नता	५५९
	(चैत्ररथपर्व)	
१६४	पाण्डवोंका एक ब्राह्मणसे विचित्र कथाएँ सुनना	५६१
१६५	द्रोणके द्वारा द्रुपदके अपमानित होनेका वृत्तान्त	५६२
१६६	द्रुपदके यज्ञसे धृष्टद्युम्न और द्रौपदीकी उत्पत्ति	५६४
१६७	कुन्तीकी अपने पुत्रोंसे पूछकर पंचालदेशमें जानेकी तैयारी	५७१
१६८	व्यासजीका पाण्डवोंको द्रौपदीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त सुनाना	५७२
१६९	पाण्डवोंकी पंचाल-यात्रा और अर्जुनके द्वारा चित्ररथ गन्धर्वकी पराजय एवं उन दोनोंकी मित्रता	५७४
१७०	सूर्यकन्या तपतीको देखकर राजा संवरणका मोहित होना	५८०
१७१	तपती और संवरणकी बातचीत	५८४
१७२	वसिष्ठजीकी सहायतासे राजा संवरणको तपतीकी प्राप्ति	५८६
१७३	गन्धर्वका वसिष्ठजीकी महत्ता बताते हुए किसी श्रेष्ठ ब्राह्मणको पुरोहित बनानेके लिये आग्रह करना	५९०
१७४	वसिष्ठजीके अद्भुत क्षमा-बलके आगे विश्वामित्रजीका पराभव	५९१
१७५	शक्तिके शापसे कल्माषपादका राक्षस होना, विश्वामित्रकी प्रेरणासे राक्षसद्वारा वसिष्ठके पुत्रोंका भक्षण और वसिष्ठका शोक	५९७
१७६	कल्माषपादका शापसे उद्धार और वसिष्ठजीके द्वारा उन्हें अश्मक नामक पुत्रकी प्राप्ति	६०१
१७७	शक्तिपुत्र पराशरका जन्म और पिताकी मृत्युका हाल सुनकर कुपित हुए पराशरको शान्त करनेके लिये वसिष्ठजीका उन्हें और्वोपाख्यान सुनाना	६०५
१७८	पितरोंद्वारा और्वके क्रोधका निवारण	६०७
१७९	और्व और पितरोंकी बातचीत तथा और्वका अपनी क्रोधाग्निको बडवानलरूपसे समुद्रमें त्यागना	६०८
१८०	पुलस्त्य आदि महर्षियोंके समझानेसे पराशरजीके द्वारा राक्षससत्रकी समाप्ति	६१०
१८१	राजा कल्माषपादको ब्राह्मणी आंगिरसीका शाप	६१२
१८२	पाण्डवोंका धौम्यको अपना पुरोहित बनाना	६१४
	(स्वयंवरपर्व)	
१८३	पाण्डवोंकी पंचालयात्रा और मार्गमें ब्राह्मणोंसे बातचीत	६१५
१८४	पाण्डवोंका द्रुपदकी राजधानीमें जाकर	

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
	कुम्हारके यहाँ रहना, स्वयंवरसभाका वर्णन तथा धृष्टद्युम्नकी घोषणा	६१७
१८५	धृष्टद्युम्नका द्रौपदीको स्वयंवरमें आये हुए राजाओंका परिचय देना	६२०
१८६	राजाओंका लक्ष्यवेधके लिये उद्योग और असफल होना	६२१
१८७	अर्जुनका लक्ष्यवेध करके द्रौपदीको प्राप्त करना	६२५
१८८	द्रुपदको मारनेके लिये उद्यत हुए राजाओंका सामना करनेके लिये भीम और अर्जुनका उद्यत होना और उनके विषयमें भगवान् श्रीकृष्णका बलरामजीसे वार्तालाप	६२८
१८९	अर्जुन और भीमसेनके द्वारा कर्ण तथा शल्यकी पराजय और द्रौपदीसहित भीम-अर्जुनका अपने डेरेपर जाना	६३१
१९०	कुन्ती, अर्जुन और युधिष्ठिरकी बातचीत, पाँचों पाण्डवोंका द्रौपदीके साथ विवाहका विचार तथा बलराम और श्रीकृष्णकी पाण्डवोंसे भेंट	६३४
१९१	धृष्टद्युम्नका गुप्तरूपसे वहाँका सब हाल देखकर राजा द्रुपदके पास आना तथा द्रौपदीके विषयमें द्रुपदका प्रश्न	६३७
	(वैवाहिकपर्व)	
१९२	धृष्टद्युम्नके द्वारा द्रौपदी तथा पाण्डवोंका हाल सुनकर राजा द्रुपदका उनके पास पुरोहितको भेजना तथा पुरोहित और युधिष्ठिरकी बातचीत	६३९
१९३	पाण्डवों और कुन्तीका द्रुपदके घरमें जाकर सम्मानित होना और राजा द्रुपदद्वारा पाण्डवोंके शील-स्वभावकी परीक्षा	६४३
१९४	द्रुपद और युधिष्ठिरकी बातचीत तथा व्यासजीका आगमन	६४५
१९५	व्यासजीके सामने द्रौपदीका पाँच पुरुषोंसे विवाह होनेके विषयमें द्रुपद, धृष्टद्युम्न और युधिष्ठिरका अपने-अपने विचार व्यक्त करना	६४८
१९६	व्यासजीका द्रुपदको पाण्डवों तथा द्रौपदीके पूर्वजन्मकी कथा सुनाकर दिव्य दृष्टि देना और द्रुपदका उनके दिव्य रूपोंकी झाँकी करना	६५०
१९७	द्रौपदीका पाँचों पाण्डवोंके साथ विवाह	६५६
१९८	कुन्तीका द्रौपदीको उपदेश और आशीर्वाद तथा भगवान् श्रीकृष्णका पाण्डवोंके लिये उपहार भेजना	६५९
	(विदुरागमनराज्यलम्भपर्व)	
१९९	पाण्डवोंके विवाहसे दुर्योधन आदिकी चिन्ता, धृतराष्ट्रका पाण्डवोंके प्रति प्रेमका दिखावा और दुर्योधनकी कुमन्त्रणा	६६०
२००	धृतराष्ट्र और दुर्योधनकी बातचीत, शत्रुओंको वशमें करनेके उपाय	६६६
२०१	पाण्डवोंको पराक्रमसे दबानेके लिये कर्णकी सम्मति	६६७
२०२	भीष्मकी दुर्योधनसे पाण्डवोंको आधा राज्य देनेकी सलाह	६६९
२०३	द्रोणाचार्यकी पाण्डवोंको उपहार भेजने और बुलानेकी सम्मति तथा कर्णके द्वारा उनकी सम्मतिका विरोध करनेपर द्रोणाचार्यकी फटकार	६७१
२०४	विदुरजीकी सम्मति—द्रोण और भीष्मके वचनोंका ही समर्थन	६७३
२०५	धृतराष्ट्रकी आज्ञासे विदुरका द्रुपदके यहाँ जाना और पाण्डवोंको हस्तिनापुर भेजनेका प्रस्ताव करना	६७५
२०६	पाण्डवोंका हस्तिनापुरमें आना और आधा राज्य पाकर इन्द्रप्रस्थ नगरका निर्माण करना एवं भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीका द्वारकाके लिये प्रस्थान	६७७
२०७	पाण्डवोंके यहाँ नारदजीका आगमन और उनमें फूट न हो, इसके लिये कुछ नियम बनानेके लिये प्रेरणा करके सुन्द और उपसुन्दकी कथाको प्रस्तावित करना	६८७

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
२०८	सुन्द-उपसुन्दको तपस्या, ब्रह्माजीके द्वारा उन्हें वर प्राप्त होना और दैत्योंके यहाँ आनन्दोत्सव	६९१
२०९	सुन्द और उपसुन्दद्वारा क्रूरतापूर्ण कर्मोंसे त्रिलोकीपर विजय प्राप्त करना	६९४
२१०	तिलोत्तमाकी उत्पत्ति, उसके रूपका आकर्षण तथा सुन्दोपसुन्दको मोहित करनेके लिये उसका प्रस्थान	६९६
२११	तिलोत्तमापर मोहित होकर सुन्द-उपसुन्दका आपसमें लड़ना और मारा जाना एवं तिलोत्तमाको ब्रह्माजीद्वारा वरप्राप्ति तथा पाण्डवोंका द्रौपदीके विषयमें नियम-निर्धारण	६९९
	(अर्जुनवनवासपर्व)	
२१२	अर्जुनके द्वारा ब्राह्मणके गोधनकी रक्षाके लिये नियमभंग और वनकी ओर प्रस्थान	७०१
२१३	अर्जुनका गंगाद्वारमें ठहरना और वहाँ उनका उलूपीके साथ मिलन	७०४
२१४	अर्जुनका पूर्वदिशाके तीर्थोंमें भ्रमण करते हुए मणिपूरमें जाकर चित्रांगदाका पाणिग्रहण करके उसके गर्भसे एक पुत्र उत्पन्न करना	७०७
२१५	अर्जुनके द्वारा वर्गा अप्सराका ग्राहयोनिसे उद्धार तथा वर्गाकी आत्मकथाका आरम्भ	७०९
२१६	वर्गाकी प्रार्थनासे अर्जुनका शेष चारों अप्सराओंको भी शापमुक्त करके मणिपूर जाना और चित्रांगदासे मिलकर गोकर्णतीर्थको प्रस्थान करना	७११
२१७	अर्जुनका प्रभासतीर्थमें श्रीकृष्णसे मिलना और उन्हींके साथ उनका रैवतक पर्वत एवं द्वारकापुरीमें आना	७१३
	(सुभद्राहरणपर्व)	
२१८	रैवतक पर्वतके उत्सवमें अर्जुनका सुभद्रापर आसक्त होना और श्रीकृष्ण तथा युधिष्ठिरकी अनुमतिसे उसे हर ले जानेका निश्चय करना	७१५
२१९	यादवोंकी युद्धके लिये तैयारी और अर्जुनके प्रति बलरामजीके क्रोधपूर्ण उद्गार	७१७
	(हरणाहरणपर्व)	
२२०	द्वारकामें अर्जुन और सुभद्राका विवाह, अर्जुनके इन्द्रप्रस्थ पहुँचनेपर श्रीकृष्ण आदिका दहेज लेकर वहाँ जाना, द्रौपदीके पुत्र एवं अभिमन्युके जन्म, संस्कार और शिक्षा	७२०
	(खाण्डवदाहपर्व)	
२२१	युधिष्ठिरके राज्यकी विशेषता, कृष्ण और अर्जुनका खाण्डववनमें जाना तथा उन दोनोंके पास ब्राह्मणवेषधारी अग्निदेवका आगमन	७२८
२२२	अग्निदेवका खाण्डववनको जलानेके लिये श्रीकृष्ण और अर्जुनसे सहायताकी याचना करना, अग्निदेव उस वनको क्यों जलाना चाहते थे, इसे बतानेके प्रसंगमें राजा श्वेतकिकी कथा	७३१
२२३	अर्जुनका अग्निकी प्रार्थना स्वीकार करके उनसे दिव्य धनुष एवं रथ आदि माँगना	७३६
२२४	अग्निदेवका अर्जुन और श्रीकृष्णको दिव्य धनुष, अक्षय तरकस, दिव्य रथ और चक्र आदि प्रदान करना तथा उन दोनोंकी सहायतासे खाण्डववनको जलाना	७३८
२२५	खाण्डववनमें जलते हुए प्राणियोंकी दुर्दशा और इन्द्रके द्वारा जल बरसाकर आग बुझानेकी चेष्टा	७४०
२२६	देवताओं आदिके साथ श्रीकृष्ण और अर्जुनका युद्ध	७४२
	(मयदर्शनपर्व)	
२२७	देवताओंकी पराजय, खाण्डववनका विनाश और मयासुरकी रक्षा	७४६
२२८	शार्ङ्गकोपाख्यान—मन्दपाल मुनिके द्वारा जरिता-शार्ङ्गिकासे पुत्रोंकी उत्पत्ति और उन्हें बचानेके लिये मुनिका अग्निदेवकी स्तुति करना	७५०

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
२२९-	जरिताका अपने बच्चोंकी रक्षाके लिये चिन्तित होकर विलाप करना	७५३
२३०-	जरिता और उसके बच्चोंका संवाद	७५५
२३१-	शार्ङ्गकोंके स्तवनसे प्रसन्न होकर अग्निदेवका उन्हें अभय देना	७५६
२३२-	मन्दपालका अपने बाल-बच्चोंसे मिलना	७५८
२३३-	इन्द्रदेवका श्रीकृष्ण और अर्जुनको वरदान तथा श्रीकृष्ण, अर्जुन और मयासुरका अग्निसे विदा लेकर एक साथ यमुनातटपर बैठना	७६१

(आदिपर्व सम्पूर्ण)

सभापर्व

(सभाक्रियापर्व)

१-	भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञाके अनुसार मयासुरद्वारा सभाभवन बनानेकी तैयारी	७६३
२-	श्रीकृष्णकी द्वारकायात्रा	७६५
३-	मयासुरका भीमसेन और अर्जुनको गदा और शंख लाकर देना तथा उसके द्वारा अद्भुत सभाका निर्माण	७६८
४-	मयद्वारा निर्मित सभाभवनमें धर्मराज युधिष्ठिरका प्रवेश तथा सभामें स्थित महर्षियों और राजाओं आदिका वर्णन	७७१

(लोकपालसभाख्यानपर्व)

५-	नारदजीका युधिष्ठिरकी सभामें आगमन और प्रश्नके रूपमें युधिष्ठिरको शिक्षा देना	७७४
६-	युधिष्ठिरकी दिव्य सभाओंके विषयमें जिज्ञासा	७८७
७-	इन्द्रसभाका वर्णन	७८८
८-	यमराजकी सभाका वर्णन	७९०
९-	वरुणकी सभाका वर्णन	७९३
१०-	कुबेरकी सभाका वर्णन	७९५
११-	ब्रह्माजीकी सभाका वर्णन	७९७
१२-	राजा हरिश्चन्द्रका माहात्म्य तथा युधिष्ठिरके प्रति राजा पाण्डुका संदेश	८०१

(राजसूयारम्भपर्व)

१३-	युधिष्ठिरका राजसूयविषयक संकल्प और उसके विषयमें भाइयों, मन्त्रियों, मुनियों तथा श्रीकृष्णसे सलाह लेना	८०४
१४-	श्रीकृष्णकी राजसूययज्ञके लिये सम्मति	८०८
१५-	जरासंधके विषयमें राजा युधिष्ठिर, भीम और श्रीकृष्णकी बातचीत	८१४
१६-	जरासंधको जीतनेके विषयमें युधिष्ठिरके उत्साहहीन होनेपर अर्जुनका उत्साहपूर्ण उद्‌गार	८१६
१७-	श्रीकृष्णके द्वारा अर्जुनकी बातका अनुमोदन तथा युधिष्ठिरको जरासंधकी उत्पत्तिका प्रसंग सुनाना	८१८
१८-	जरा राक्षसीका अपना परिचय देना और उसीके नामपर बालकका नामकरण होना	८२३
१९-	चण्डकौशिक मुनिके द्वारा जरासंधका भविष्यकथन तथा पिताके द्वारा उसका राज्याभिषेक करके वनमें जाना	८२४

(जरासंधवधपर्व)

२०-	युधिष्ठिरके अनुमोदन करनेपर श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीमसेनकी मगध-यात्रा	८२६
२१-	श्रीकृष्णद्वारा मगधकी राजधानीकी प्रशंसा, चैत्यक पर्वतशिखर और नगाड़ोंको तोड़-फोड़कर तीनोंका नगर एवं राज-भवनमें प्रवेश तथा श्रीकृष्ण और जरासंधका संवाद	८२८
२२-	जरासंध और श्रीकृष्णका संवाद तथा जरासंधकी युद्धके लिये तैयारी एवं जरासंधका श्रीकृष्णके साथ वैर होनेके कारणका वर्णन	८३४

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
२३-	जरासंधका भीमसेनके साथ युद्ध करनेका निश्चय, भीम और जरासंधका भयानक युद्ध तथा जरासंधकी थकावट	८३९
२४-	भीमके द्वारा जरासंधका वध, बंदी राजाओंकी मुक्ति, श्रीकृष्ण आदिका भेंट लेकर इन्द्रप्रस्थमें आना और वहाँसे श्रीकृष्णका द्वारका जाना	८४२
	(दिग्विजयपर्व)	
२५-	अर्जुन आदि चारों भाइयोंकी दिग्विजयके लिये यात्रा	८४८
२६-	अर्जुनके द्वारा अनेक देशों, राजाओं तथा भगदत्तकी पराजय	८५०
२७-	अर्जुनका अनेक पर्वतीय देशोंपर विजय पाना	८५१
२८-	किम्पुरुष, हाटक तथा उत्तरकुरुपर विजय प्राप्त करके अर्जुनका इन्द्रप्रस्थ लौटना	८५३
२९-	भीमसेनका पूर्व दिशाको जीतनेके लिये प्रस्थान और विभिन्न देशोंपर विजय पाना	८५९
३०-	भीमका पूर्व दिशाके अनेक देशों तथा राजाओंको जीतकर भारी धन-सम्पत्तिके साथ इन्द्रप्रस्थमें लौटना	८६०
३१-	सहदेवके द्वारा दक्षिण दिशाकी विजय	८६२
३२-	नकुलके द्वारा पश्चिम दिशाकी विजय	८७४
	(राजसूयपर्व)	
३३-	युधिष्ठिरके शासनकी विशेषता, श्रीकृष्णकी आज्ञासे युधिष्ठिरका राजसूययज्ञकी दीक्षा लेना तथा राजाओं, ब्राह्मणों एवं सगे-सम्बन्धियोंको बुलानेके लिये निमन्त्रण भेजना	८७६
३४-	युधिष्ठिरके यज्ञमें सब देशके राजाओं, कौरवों तथा यादवोंका आगमन और उन सबके भोजन-विश्राम आदिकी सुव्यवस्था	८८०
३५-	राजसूययज्ञका वर्णन	८८२
	(अर्घाभिहरणपर्व)	
३६-	राजसूययज्ञमें ब्राह्मणों तथा राजाओंका समागम, श्रीनारदजीके द्वारा श्रीकृष्ण-महिमाका वर्णन और भीष्मजीकी अनुमतिसे श्रीकृष्णकी अग्रपूजा	८८४
३७-	शिशुपालके आक्षेपपूर्ण वचन	८८७
३८-	युधिष्ठिरका शिशुपालको समझाना और भीष्मजीका उसके आक्षेपोंका उत्तर देना	८९०
३९-	सहदेवकी राजाओंको चुनौती तथा क्षुब्ध हुए शिशुपाल आदि नरेशोंका युद्धके लिये उद्यत होना	९४४
	(शिशुपालवधपर्व)	
४०-	युधिष्ठिरकी चिन्ता और भीष्मजीका उन्हें सान्त्वना देना	९४६
४१-	शिशुपालद्वारा भीष्मकी निन्दा	९४७
४२-	शिशुपालकी बातोंपर भीमसेनका क्रोध और भीष्मजीका उन्हें शान्त करना	९५०
४३-	भीष्मजीके द्वारा शिशुपालके जन्मके वृत्तान्तका वर्णन	९५२
४४-	भीष्मकी बातोंसे चिढ़े हुए शिशुपालका उन्हें फटकारना तथा भीष्मका श्रीकृष्णसे युद्ध करनेके लिये समस्त राजाओंको चुनौती देना	९५४
४५-	श्रीकृष्णके द्वारा शिशुपालका वध, राजसूययज्ञकी समाप्ति तथा सभी ब्राह्मणों, राजाओं और श्रीकृष्णका स्वदेशगमन	९५७
	(द्यूतपर्व)	
४६-	व्यासजीकी भविष्यवाणीसे युधिष्ठिरकी चिन्ता और समत्वपूर्ण बर्ताव करनेकी प्रतिज्ञा	९६६
४७-	दुर्योधनका मयनिर्मित सभाभवनको देखना और पग-पगपर भ्रमके कारण उपहासका पात्र बनना तथा युधिष्ठिरके वैभवको देखकर उसका चिन्तित होना	९६८
४८-	पाण्डवोंपर विजय प्राप्त करनेके लिये शकुनि और दुर्योधनकी बातचीत	९७१
४९-	धृतराष्ट्रके पूछनेपर दुर्योधनका अपनी चिन्ता बताना और द्यूतके लिये धृतराष्ट्रसे अनुरोध	

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
	करना एवं धृतराष्ट्रका विदुरको इन्द्रप्रस्थ जानेका आदेश	९७३
५०-	दुर्योधनका धृतराष्ट्रको अपने दु:ख और चिन्ताका कारण बताना	९७८
५१-	युधिष्ठिरको भेंटमें मिली हुई वस्तुओंका दुर्योधनद्वारा वर्णन	९८०
५२-	युधिष्ठिरको भेंटमें मिली हुई वस्तुओंका दुर्योधनद्वारा वर्णन	९८४
५३-	दुर्योधनद्वारा युधिष्ठिरके अभिषेकका वर्णन	९८८
५४-	धृतराष्ट्रका दुर्योधनको समझाना	९९०
५५-	दुर्योधनका धृतराष्ट्रको उकसाना	९९१
५६-	धृतराष्ट्र और दुर्योधनकी बातचीत, द्यूतक्रीड़ाके लिये सभानिर्माण और धृतराष्ट्रका युधिष्ठिरको बुलानेके लिये विदुरको आज्ञा देना	९९२
५७-	विदुर और धृतराष्ट्रकी बातचीत	९९५
५८-	विदुर और युधिष्ठिरकी बातचीत तथा युधिष्ठिरका हस्तिनापुरमें जाकर सबसे मिलना	९९५
५९-	जूएके अनौचित्यके सम्बन्धमें युधिष्ठिर और शकुनिका संवाद	१०००
६०-	द्यूतक्रीड़ाका आरम्भ	१००२
६१-	जूएमें शकुनिके छलसे प्रत्येक दाँवपर युधिष्ठिरकी हार	१००३
६२-	धृतराष्ट्रको विदुरकी चेतावनी	१००६
६३-	विदुरजीके द्वारा जूएका घोर विरोध	१००८
६४-	दुर्योधनका विदुरको फटकारना और विदुरका उसे चेतावनी देना	१००९
६५-	युधिष्ठिरका धन, राज्य, भाइयों तथा द्रौपदी-सहित अपनेको भी हारना	१०१२
६६-	विदुरका दुर्योधनको फटकारना	१०१६
६७-	प्रातिकामीके बुलानेसे न आनेपर दु:शासनका सभामें द्रौपदीको केश पकड़कर घसीटकर लाना एवं सभासदोंसे द्रौपदीका प्रश्न	१०१८
६८-	भीमसेनका क्रोध एवं अर्जुनका उन्हें शान्त करना, विकर्णकी धर्मसंगत बातका कर्णके द्वारा विरोध, द्रौपदीका चीरहरण एवं भगवान्‌द्वारा उसकी लज्जारक्षा तथा विदुरके द्वारा प्रह्लादका उदाहरण देकर सभासदोंको विरोधके लिये प्रेरित करना	१०२४
६९-	द्रौपदीका चेतावनीयुक्त विलाप एवं भीष्मका वचन	१०३२
७०-	दुर्योधनके छल-कपटयुक्त वचन और भीमसेनका रोषपूर्ण उद्‌गार	१०३३
७१-	कर्ण और दुर्योधनके वचन, भीमसेनकी प्रतिज्ञा, विदुरकी चेतावनी और द्रौपदीको धृतराष्ट्रसे वरप्राप्ति	१०३५
७२-	शत्रुओंको मारनेके लिये उद्यत हुए भीमको युधिष्ठिरका शान्त करना	१०३९
७३-	धृतराष्ट्रका युधिष्ठिरको सारा धन लौटाकर एवं समझा-बुझाकर इन्द्रप्रस्थ जानेका आदेश देना	१०४०
	(अनुद्यूतपर्व)	
७४-	दुर्योधनका धृतराष्ट्रसे अर्जुनकी वीरता बतलाकर पुन: द्यूतक्रीड़ाके लिये पाण्डवोंको बुलानेका अनुरोध और उनकी स्वीकृति	१०४२
७५-	गान्धारीकी धृतराष्ट्रको चेतावनी और धृतराष्ट्रका अस्वीकार करना	१०४८
७६-	सबके मना करनेपर भी धृतराष्ट्रकी आज्ञासे युधिष्ठिरका पुन: जूआ खेलना और हारना	१०५०
७७-	दु:शासनद्वारा पाण्डवोंका उपहास एवं भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेवकी शत्रुओंको मारनेके लिये भीषण प्रतिज्ञा	१०५२
७८-	युधिष्ठिरका धृतराष्ट्र आदिसे विदा लेना, विदुरका कुन्तीको अपने यहाँ रखनेका प्रस्ताव और पाण्डवोंको धर्मपूर्वक रहनेका उपदेश देना	१०५६
७९-	द्रौपदीका कुन्तीसे विदा लेना तथा कुन्तीका विलाप एवं नगरके नर-नारियोंका शोकातुर होना	१०५८

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
८०-	वनगमनके समय पाण्डवोंकी चेष्टा और प्रजाजनोंकी शोकातुरताके विषयमें धृतराष्ट्र तथा विदुरका संवाद और शरणागत कौरवोंको द्रोणाचार्यका आश्वासन	१०६३
८१-	धृतराष्ट्रकी चिन्ता और उनका संजयके साथ वार्तालाप	१०६८

(सभापर्व सम्पूर्ण)

चित्र-सूची

(सादा)

१-	उग्रश्रवाजीके द्वारा महाभारतकी कथा	८५
२-	रुरुके दर्शनसे सहस्रपाद ऋषिकी सर्पयोनिसे मुक्ति	९७
३-	भगवान् विष्णुने चक्रसे राहुका सिर काट दिया	११२
४-	ब्रह्माजीने शेषजीको वरदान तथा पृथ्वी धारण करनेकी आज्ञा दी	१४८
५-	आस्तीकने तक्षकको अग्निकुण्डमें गिरनेसे रोक दिया	१९५
६-	शुक्राचार्य और कच	२८२
७-	ययातिका पतन	३१८
८-	देवव्रत (भीष्म)-की भीषण प्रतिज्ञा	३६६
९-	धर्मराज और अणीमाण्डव्य	३८४
१०-	अणीमाण्डव्य ऋषि शूलीपर	३८४
११-	शतशृंग पर्वतपर पाण्डुका तप	४११
१२-	बालक भीमके शरीरकी चोटसे चट्टान टूट गयी	४२३
१३-	सुरंगद्वारा मातासहित पाण्डवोंका लाक्षागृहसे निकलना	५१४
१४-	भीम अपने चारों भाइयोंको तथा माताको उठाकर ले चले	५१४
१५-	हिडिम्ब-वध	५३२
१६-	भीमसेन और घटोत्कच	५३२
१७-	पाण्डवोंकी व्यासजीसे भेंट	५४०
१८-	धृष्टद्युम्नकी घोषणा	५४०
१९-	कुन्तीद्वारा ब्राह्मण-दम्पतिको सान्त्वना	५५३
२०-	बकासुरपर भीमका प्रहार	५५३
२१-	विश्वामित्रकी सेनापर नन्दिनीका कोप	५९५
२२-	पाण्डव, द्रुपद और व्यासजीमें बातचीत	६५३
२३-	व्यासजीद्वारा पाण्डवोंके पूर्वजन्मके वृत्तान्तका वर्णन	६५३
२४-	सुन्द और उपसुन्दका अत्याचार	६९८
२५-	तिलोत्तमाके लिये सुन्द और उपसुन्दका युद्ध	६९८
२६-	सुभद्राका कुन्ती और द्रौपदीकी सेवामें उपस्थित होना	७२२
२७-	श्रीकृष्ण और अर्जुनका देवताओंसे युद्ध	७४७
२८-	अर्जुन और श्रीकृष्णको इन्द्रका वरदान	७४७
२९-	पाण्डवोंद्वारा देवर्षि नारदका पूजन	७७६
३०-	जरासंधके भवनमें श्रीकृष्ण, भीमसेन और अर्जुन	८३२
३१-	भीमसेन और जरासंधका युद्ध	८३२
३२-	भीष्मका युधिष्ठिरको श्रीकृष्णकी महिमा बताना	८८८
३३-	शिशुपालका युद्धके लिये उद्योग	८८८
३४-	भूमिका भगवान्‌को अदितिके कुण्डल देना	९२४
३५-	शिशुपालके वधके लिये भगवान्‌का हाथमें चक्र ग्रहण करना	९६०
३६-	दुर्योधनका स्थलके भ्रमसे जलमें गिरना	९६०
३७-	द्यूत-क्रीडामें युधिष्ठिरकी पराजय	१०१७
३८-	दुःशासनका द्रौपदीके केश पकड़कर खींचना	१०१७
३९-	द्रौपदी-चीर-हरण	१०२९
४०-	गान्धारीका धृतराष्ट्रको समझाना	१०४९

नमस्कार

अवतारके लिये प्रार्थना

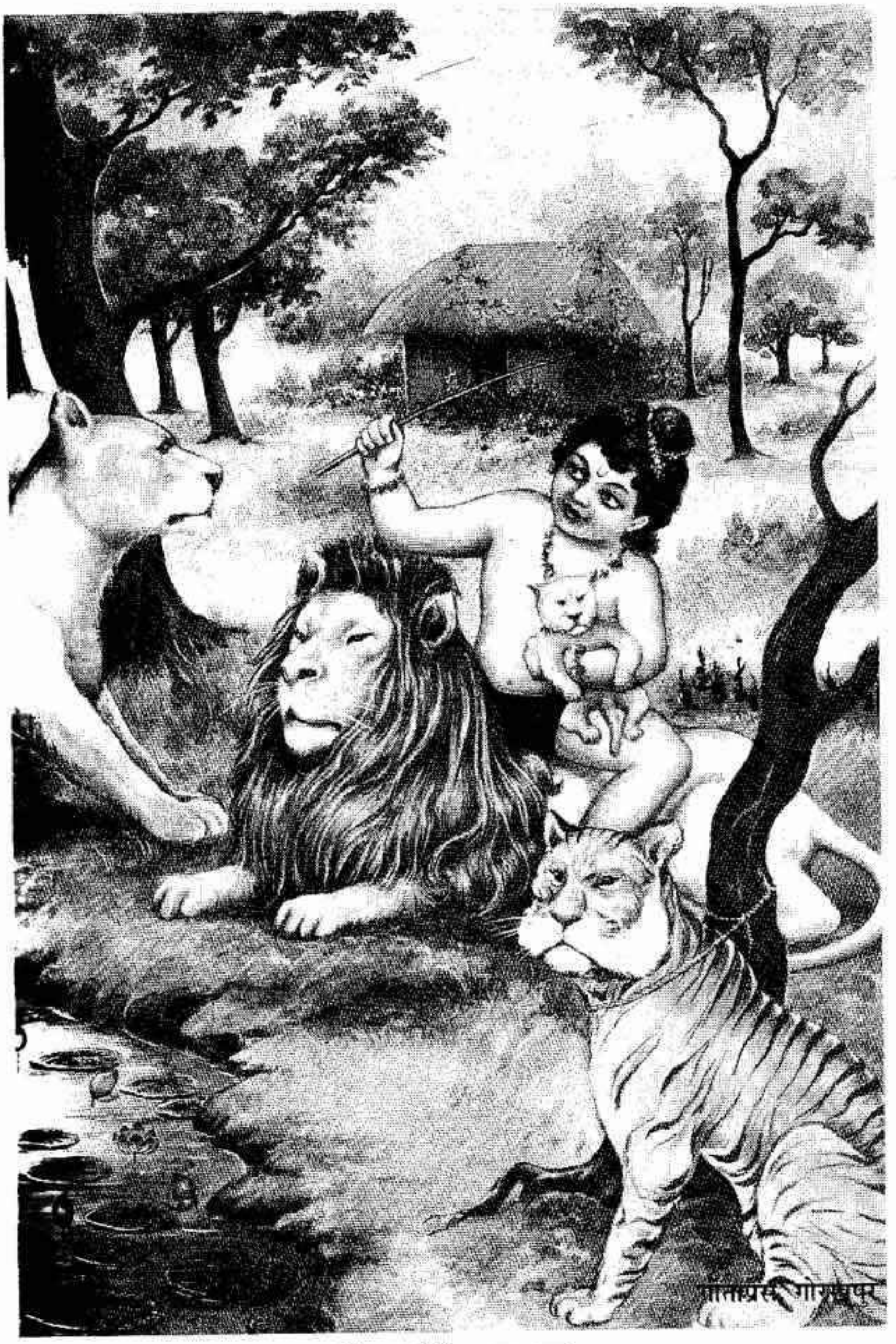

सिंह-बाघोंमें बालक भरत

कुमार भीमसेनका साँपोंपर कोप

एकलव्यकी गुरु-दक्षिणा

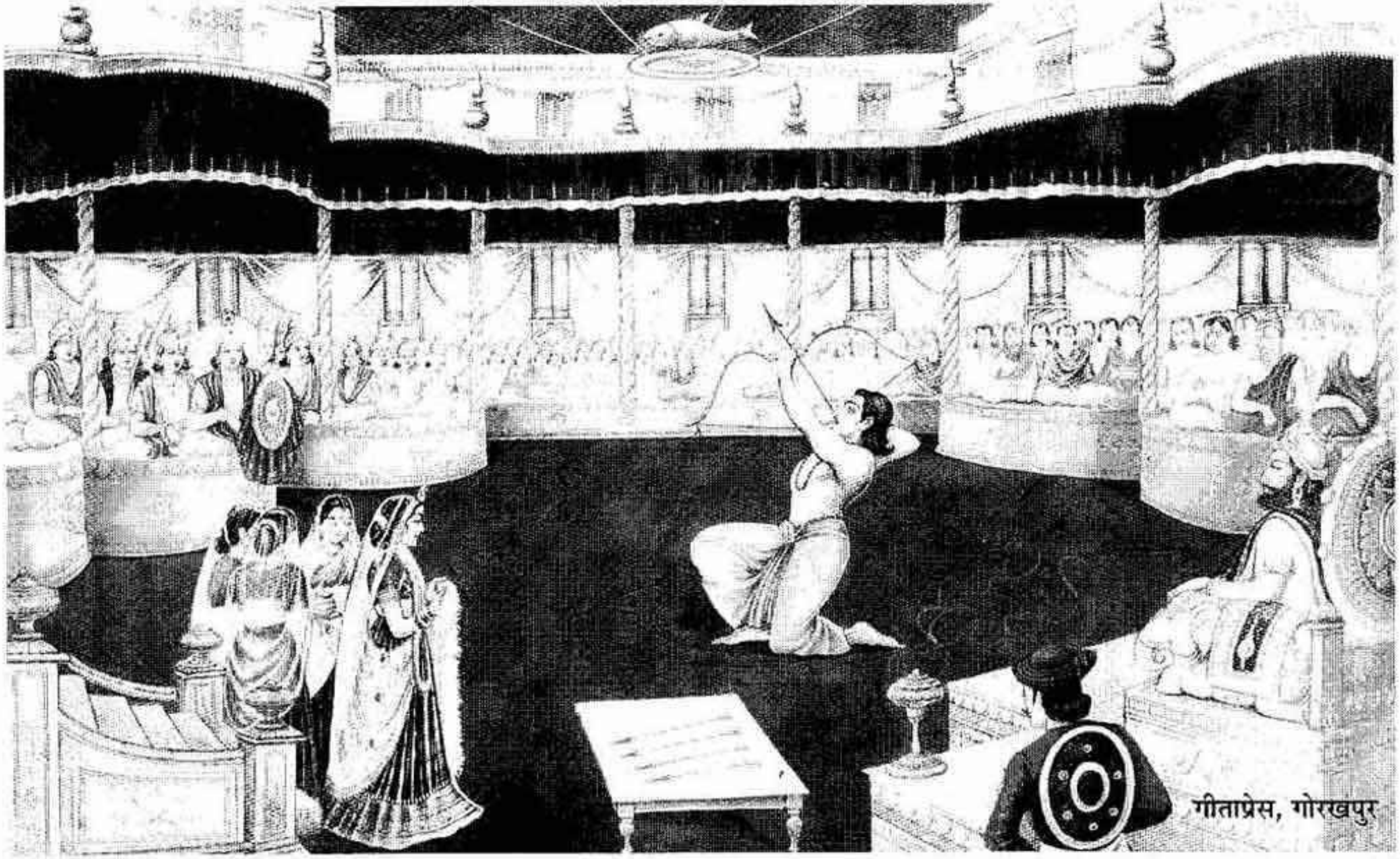

द्रौपदी-स्वयंवर

प्रभासक्षेत्रमें श्रीकृष्ण और अर्जुनका मिलन

कृपासिंधु भगवान् श्रीकृष्ण

॥ श्रीहरिः ॥

* श्रीगणेशाय नमः *

॥ श्रीवेदव्यासाय नमः ॥

श्रीमहाभारतम्

आदिपर्व

अनुक्रमणिकापर्व

प्रथमोऽध्यायः

ग्रन्थका उपक्रम, ग्रन्थमें कहे हुए अधिकांश विषयोंकी संक्षिप्त सूची तथा इसके पाठकी महिमा

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

'बदरिकाश्रमनिवासी प्रसिद्ध ऋषि श्रीनारायण तथा श्रीनर (अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, उनके नित्यसखा नरस्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन), उनकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती और उसके वक्ता महर्षि वेदव्यासको नमस्कार कर (आसुरी सम्पत्तियोंका नाश करके अन्तःकरणपर दैवी सम्पत्तियोंको विजय प्राप्त करानेवाले) जय[1] (महाभारत एवं अन्य इतिहास-पुराणादि)-का पाठ करना चाहिये।'[2]

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय। ॐ नमः पितामहाय। ॐ नमः प्रजापतिभ्यः। ॐ नमः कृष्णद्वैपायनाय। ॐ नमः सर्वविघ्नविनायकेभ्यः।

ॐकारस्वरूप भगवान् वासुदेवको नमस्कार है। ॐकारस्वरूप भगवान् पितामहको नमस्कार है। ॐकारस्वरूप प्रजापतियोंको नमस्कार है। ॐकारस्वरूप श्रीकृष्णद्वैपायनको नमस्कार है। ॐकारस्वरूप सर्व-विघ्नविनाशक विनायकोंको नमस्कार है।

लोमहर्षणपुत्र उग्रश्रवाः सौतिः पौराणिको नैमिषारण्ये शौनकस्य कुलपतेर्द्वादशवार्षिके सत्रे॥ १॥
सुखासीनानभ्यगच्छद् ब्रह्मर्षीन् संशितव्रतान्।
विनयावनतो भूत्वा कदाचित् सूतनन्दनः॥ २॥

एक समयकी बात है, नैमिषारण्यमें[3] कुलपति[4] महर्षि शौनकके बारह वर्षोंतक चालू रहनेवाले सत्रमें[5] जब उत्तम एवं कठोर ब्रह्मचर्यादि व्रतोंका पालन करनेवाले ब्रह्मर्षिगण अवकाशके समय सुखपूर्वक बैठे थे, सूतकुलको आनन्दित करनेवाले लोमहर्षणपुत्र उग्रश्रवा सौति स्वयं कौतूहलवश उन ब्रह्मर्षियोंके समीप

---

१. जय शब्दका अर्थ महाभारत नामक इतिहास ही है। आगे चलकर कहा है—'जयो नामेतिहासोऽयम्' इत्यादि। इसके अतिरिक्त अठारहों पुराण, वाल्मीकिरामायण आदि सभी आर्ष-ग्रन्थोंकी संज्ञा 'जय' है।

२. मंगलाचरणका श्लोक देखनेपर ऐसा जान पड़ता है कि यहाँ नारायण शब्दका अर्थ है भगवान् श्रीकृष्ण और नरोत्तम शब्दका अर्थ है नररत्न अर्जुन। महाभारतमें प्रायः सर्वत्र इन्हीं दोनोंका नर-नारायणके अवतारके रूपमें उल्लेख हुआ है। इससे मंगलाचरणमें ग्रन्थके इन दोनों प्रधान पात्र तथा भगवान्‌के मूर्ति-युगलको प्रणाम करना मंगलाचरणको नमस्कारात्मक होनेके साथ ही वस्तुनिर्देशात्मक भी बना देता है। इसलिये अनुवादमें श्रीकृष्ण और अर्जुनका ही उल्लेख किया गया है।

३. नैमिषारण्य नामकी व्याख्या वाराहपुराणमें इस प्रकार मिलती है—

एवं कृत्वा ततो देवो मुनिं गौरमुखं तदा। उवाच निमिषेणेदं निहतं दानवं बलम्॥
अरण्येऽस्मिंस्ततस्त्वेतन्नैमिषारण्यसंज्ञितम्।

ऐसा करके भगवान्‌ने उस समय गौरमुख मुनिसे कहा—'मैंने निमिषमात्रमें इस अरण्य (वन)-के भीतर इस दानव-दलका संहार किया है; अतः यह वन नैमिषारण्यके नामसे प्रसिद्ध होगा।'

४. जो विद्वान् ब्राह्मण अकेला ही दस सहस्र जिज्ञासु व्यक्तियोंका अन्न-दानादिके द्वारा भरण-पोषण करता है, उसे कुलपति कहते हैं।

५. जो कार्य अनेक व्यक्तियोंके सहयोगसे किया गया हो और जिसमें बहुतोंको ज्ञान, सदाचार आदिकी शिक्षा तथा अन्न-वस्त्रादि वस्तुएँ दी जाती हों, जो बहुतोंके लिये तृप्तिकारक एवं उपयोगी हो, उसे 'सत्र' कहते हैं।

बड़े विनीतभावसे आये। वे पुराणोंके विद्वान् और कथावाचक थे॥ १-२॥

तमाश्रममनुप्राप्तं नैमिषारण्यवासिनाम्।
चित्राः श्रोतुं कथास्तत्र परिवव्रुस्तपस्विनः॥ ३॥

उस समय नैमिषारण्यवासियोंके आश्रममें पधारे हुए उन उग्रश्रवाजीको, उनसे चित्र-विचित्र कथाएँ सुननेके लिये, सब तपस्वियोंने वहीं घेर लिया॥ ३॥

अभिवाद्य मुनींस्तांस्तु सर्वानेव कृताञ्जलिः।
अपृच्छत् स तपोवृद्धिं सद्भिश्चैवाभिपूजितः॥ ४॥

उग्रश्रवाजीने पहले हाथ जोड़कर उन सभी मुनियोंको अभिवादन किया और 'आपलोगोंकी तपस्या सुखपूर्वक बढ़ रही है न?' इस प्रकार कुशल-प्रश्न किया। उन सत्पुरुषोंने भी उग्रश्रवाजीका भलीभाँति स्वागत-सत्कार किया॥ ४॥

अथ तेषूपविष्टेषु सर्वेष्वेव तपस्विषु।
निर्दिष्टमासनं भेजे विनयाल्लौमहर्षणिः॥ ५॥

इसके अनन्तर जब वे सभी तपस्वी अपने-अपने आसनपर विराजमान हो गये, तब लोमहर्षणपुत्र उग्रश्रवाजीने भी उनके बताये हुए आसनको विनयपूर्वक ग्रहण किया॥

सुखासीनं ततस्तं तु विश्रान्तमुपलक्ष्य च।
अथापृच्छदृषिस्तत्र कश्चित् प्रस्तावयन् कथाः॥ ६॥

तत्पश्चात् यह देखकर कि उग्रश्रवाजी थकावटसे रहित होकर आरामसे बैठे हुए हैं, किसी महर्षिने बातचीतका प्रसंग उपस्थित करते हुए यह प्रश्न पूछा—॥ ६॥

कुत आगम्यते सौते क्व चायं विहृतस्त्वया।
कालः कमलपत्राक्ष शंसैतत् पृच्छतो मम॥ ७॥

कमलनयन सूतकुमार! आपका शुभागमन कहाँसे हो रहा है? अबतक आपने कहाँ आनन्दपूर्वक समय बिताया है? मेरे इस प्रश्नका उत्तर दीजिये॥ ७॥

एवं पृष्टोऽब्रवीत् सम्यग् यथावल्लौमहर्षणिः।
वाक्यं वचनसम्पन्नस्तेषां च चरिताश्रयम्॥ ८॥
तस्मिन् सदसि विस्तीर्णे मुनीनां भावितात्मनाम्।

उग्रश्रवाजी एक कुशल वक्ता थे। इस प्रकार प्रश्न किये जानेपर वे शुद्ध अन्तःकरणवाले मुनियोंकी उस विशाल सभामें ऋषियों तथा राजाओंसे सम्बन्ध रखनेवाली उत्तम एवं यथार्थ कथा कहने लगे॥ ८½॥

सौतिरुवाच

जनमेजयस्य राजर्षेः सर्पसत्रे महात्मनः॥ ९॥
समीपे पार्थिवेन्द्रस्य सम्यक् पारिक्षितस्य च।
कृष्णद्वैपायनप्रोक्ताः सुपुण्या विविधाः कथाः॥ १०॥
कथिताश्चापि विधिवद् या वैशम्पायनेन वै।
श्रुत्वाहं ता विचित्रार्था महाभारतसंश्रिताः॥ ११॥

उग्रश्रवाजीने कहा—महर्षियो! चक्रवर्ती सम्राट् महात्मा राजर्षि परीक्षित्-नन्दन जनमेजयके सर्पयज्ञमें उन्हींके पास वैशम्पायनने श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजीके द्वारा निर्मित परम पुण्यमयी चित्र-विचित्र अर्थसे युक्त महाभारतकी जो विविध कथाएँ विधिपूर्वक कही हैं, उन्हें सुनकर मैं आ रहा हूँ॥ ९—११॥

बहूनि सम्परिक्रम्य तीर्थान्यायतनानि च।
समन्तपञ्चकं नाम पुण्यं द्विजनिषेवितम्॥ १२॥
गतवानस्मि तं देशं युद्धं यत्राभवत् पुरा।
कुरूणां पाण्डवानां च सर्वेषां च महीक्षिताम्॥ १३॥

मैं बहुत-से तीर्थों एवं धामोंकी यात्रा करता हुआ ब्राह्मणोंके द्वारा सेवित उस परम पुण्यमय समन्तपंचक क्षेत्र कुरुक्षेत्र देशमें गया, जहाँ पहले कौरव-पाण्डव एवं अन्य सब राजाओंका युद्ध हुआ था॥ १२-१३॥

दिदृक्षुरागतस्तस्मात् समीपं भवतामिह।
आयुष्मन्तः सर्व एव ब्रह्मभूता हि मे मताः।
अस्मिन् यज्ञे महाभागाः सूर्यपावकवर्चसः॥ १४॥

वहींसे आपलोगोंके दर्शनकी इच्छा लेकर मैं यहाँ आपके पास आया हूँ। मेरी यह मान्यता है कि आप सभी दीर्घायु एवं ब्रह्मस्वरूप हैं। ब्राह्मणो! इस यज्ञमें सम्मिलित आप सभी महात्मा बड़े भाग्यशाली तथा सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी हैं॥ १४॥

कृताभिषेकाः शुचयः कृतजप्याहुताग्नयः।
भवन्त आसने स्वस्था ब्रवीमि किमहं द्विजाः॥ १५॥
पुराणसंहिताः पुण्याः कथा धर्मार्थसंश्रिताः।
इति वृत्तं नरेन्द्राणामृषीणां च महात्मनाम्॥ १६॥

इस समय आप सभी स्नान, संध्या-वन्दन, जप और अग्निहोत्र आदि करके शुद्ध हो अपने-अपने आसनपर स्वस्थचित्तसे विराजमान हैं। आज्ञा कीजिये, मैं आपलोगोंको क्या सुनाऊँ? क्या मैं आपलोगोंको धर्म और अर्थके गूढ़ रहस्यसे युक्त, अन्तःकरणको शुद्ध करनेवाली भिन्न-भिन्न पुराणोंकी कथा सुनाऊँ अथवा उदारचरित महानुभाव ऋषियों एवं सम्राटोंके पवित्र इतिहास?॥ १५-१६॥

ऋषय ऊचुः

द्वैपायनेन यत् प्रोक्तं पुराणं परमर्षिणा।
सुरैर्ब्रह्मर्षिभिश्चैव श्रुत्वा यदभिपूजितम्॥ १७॥

तस्याख्यानवरिष्ठस्य विचित्रपदपर्वणः।
सूक्ष्मार्थन्याययुक्तस्य वेदार्थैर्भूषितस्य च॥ १८॥
भारतस्येतिहासस्य पुण्यां ग्रन्थार्थसंयुताम्।
संस्कारोपगतां ब्राह्मीं नानाशास्त्रोपबृंहिताम्॥ १९॥
जनमेजयस्य यां राज्ञो वैशम्पायन उक्तवान्।
यथावत् स ऋषिस्तुष्ट्या सत्रे द्वैपायनाज्ञया॥ २०॥
वेदैश्चतुर्भिः संयुक्तां व्यासस्याद्भुतकर्मणः।
संहितां श्रोतुमिच्छामः पुण्यां पापभयापहाम्॥ २१॥

ऋषियोंने कहा—उग्रश्रवाजी! परमर्षि श्रीकृष्ण-द्वैपायनने जिस प्राचीन इतिहासरूप पुराणका वर्णन किया है और देवताओं तथा ऋषियोंने अपने-अपने लोकमें श्रवण करके जिसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है, जो आख्यानोंमें सर्वश्रेष्ठ है, जिसका एक-एक पद, वाक्य एवं पर्व विचित्र शब्दविन्यास और रमणीय अर्थसे परिपूर्ण है, जिसमें आत्मा-परमात्माके सूक्ष्म स्वरूपका निर्णय एवं उनके अनुभवके लिये अनुकूल युक्तियाँ भरी हुई हैं और जो सम्पूर्ण वेदोंके तात्पर्यानुकूल अर्थसे अलंकृत है, उस भारत-इतिहासकी परम पुण्यमयी, ग्रन्थके गुप्त भावोंको स्पष्ट करनेवाली, पदों-वाक्योंकी व्युत्पत्तिसे युक्त, सब शास्त्रोंके अभिप्रायके अनुकूल और उनसे समर्थित जो अद्भुतकर्मा व्यासकी संहिता है, उसे हम सुनना चाहते हैं। अवश्य ही वह चारों वेदोंके अर्थोंसे भरी हुई तथा पुण्यस्वरूपा है। पाप और भयका नाश करनेवाली है। भगवान् वेदव्यासकी आज्ञासे राजा जनमेजयके यज्ञमें प्रसिद्ध ऋषि वैशम्पायनने आनन्दमें भरकर भलीभाँति इसका निरूपण किया है॥ १७—२१॥

सौतिरुवाच

आद्यं पुरुषमीशानं पुरुहूतं पुरुष्टुतम्।
ऋतमेकाक्षरं ब्रह्म व्यक्ताव्यक्तं सनातनम्॥ २२॥
असच्च सदसच्चैव यद् विश्वं सदसत्परम्।
परावराणां स्रष्टारं पुराणं परमव्ययम्॥ २३॥
मङ्गल्यं मङ्गलं विष्णुं वरेण्यमनघं शुचिम्।
नमस्कृत्य हृषीकेशं चराचरगुरुं हरिम्॥ २४॥
महर्षेः पूजितस्येह सर्वलोकैर्महात्मनः।
प्रवक्ष्यामि मतं पुण्यं व्यासस्याद्भुतकर्मणः॥ २५॥

उग्रश्रवाजीने कहा—जो सबका आदि कारण, अन्तर्यामी और नियन्ता है, यज्ञोंमें जिसका आवाहन और जिसके उद्देश्यसे हवन किया जाता है, जिसकी अनेक ऋषियोंद्वारा अनेक नामोंसे स्तुति की गयी है, जो ऋत (सत्यस्वरूप), एकाक्षर ब्रह्म (प्रणव एवं एकमात्र अविनाशी और सर्वव्यापी परमात्मा), व्यक्ताव्यक्त (साकार-निराकार)-स्वरूप एवं सनातन है, असत्-सत् एवं उभयरूपसे जो स्वयं विराजमान है; फिर भी जिसका वास्तविक स्वरूप सत्-असत् दोनोंसे विलक्षण है, यह विश्व जिससे अभिन्न है, जो सम्पूर्ण परावर (स्थूल-सूक्ष्म) जगत्का स्रष्टा, पुराणपुरुष, सर्वोत्कृष्ट परमेश्वर एवं वृद्धि-क्षय आदि विकारोंसे रहित है, जिसे पाप कभी छू नहीं सकता, जो सहज शुद्ध है, वह ब्रह्म ही मंगलकारी एवं मंगलमय विष्णु है। उन्हीं चराचरगुरु हृषीकेश (मन-इन्द्रियोंके प्रेरक) श्रीहरिको नमस्कार करके सर्वलोकपूजित अद्भुतकर्मा महात्मा महर्षि व्यासदेवके इस अन्तः-करणशोधक मतका मैं वर्णन करूँगा॥ २२—२५॥

आचख्युः कवयः केचित् सम्प्रत्याचक्षते परे।
आख्यास्यन्ति तथैवान्ये इतिहासमिमं भुवि॥ २६॥

पृथ्वीपर इस इतिहासका अनेकों कवियोंने वर्णन किया है और इस समय भी बहुत-से वर्णन करते हैं। इसी प्रकार अन्य कवि आगे भी इसका वर्णन करते रहेंगे॥ २६॥

इदं तु त्रिषु लोकेषु महज्ज्ञानं प्रतिष्ठितम्।
विस्तरैश्च समासैश्च धार्यते यद् द्विजातिभिः॥ २७॥

इस महाभारतकी तीनों लोकोंमें एक महान् ज्ञानके रूपमें प्रतिष्ठा है। ब्राह्मणादि द्विजाति संक्षेप और विस्तार दोनों ही रूपोंमें अध्ययन और अध्यापनकी परम्पराके द्वारा इसे अपने हृदयमें धारण करते हैं॥ २७॥

अलंकृतं शुभैः शब्दैः समयैर्दिव्यमानुषैः।
छन्दोवृत्तैश्च विविधैरन्वितं विदुषां प्रियम्॥ २८॥

यह शुभ (ललित एवं मंगलमय) शब्दविन्याससे अलंकृत है तथा वैदिक-लौकिक या संस्कृत-प्राकृत संकेतोंसे सुशोभित है। अनुष्टुप्, इन्द्रवज्रा आदि नाना प्रकारके छन्द भी इसमें प्रयुक्त हुए हैं; अतः यह ग्रन्थ विद्वानोंको बहुत ही प्रिय है॥ २८॥

(पुण्ये हिमवतः पादे मध्ये गिरिगुहालये।
विशोध्य देहं धर्मात्मा दर्भसंस्तरमाश्रितः॥
शुचिः सनियमो व्यासः शान्तात्मा तपसि स्थितः।
भारतस्येतिहासस्य धर्मेणान्वीक्ष्य तां गतिम्॥
प्रविश्य योगं ज्ञानेन सोऽपश्यत् सर्वमन्ततः।)

हिमालयकी पवित्र तलहटीमें पर्वतीय गुफाके भीतर धर्मात्मा व्यासजी स्नानादिसे शरीर-शुद्धि करके

पवित्र हो कुशका आसन बिछाकर बैठे थे। उस समय नियमपालनपूर्वक शान्तचित्त हो वे तपस्यामें संलग्न थे। ध्यानयोगमें स्थित हो उन्होंने धर्मपूर्वक महाभारत-इतिहासके स्वरूपका विचार करके ज्ञानदृष्टिद्वारा आदिसे अन्ततक सब कुछ प्रत्यक्षकी भाँति देखा (और इस ग्रन्थका निर्माण किया)।

निष्प्रभेऽस्मिन् निरालोके सर्वतस्तमसावृते।
बृहदण्डमभूदेकं प्रजानां बीजमव्ययम्॥ २९॥

सृष्टिके प्रारम्भमें जब यहाँ वस्तुविशेष या नामरूप आदिका भान नहीं होता था, प्रकाशका कहीं नाम नहीं था, सर्वत्र अन्धकार-ही-अन्धकार छा रहा था, उस समय एक बहुत बड़ा अण्ड प्रकट हुआ, जो सम्पूर्ण प्रजाओंका अविनाशी बीज था॥ २९॥

युगस्यादौ निमित्तं तन्महद्दिव्यं प्रचक्षते।
यस्मिन् संश्रूयते सत्यं ज्योतिर्ब्रह्म सनातनम्॥ ३०॥

ब्रह्मकल्पके आदिमें उसी महान् एवं दिव्य अण्डको चार प्रकारके प्राणिसमुदायका कारण कहा जाता है। जिसमें सत्यस्वरूप ज्योतिर्मय सनातन ब्रह्म अन्तर्यामीरूपसे प्रविष्ट हुआ है, ऐसा श्रुति वर्णन करती है[1]॥ ३०॥

अद्भुतं चाप्यचिन्त्यं च सर्वत्र समतां गतम्।
अव्यक्तं कारणं सूक्ष्मं यत्तत् सदसदात्मकम्॥ ३१॥

वह ब्रह्म अद्भुत, अचिन्त्य, सर्वत्र समानरूपसे व्याप्त, अव्यक्त, सूक्ष्म, कारणस्वरूप एवं अनिर्वचनीय है और जो कुछ सत्-असत्‌रूपमें उपलब्ध होता है, सब वही है॥ ३१॥

यस्मात् पितामहो जज्ञे प्रभुरेकः प्रजापतिः।
ब्रह्मा सुरगुरुः स्थाणुर्मनुः कः परमेष्ठ्यथ॥ ३२॥
प्राचेतसस्तथा दक्षो दक्षपुत्राश्च सप्त वै।
ततः प्रजानां पतयः प्राभवन्नेकविंशतिः॥ ३३॥

उस अण्डसे ही प्रथम देहधारी, प्रजापालक प्रभु, देवगुरु पितामह ब्रह्मा तथा रुद्र, मनु, प्रजापति, परमेष्ठी, प्रचेताओंके पुत्र, दक्ष तथा दक्षके सात पुत्र (क्रोध, तम, दम, विक्रीत, अंगिरा, कर्दम और अश्व) प्रकट हुए। तत्पश्चात् इक्कीस प्रजापति (मरीचि आदि सात ऋषि और चौदह मनु)[2] पैदा हुए॥ ३२-३३॥

पुरुषश्चाप्रमेयात्मा यं सर्व ऋषयो विदुः।
विश्वेदेवास्तथादित्या वसवोऽथाश्विनावपि॥ ३४॥

जिन्हें मत्स्य-कूर्म आदि अवतारोंके रूपमें सभी ऋषि-मुनि जानते हैं, वे अप्रमेयात्मा विष्णुरूप पुरुष और उनकी विभूतिरूप विश्वेदेव, आदित्य, वसु एवं अश्विनीकुमार आदि भी क्रमशः प्रकट हुए हैं॥ ३४॥

यक्षाः साध्याः पिशाचाश्च गुह्यकाः पितरस्तथा।
ततः प्रसूता विद्वांसः शिष्टा ब्रह्मर्षिसत्तमाः॥ ३५॥

तदनन्तर यक्ष, साध्य, पिशाच, गुह्यक और पितर एवं तत्त्वज्ञानी सदाचारपरायण साधुशिरोमणि ब्रह्मर्षिगण प्रकट हुए॥ ३५॥

राजर्षयश्च बहवः सर्वे समुदिता गुणैः।
आपो द्यौः पृथिवी वायुरन्तरिक्षं दिशस्तथा॥ ३६॥

इसी प्रकार बहुत-से राजर्षियोंका प्रादुर्भाव हुआ है, जो सब-के-सब शौर्यादि सद्गुणोंसे सम्पन्न थे। क्रमशः उसी ब्रह्माण्डसे जल, द्युलोक, पृथ्वी, वायु, अन्तरिक्ष और दिशाएँ भी प्रकट हुई हैं॥ ३६॥

संवत्सरर्तवो मासाः पक्षाहोरात्रयः क्रमात्।
यच्चान्यदपि तत् सर्वं सम्भूतं लोकसाक्षिकम्॥ ३७॥

संवत्सर, ऋतु, मास, पक्ष, दिन तथा रात्रिका प्राकट्य भी क्रमशः उसीसे हुआ है। इसके सिवा और भी जो कुछ लोकमें देखा या सुना जाता है, वह सब उसी अण्डसे उत्पन्न हुआ है॥ ३७॥

यदिदं दृश्यते किंचिद् भूतं स्थावरजङ्गमम्।
पुनः संक्षिप्यते सर्वं जगत् प्राप्ते युगक्षये॥ ३८॥

यह जो कुछ भी स्थावर-जंगम जगत् दृष्टिगोचर होता है, वह सब प्रलयकाल आनेपर अपने कारणमें विलीन हो जाता है॥ ३८॥

यथर्तावृतुलिङ्गानि नानारूपाणि पर्यये।
दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा भावा युगादिषु॥ ३९॥

जैसे ऋतुके आनेपर उसके फल-पुष्प आदि नाना प्रकारके चिह्न प्रकट होते हैं और ऋतु बीत जानेपर वे सब समाप्त हो जाते हैं उसी प्रकार कल्पका आरम्भ होनेपर पूर्ववत् वे-वे पदार्थ दृष्टिगोचर होने लगते हैं और कल्पके अन्तमें उनका लय हो जाता है॥ ३९॥

एवमेतदनाद्यन्तं भूतसंहारकारकम्।
अनादिनिधनं लोके चक्रं सम्परिवर्तते॥ ४०॥

इस प्रकार यह अनादि और अनन्त काल-चक्र लोकमें प्रवाहरूपसे नित्य घूमता रहता है। इसीमें

---

१. 'तत् सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशत्' (तैत्तिरीय उपनिषद्)। ब्रह्मने अण्ड एवं पिण्डकी रचना करके मानो स्वयं ही उसमें प्रवेश किया है।

२. ऋषयः सप्त पूर्वे ये मनवश्च चतुर्दश। एते प्रजानां पतय एभिः कल्पः समाप्यते॥
(नीलकण्ठीमें ब्रह्माण्डपुराणका वचन)

प्राणियोंकी उत्पत्ति और संहार हुआ करते हैं। इसका कभी उद्भव और विनाश नहीं होता॥ ४०॥

त्रयस्त्रिंशत्सहस्राणि त्रयस्त्रिंशच्छतानि च।
त्रयस्त्रिंशच्च देवानां सृष्टिः संक्षेपलक्षणा॥ ४१॥

देवताओंकी सृष्टि संक्षेपसे तैंतीस हजार, तैंतीस सौ और तैंतीस लक्षित होती है॥ ४१॥

दिवःपुत्रो बृहद्भानुश्चक्षुरात्मा विभावसुः।
सविता स ऋचीकोऽर्को भानुराशावहो रविः॥ ४२॥
पुरा विवस्वतः सर्वे मह्यस्तेषां तथावरः।
देवभ्राट् तनयस्तस्य सुभ्राडिति ततः स्मृतः॥ ४३॥

पूर्वकालमें दिवःपुत्र, बृहत्, भानु, चक्षु, आत्मा, विभावसु, सविता, ऋचीक, अर्क, भानु, आशावह तथा रवि—ये सब शब्द विवस्वान्‌के बोधक माने गये हैं, इन सबमें जो अन्तिम 'रवि' हैं वे 'मह्य' (मही—पृथ्वीमें गर्भ स्थापन करनेवाले एवं पूज्य) माने गये हैं। इनके तनय देवभ्राट् हैं और देवभ्राट्के तनय सुभ्राट् माने गये हैं॥ ४२-४३॥

सुभ्राजस्तु त्रयः पुत्राः प्रजावन्तो बहुश्रुताः।
दशज्योतिः शतज्योतिः सहस्रज्योतिरेव च॥ ४४॥

सुभ्राट्के तीन पुत्र हुए, वे सब-के-सब संतानवान् और बहुश्रुत (अनेक शास्त्रोंके) ज्ञाता हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—दशज्योति, शतज्योति तथा सहस्रज्योति॥ ४४॥

दशपुत्रसहस्राणि दशज्योतेर्महात्मनः।
तेषां दशगुणाश्चान्ये शतज्योतेरिहात्मजाः॥ ४५॥

महात्मा दशज्योतिके दस हजार पुत्र हुए। उनसे भी दस गुने अर्थात् एक लाख पुत्र यहाँ शतज्योतिके हुए॥ ४५॥

ऋषयो दशगुणाः सहस्रज्योतिषः सुताः।
तेभ्योऽयं कुरुवंशश्च यदूनां भरतस्य च॥ ४६॥
इक्ष्वाकूणां वंशश्च राजर्षीणां च सर्वशः।
एतेना बहवो वंशा भूतसर्गाः सुविस्तराः॥ ४७॥

फिर उनसे भी दस गुने अर्थात् दस लाख पुत्र सहस्रज्योतिके हुए। उन्हींसे यह कुरुवंश, यदुवंश, भरतवंश, तथा इक्ष्वाकुके वंश तथा अन्य राजर्षियोंके सब वंश और ऋषियोंकी सृष्टिपरम्परा और बहुत-से वंश भी इनसे प्रकट हो विस्तारको प्राप्त हुए हैं॥ ४६-४७॥

पुराणानि सर्वाणि रहस्यं त्रिविधं च यत्।
वेदाः सांगाः सविज्ञानो धर्मोऽर्थः काम एव च॥ ४८॥
इतिहासायंयुक्तानि शास्त्राणि विविधानि च।
लोकयात्राविधानं च सर्वं तद् दृष्टवानृषिः॥ ४९॥

भगवान् वेदव्यासने, अपनी ज्ञानदृष्टिसे सम्पूर्ण प्राणियोंके निवासस्थान, धर्म, अर्थ और कामके भेदसे त्रिविध रहस्य, कर्मोपासनाज्ञानरूप वेद, विज्ञानसहित योग, धर्म, अर्थ एवं काम, इन धर्म, काम और अर्थरूप तीन पुरुषार्थोंके प्रतिपादन करनेवाले विविध शास्त्र, लोकव्यवहारकी सिद्धिके लिये आयुर्वेद, धनुर्वेद, स्थापत्यवेद, गान्धर्ववेद आदि लौकिक शास्त्र सब उन्हीं दशज्योति आदिसे हुए हैं—इस तत्त्वको और उनके स्वरूपको भलीभाँति अनुभव किया॥ ४८-४९॥

इतिहासाः सवैयाख्या विविधाः श्रुतयोऽपि च।
इह सर्वमनुक्रान्तमुक्तं ग्रन्थस्य लक्षणम्॥ ५०॥

उन्होंने ही इस महाभारत ग्रन्थमें, व्याख्याके साथ उस सब इतिहासका तथा विविध प्रकारकी श्रुतियोंके रहस्य आदिका पूर्णरूपसे निरूपण किया है और इस पूर्णताको ही इस ग्रन्थका लक्षण बताया गया है॥ ५०॥

विस्तीर्यैतन्महज्ज्ञानमृषिः संक्षिप्य चाब्रवीत्।
इष्टं हि विदुषां लोके समासव्यासधारणम्॥ ५१॥

महर्षिने इस महान् ज्ञानका संक्षेप और विस्तार दोनों ही प्रकारसे वर्णन किया है; क्योंकि संसारमें विद्वान् पुरुष संक्षेप और विस्तार दोनों ही रीतियोंको पसंद करते हैं॥ ५१॥

मन्वादि भारतं केचिदास्तीकादि तथा परे।
तथोपरिचराद्यन्ये विप्राः सम्यगधीयते॥ ५२॥

कोई-कोई इस ग्रन्थका आरम्भ 'नारायणं नमस्कृत्य'-से मानते हैं और कोई-कोई आस्तीकपर्वसे। दूसरे विद्वान् ब्राह्मण उपरिचर वसुकी कथासे इसका विधिपूर्वक पाठ प्रारम्भ करते हैं॥ ५२॥

विविधं संहिताज्ञानं दीपयन्ति मनीषिणः।
व्याख्यातुं कुशलाः केचिद् ग्रन्थान् धारयितुं परे॥ ५३॥

विद्वान् पुरुष इस भारतसंहिताके ज्ञानको विविध प्रकारसे प्रकाशित करते हैं। कोई-कोई ग्रन्थकी व्याख्या करके समझानेमें कुशल होते हैं तो दूसरे विद्वान् अपनी तीक्ष्ण मेधाशक्तिके द्वारा इन ग्रन्थोंको धारण करते हैं॥ ५३॥

तपसा ब्रह्मचर्येण व्यस्य वेदं सनातनम्।
इतिहासमिमं चक्रे पुण्यं सत्यवतीसुतः॥ ५४॥

सत्यवतीनन्दन भगवान् व्यासने अपनी तपस्या एवं ब्रह्मचर्यकी शक्तिसे सनातन वेदका विस्तार करके इस लोकपावन पवित्र इतिहासका निर्माण किया है॥ ५४॥

पराशरात्मजो विद्वान् ब्रह्मर्षिः संशितव्रतः।
तदाख्यानवरिष्ठं स कृत्वा द्वैपायनः प्रभुः॥ ५५॥

कथमध्यापयानीह शिष्यान्नित्यन्वचिन्तयत्।
तस्य तच्चिन्तितं ज्ञात्वा ऋषेर्द्वैपायनस्य च॥ ५६॥
तत्राजगाम भगवान् ब्रह्मा लोकगुरुः स्वयम्।
प्रीत्यर्थं तस्य चैवर्षेर्लोकानां हितकाम्यया॥ ५७॥

प्रशस्त व्रतधारी, निग्रहानुग्रह-समर्थ, सर्वज्ञ पराशरनन्दन ब्रह्मर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन इस इतिहासशिरोमणि महाभारतकी रचना करके यह विचार करने लगे कि अब शिष्योंको इस ग्रन्थका अध्ययन कैसे कराऊँ? जनतामें इसका प्रचार कैसे हो? द्वैपायन ऋषिका यह विचार जानकर लोकगुरु भगवान् ब्रह्मा उन महात्माकी प्रसन्नता तथा लोककल्याणकी कामनासे स्वयं ही व्यासजीके आश्रमपर पधारे॥ ५५—५७॥

तं दृष्ट्वा विस्मितो भूत्वा प्राञ्जलिः प्रणतः स्थितः।
आसनं कल्पयामास सर्वैर्मुनिगणैर्वृतः॥ ५८॥

व्यासजी ब्रह्माजीको देखकर आश्चर्यचकित रह गये। उन्होंने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और खड़े रहे। फिर सावधान होकर सब ऋषि-मुनियोंके साथ उन्होंने ब्रह्माजीके लिये आसनकी व्यवस्था की॥ ५८॥

हिरण्यगर्भमासीनं तस्मिंस्तु परमासने।
परिवृत्यासनाभ्याशे वासवेयः स्थितोऽभवत्॥ ५९॥

जब उस श्रेष्ठ आसनपर ब्रह्माजी विराज गये, तब व्यासजीने उनकी परिक्रमा की और ब्रह्माजीके आसनके समीप ही विनयपूर्वक खड़े हो गये॥ ५९॥

अनुज्ञातोऽथ कृष्णस्तु ब्रह्मणा परमेष्ठिना।
निषसादासनाभ्याशे प्रीयमाणः शुचिस्मितः॥ ६०॥

परमेष्ठी ब्रह्माजीकी आज्ञासे वे उनके आसनके पास ही बैठ गये। उस समय व्यासजीके हृदयमें आनन्दका समुद्र उमड़ रहा था और मुखपर मन्द-मन्द पवित्र मुसकान लहरा रही थी॥ ६०॥

उवाच स महातेजा ब्रह्माणं परमेष्ठिनम्।
कृतं मयेदं भगवन् काव्यं परमपूजितम्॥ ६१॥

परम तेजस्वी व्यासजीने परमेष्ठी ब्रह्माजीसे निवेदन किया—'भगवन्! मैंने यह सम्पूर्ण लोकोंसे अत्यन्त पूजित एक महाकाव्यकी रचना की है'॥ ६१॥

ब्रह्मन् वेदरहस्यं च यच्चान्यत् स्थापितं मया।
साङ्गोपनिषदां चैव वेदानां विस्तरक्रिया॥ ६२॥

ब्रह्मन्! मैंने इस महाकाव्यमें सम्पूर्ण वेदोंका गुप्ततम रहस्य तथा अन्य सब शास्त्रोंका सार-सार संकलित करके स्थापित कर दिया है। केवल वेदोंका ही नहीं, उनके अंग एवं उपनिषदोंका भी इसमें विस्तारसे निरूपण किया है॥ ६२॥

इतिहासपुराणानामुन्मेषं निर्मितं च यत्।
भूतं भव्यं भविष्यं च त्रिविधं कालसंज्ञितम्॥ ६३॥

इस ग्रन्थमें इतिहास और पुराणोंका मन्थन करके उनका प्रशस्त रूप प्रकट किया गया है। भूत, वर्तमान और भविष्यकालकी इन तीनों संज्ञाओंका भी वर्णन हुआ है॥ ६३॥

जरामृत्युभयव्याधिभावाभावविनिश्चयः।
विविधस्य च धर्मस्य ह्याश्रमाणां च लक्षणम्॥ ६४॥

इस ग्रन्थमें बुढ़ापा, मृत्यु, भय, रोग और पदार्थोंके सत्यत्व और मिथ्यात्वका विशेषरूपसे निश्चय किया गया है तथा अधिकारी-भेदसे भिन्न-भिन्न प्रकारके धर्मों एवं आश्रमोंका भी लक्षण बताया गया है॥ ६४॥

चातुर्वर्ण्यविधानं च पुराणानां च कृत्स्नशः।
तपसो ब्रह्मचर्यस्य पृथिव्याश्चन्द्रसूर्ययोः॥ ६५॥
ग्रहनक्षत्रताराणां प्रमाणं च युगैः सह।
ऋचो यजूंषि सामानि वेदाध्यात्मं तथैव च॥ ६६॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन चारों वर्णोंके कर्तव्यका विधान, पुराणोंका सम्पूर्ण मूलतत्त्व भी प्रकट हुआ है। तपस्या एवं ब्रह्मचर्यके स्वरूप, अनुष्ठान एवं फलोंका विवरण, पृथ्वी, चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारा, सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग—इन सबके परिमाण और प्रमाण, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और इनके आध्यात्मिक अभिप्राय और अध्यात्मशास्त्रका इस ग्रन्थमें विस्तारसे वर्णन किया गया है॥ ६५-६६॥

न्यायशिक्षाचिकित्सा च दानं पाशुपतं तथा।
हेतुनैव समं जन्म दिव्यमानुषसंज्ञितम्॥ ६७॥

न्याय, शिक्षा, चिकित्सा, दान तथा पाशुपत (अन्तर्यामीकी महिमा)-का भी इसमें विशद निरूपण है। साथ ही यह भी बतलाया गया है कि देवता, मनुष्य आदि भिन्न-भिन्न योनियोंमें जन्मका कारण क्या है?॥ ६७॥

तीर्थानां चैव पुण्यानां देशानां चैव कीर्तनम्।
नदीनां पर्वतानां च वनानां सागरस्य च॥ ६८॥

लोकपावन तीर्थों, देशों, नदियों, पर्वतों, वनों और समुद्रका भी इसमें वर्णन किया गया है॥ ६८॥

पुराणां चैव दिव्यानां कल्पानां युद्धकौशलम्।
वाक्यजातिविशेषाश्च लोकयात्राक्रमश्च यः॥ ६९॥
यच्चापि सर्वगं वस्तु तच्चैव प्रतिपादितम्।
परं न लेखकः कश्चिदेतस्य भुवि विद्यते॥ ७०॥

दिव्य नगर एवं दुर्गोंके निर्माणका कौशल तथा युद्धकी निपुणताका भी वर्णन है। भिन्न-भिन्न भाषाओं और जातियोंकी जो विशेषताएँ हैं, लोकव्यवहारकी सिद्धिके लिये जो कुछ आवश्यक है तथा और भी जितने लोकोपयोगी पदार्थ हो सकते हैं, उन सबका इसमें प्रतिपादन किया गया है; परंतु मुझे इस बातकी चिन्ता है कि पृथ्वीमें इस ग्रन्थको लिख सके ऐसा कोई नहीं है'॥ ६९-७०॥

ब्रह्मोवाच

नपोविशिष्टादपि वै विशिष्टान्मुनिसंचयात्।
मन्ये श्रेष्ठतरं त्वां वै रहस्यज्ञानवेदनात्॥ ७१॥

ब्रह्माजीने कहा—व्यासजी! संसारमें विशिष्ट तपस्या और विशिष्ट कुलके कारण जितने भी श्रेष्ठ ऋषि-मुनि हैं, उनमें मैं तुम्हें सर्वश्रेष्ठ समझता हूँ; क्योंकि तुम जगत्, जीव और ईश्वर-तत्त्वका जो ज्ञान है, उसके ज्ञाता हो॥ ७१॥

जन्मप्रभृति सत्यां ते वेद्मि गां ब्रह्मवादिनीम्।
त्वया च काव्यमित्युक्तं तस्मात् काव्यं भविष्यति॥ ७२॥

मैं जानता हूँ कि आजीवन तुम्हारी ब्रह्मवादिनी वाणी सत्य भाषण करती रही है और तुमने अपनी रचनाको काव्य कहा है, इसलिये अब यह काव्यके नामसे ही प्रसिद्ध होगी॥ ७२॥

अस्य काव्यस्य कवयो न समर्था विशेषणे।
विशेषणे गृहस्थस्य शेषास्त्रय इवाश्रमाः॥ ७३॥
काव्यस्य लेखनार्थाय गणेशः स्मर्यतां मुने।

संसारके बड़े-से-बड़े कवि भी इस काव्यसे बढ़कर कोई रचना नहीं कर सकेंगे। ठीक वैसे ही, जैसे ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास तीनों आश्रम अपनी विशेषताओंद्वारा गृहस्थाश्रमसे आगे नहीं बढ़ सकते। मुनिवर! अपने काव्यको लिखवानेके लिये तुम गणेशजीका स्मरण करो॥ ७३½॥

सौतिरुवाच

इत्युक्त्वाभाष्य तं ब्रह्मा जगाम स्वं निवेशनम्॥ ७४॥

उग्रश्रवाजी कहते हैं—महात्माओ! ब्रह्माजी व्यासजीसे इस प्रकार सम्भाषण करके अपने धाम ब्रह्मलोकमें चले गये॥ ७४॥

ततः सस्मार हेरम्बं व्यासः सत्यवतीसुतः।
स्मृतमात्रो गणेशानो भक्तचिन्तितपूरकः॥ ७५॥
तत्र जगाम विघ्नेशो वेदव्यासो यतः स्थितः।
मुदितश्चोपविष्टश्च व्यासेनोक्तस्तदाऽनघ॥ ७६॥

निष्पाप शौनक! तदनन्तर सत्यवतीनन्दन व्यासजीने भगवान् गणेशका स्मरण किया और स्मरण करते ही भक्तवांछाकल्पतरु विघ्नेश्वर श्रीगणेशजी महाराज वहाँ आये, जहाँ व्यासजी विद्यमान थे। व्यासजीने गणेशजीका बड़े आदर और प्रेमसे स्वागत-सत्कार किया और वे जब बैठ गये, तब उनसे कहा—॥ ७५-७६॥

लेखको भारतस्यास्य भव त्वं गणनायक।
मयैव प्रोच्यमानस्य मनसा कल्पितस्य च॥ ७७॥

'गणनायक! आप मेरे द्वारा निर्मित इस महाभारत-ग्रन्थके लेखक बन जाइये; मैं बोलकर लिखाता जाऊँगा। मैंने मन-ही-मन इसकी रचना कर ली है'॥ ७७॥

श्रुत्वैतत् प्राह विघ्नेशो यदि मे लेखनी क्षणम्।
लिखितो नावतिष्ठेत तदा स्यां लेखको ह्यहम्॥ ७८॥

यह सुनकर विघ्नराज श्रीगणेशजीने कहा—'व्यासजी! यदि लिखते समय क्षणभरके लिये भी मेरी लेखनी न रुके तो मैं इस ग्रन्थका लेखक बन सकता हूँ'॥ ७८॥

व्यासोऽप्युवाच तं देवमबुद्ध्वा मा लिख क्वचित्।
ओमित्युक्त्वा गणेशोऽपि बभूव किल लेखकः॥ ७९॥

व्यासजीने भी गणेशजीसे कहा—'बिना समझे किसी भी प्रसंगमें एक अक्षर भी न लिखियेगा।' गणेशजीने 'ॐ' कहकर स्वीकार किया और लेखक बन गये॥ ७९॥

ग्रन्थग्रन्थिं तदा चक्रे मुनिर्गूढं कुतूहलात्।
यस्मिन् प्रतिज्ञया प्राह मुनिर्द्वैपायनस्त्विदम्॥ ८०॥

तब व्यासजी भी कुतूहलवश ग्रन्थमें गाँठ लगाने लगे। वे ऐसे-ऐसे श्लोक बोल देते जिनका अर्थ बाहरसे दूसरा मालूम पड़ता और भीतर कुछ और होता। इसके सम्बन्धमें प्रतिज्ञापूर्वक श्रीकृष्णद्वैपायन मुनिने यह बात कही है—॥ ८०॥

अष्टौ श्लोकसहस्राणि अष्टौ श्लोकशतानि च।
अहं वेद्मि शुको वेत्ति संजयो वेत्ति वा न वा॥ ८१॥

इस ग्रन्थमें ८,८०० (आठ हजार आठ सौ) श्लोक ऐसे हैं, जिनका अर्थ मैं समझता हूँ, शुकदेव समझते हैं और संजय समझते हैं या नहीं, इसमें संदेह है॥ ८१॥

तच्छ्लोककूटमद्यापि ग्रथितं सुदृढं मुने।
भेत्तुं न शक्यतेऽर्थस्य गूढत्वात् प्रश्रितस्य च॥ ८२॥

मुनिवर! वे कूट श्लोक इतने गुँथे हुए और गम्भीरार्थक हैं कि आज भी उनका रहस्य-भेदन नहीं किया जा सकता; क्योंकि उनका अर्थ भी गूढ़ है और शब्द भी योगवृत्ति और रूढवृत्ति आदि रचनावैचित्र्यके कारण गम्भीर हैं॥ ८२॥

सर्वज्ञोऽपि गणेशो यत् क्षणमास्ते विचारयन्।
तावच्चकार व्यासोऽपि श्लोकानन्यान् बहूनपि॥ ८३॥

स्वयं सर्वज्ञ गणेशजी भी उन श्लोकोंका विचार करते समय क्षणभरके लिये ठहर जाते थे। इतने समयमें व्यासजी भी और बहुत-से श्लोकोंकी रचना कर लेते थे॥ ८३॥

अज्ञानतिमिरान्धस्य लोकस्य तु विचेष्टतः।
ज्ञानाञ्जनशलाकाभिर्नेत्रोन्मीलनकारकम् ॥ ८४॥
धर्मार्थकाममोक्षार्थैः समासव्यासकीर्तनैः।
तथा भारतसूर्येण नृणां विनिहतं तमः॥ ८५॥

संसारी जीव अज्ञानान्धकारसे अंधे होकर छटपटा रहे हैं। यह महाभारत ज्ञानांजनकी शलाका लगाकर उनकी आँख खोल देता है। वह शलाका क्या है? धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप पुरुषार्थोंका संक्षेप और विस्तारसे वर्णन। यह न केवल अज्ञानकी रतौंधी दूर करता, प्रत्युत सूर्यके समान उदित होकर मनुष्योंकी आँखके सामनेका सम्पूर्ण अन्धकार ही नष्ट कर देता है॥ ८४-८५॥

पुराणपूर्णचन्द्रेण श्रुतिज्योत्स्नाः प्रकाशिताः।
नृबुद्धिकैरवाणां च कृतमेतत् प्रकाशनम्॥ ८६॥

यह भारत-पुराण पूर्ण चन्द्रमाके समान है, जिससे श्रुतियोंकी चाँदनी छिटकती है और मनुष्योंकी बुद्धिरूपी कुमुदिनी सदाके लिये खिल जाती है॥ ८६॥

इतिहासप्रदीपेन मोहावरणघातिना।
लोकगर्भगृहं कृत्स्नं यथावत् सम्प्रकाशितम्॥ ८७॥

यह भारत-इतिहास एक जाज्वल्यमान दीपक है। यह मोहका अन्धकार मिटाकर लोगोंके अन्तःकरण-रूप सम्पूर्ण अन्तरंग गृहको भलीभाँति ज्ञानालोकसे प्रकाशित कर देता है॥ ८७॥

संग्रहाध्यायबीजो वै पौलोमास्तीकमूलवान्।
सम्भवस्कन्धविस्तारः सभारण्यविटङ्कवान्॥ ८८॥

महाभारत-वृक्षका बीज है संग्रहाध्याय और जड़ है पौलोम एवं आस्तीकपर्व। सम्भवपर्व इसके स्कन्धका विस्तार है और सभा तथा अरण्यपर्व पक्षियोंके रहनेयोग्य कोटर हैं॥ ८८॥

अरणीपर्वरूपाढ्यो विराटोद्योगसारवान्।
भीष्मपर्वमहाशाखो द्रोणपर्वपलाशवान्॥ ८९॥

अरणीपर्व इस वृक्षका ग्रन्थिस्थल है। विराट और उद्योगपर्व इसका सारभाग है। भीष्मपर्व इसकी बड़ी शाखा है और द्रोणपर्व इसके पत्ते हैं॥ ८९॥

कर्णपर्वसितैः पुष्पैः शल्यपर्वसुगन्धिभिः।
स्त्रीपर्वैषीकविश्रामः शान्तिपर्वमहाफलः॥ ९०॥

कर्णपर्व इसके श्वेत पुष्प हैं और शल्यपर्व सुगन्ध। स्त्रीपर्व और ऐषीकपर्व इसकी छाया है तथा शान्तिपर्व इसका महान् फल है॥ ९०॥

अश्वमेधामृतरसस्त्वाश्रमस्थानसंश्रयः ।
मौसलः श्रुतिसंक्षेपः शिष्टद्विजनिषेवितः॥ ९१॥

अश्वमेधपर्व इसका अमृतमय रस है और आश्रम-वासिकपर्व आश्रय लेकर बैठनेका स्थान। मौसलपर्व श्रुति-रूपा ऊँची-ऊँची शाखाओंका अन्तिम भाग है तथा सदाचार एवं विद्यासे सम्पन्न द्विजाति इसका सेवन करते हैं॥ ९१॥

सर्वेषां कविमुख्यानामुपजीव्यो भविष्यति।
पर्जन्य इव भूतानामक्षयो भारतद्रुमः॥ ९२॥

संसारमें जितने भी श्रेष्ठ कवि होंगे उनके काव्यके लिये यह मूल आश्रय होगा। जैसे मेघ सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये जीवनदाता है, वैसे ही यह अक्षय भारत-वृक्ष है॥ ९२॥

सौतिरुवाच

तस्य वृक्षस्य वक्ष्यामि शश्वत्पुष्पफलोदयम्।
स्वादुमेध्यरसोपेतमच्छेद्यममरैरपि ॥ ९३॥

उग्रश्रवाजी कहते हैं—यह भारत एक वृक्ष है। इसके स्वादु, पवित्र, सरस एवं अविनाशी पुष्प तथा फल हैं—धर्म और मोक्ष। उन्हें देवता भी इस वृक्षसे अलग नहीं कर सकते; अब मैं उन्हींका वर्णन करूँगा॥ ९३॥

मातुर्नियोगाद् धर्मात्मा गाङ्गेयस्य च धीमतः।
क्षेत्रे विचित्रवीर्यस्य कृष्णद्वैपायनः पुरा॥ ९४॥
त्रीनग्नीनिव कौरव्यान् जनयामास वीर्यवान्।
उत्पाद्य धृतराष्ट्रं च पाण्डुं विदुरमेव च॥ ९५॥

पहलेकी बात है—शक्तिशाली, धर्मात्मा श्रीकृष्णद्वैपायन (व्यास)-ने अपनी माता सत्यवती और परमज्ञानी गंगापुत्र भीष्मपितामहकी आज्ञासे विचित्रवीर्यकी पत्नी अम्बिका आदिके गर्भसे तीन अग्नियोंके समान तेजस्वी तीन कुरुवंशी पुत्र उत्पन्न किये, जिनके नाम हैं—धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर॥ ९४-९५॥

जगाम तपसे धीमान् पुनरेवाश्रमं प्रति।
तेषु जातेषु वृद्धेषु गतेषु परमां गतिम्॥ ९६॥
अब्रवीद् भारतं लोके मानुषेऽस्मिन् महानृषिः।
जनमेजयेन पृष्टः सन् ब्राह्मणैश्च सहस्रशः॥ ९७॥

शशास शिष्यमासीनं वैशम्पायनमन्तिके।
ससदस्यैः सहासीनः श्रावयामास भारतम्॥ ९८॥
कर्मान्तरेषु यज्ञस्य चोद्यमानः पुनः पुनः।

इन तीन पुत्रोंको जन्म देकर परम ज्ञानी व्यासजी फिर अपने आश्रमपर चले गये। जब वे तीनों पुत्र वृद्ध हो परम गतिको प्राप्त हुए, तब महर्षि व्यासजीने इस मनुष्यलोकमें महाभारतका प्रवचन किया। जनमेजय और हजारों ब्राह्मणोंके प्रश्न करनेपर व्यासजीने पास ही बैठे अपने शिष्य वैशम्पायनको आज्ञा दी कि तुम इन लोगोंको महाभारत सुनाओ। वैशम्पायन याज्ञिक सदस्योंके साथ ही बैठे थे, अतः जब यज्ञकर्ममें बीच-बीचमें अवकाश मिलता, तब यजमान आदिके बार-बार आग्रह करनेपर वे उन्हें महाभारत सुनाया करते थे॥ ९६—९८½॥

विस्तरं कुरुवंशस्य गान्धार्या धर्मशीलताम्॥ ९९॥
क्षत्तुः प्रज्ञां धृतिं कुन्त्याः सम्यग् द्वैपायनोऽब्रवीत्।
वासुदेवस्य माहात्म्यं पाण्डवानां च सत्यताम्॥ १००॥
दुर्वृत्तं धार्तराष्ट्राणामुक्तवान् भगवानृषिः।
इदं शतसहस्रं तु लोकानां पुण्यकर्मणाम्॥ १०१॥
उपाख्यानैः सह ज्ञेयमाद्यं भारतमुत्तमम्।

इस महाभारत-ग्रन्थमें व्यासजीने कुरुवंशके विस्तार, गान्धारीकी धर्मशीलता, विदुरकी उत्तम प्रज्ञा और कुन्तीदेवीके धैर्यका भलीभाँति वर्णन किया है। महर्षि भगवान् व्यासने इसमें वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णके माहात्म्य, पाण्डवोंकी सत्यपरायणता तथा धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन आदिके दुर्व्यवहारोंका स्पष्ट उल्लेख किया है। पुण्यकर्मा मानवोंके उपाख्यानोंसहित एक लाख श्लोकोंके इस उत्तम ग्रन्थको आद्यभारत (महाभारत) जानना चाहिये॥ ९९—१०१½॥

चतुर्विंशतिसाहस्रीं चक्रे भारतसंहिताम्॥ १०२॥
उपाख्यानैर्विना तावद् भारतं प्रोच्यते बुधैः।
ततोऽप्यर्धशतं भूयः संक्षेपं कृतवानृषिः॥ १०३॥
अनुक्रमणिकाध्यायं वृत्तान्तं सर्वपर्वणाम्।
इदं द्वैपायनः पूर्वं पुत्रमध्यापयच्छुकम्॥ १०४॥

तदनन्तर व्यासजीने उपाख्यानभागको छोड़कर चौबीस हजार श्लोकोंकी भारतसंहिता बनायी; जिसे विद्वान् पुरुष भारत कहते हैं। इसके पश्चात् महर्षिने पुनः पर्वसहित ग्रन्थमें वर्णित वृत्तान्तोंकी अनुक्रमणिका (सूची)-का एक संक्षिप्त अध्याय बनाया, जिसमें केवल डेढ़ सौ श्लोक हैं। व्यासजीने सबसे पहले अपने पुत्र शुकदेवजीको इस महाभारत-ग्रन्थका अध्ययन कराया॥ १०२—१०४॥

ततोऽन्येभ्योऽनुरूपेभ्यः शिष्येभ्यः प्रददौ विभुः।
षष्टिं शतसहस्राणि चकारान्यां स संहिताम्॥ १०५॥

तदनन्तर उन्होंने दूसरे-दूसरे सुयोग्य (अधिकारी एवं अनुगत) शिष्योंको इसका उपदेश दिया। तत्पश्चात् भगवान् व्यासने साठ लाख श्लोकोंकी एक दूसरी संहिता बनायी॥ १०५॥

त्रिंशच्छतसहस्रं च देवलोके प्रतिष्ठितम्।
पित्र्ये पञ्चदश प्रोक्तं गन्धर्वेषु चतुर्दश॥ १०६॥

उसके तीस लाख श्लोक देवलोकमें समादृत हो रहे हैं, पितृलोकमें पंद्रह लाख तथा गन्धर्वलोकमें चौदह लाख श्लोकोंका पाठ होता है॥ १०६॥

एकं शतसहस्रं तु मानुषेषु प्रतिष्ठितम्।
नारदोऽश्रावयद् देवानसितो देवलः पितॄन्॥ १०७॥

इस मनुष्यलोकमें एक लाख श्लोकोंका आद्यभारत (महाभारत) प्रतिष्ठित है। देवर्षि नारदने देवताओंको और असित-देवलने पितरोंको इसका श्रवण कराया है॥ १०७।

गन्धर्वयक्षरक्षांसि श्रावयामास वै शुकः।
अस्मिंस्तु मानुषे लोके वैशम्पायन उक्तवान्॥ १०८॥
शिष्यो व्यासस्य धर्मात्मा सर्ववेदविदां वरः।
एकं शतसहस्रं तु मयोक्तं वै निबोधत॥ १०९॥

शुकदेवजीने गन्धर्व, यक्ष तथा राक्षसोंको महाभारतकी कथा सुनायी है; परंतु इस मनुष्यलोकमें सम्पूर्ण वेदवेत्ताओंके शिरोमणि व्यास-शिष्य धर्मात्मा वैशम्पायनजीने इसका प्रवचन किया है। मुनिवरो! वही एक लाख श्लोकोंका महाभारत आपलोग मुझसे श्रवण कीजिये॥ १०८-१०९॥

दुर्योधनो मन्युमयो महाद्रुमः
स्कन्धः कर्णः शकुनिस्तस्य शाखाः।
दुःशासनः पुष्पफले समृद्धे
मूलं राजा धृतराष्ट्रोऽमनीषी॥ ११०॥

दुर्योधन क्रोधमय विशाल वृक्षके समान है। कर्ण स्कन्ध, शकुनि शाखा और दुःशासन समृद्ध फल-पुष्प है। अज्ञानी राजा धृतराष्ट्र ही इसके मूल हैं*॥ ११०॥

---

* यह और इसके बादका श्लोक महाभारतके तात्पर्यके सूचक हैं। दुर्योधन क्रोध है। यहाँ क्रोध शब्दसे द्वेष-असूया आदि दुर्गुण भी समझ लेने चाहिये। कर्ण, शकुनि, दुःशासन आदि उससे एकताको प्राप्त हैं, उसीके स्वरूप हैं। इन सबका मूल है राजा धृतराष्ट्र। यह अज्ञानी अपने मनको वशमें करनेमें असमर्थ है। इसीने पुत्रोंकी आसक्तिसे अंधे होकर दुर्योधनको अवसर दिया, जिससे उसकी जड़ मजबूत हो गयी। यदि यह दुर्योधनको वशमें कर लेता अथवा बचपनमें ही

युधिष्ठिरो धर्ममयो महाद्रुमः
स्कन्धोऽर्जुनो भीमसेनोऽस्य शाखाः।
माद्रीसुतौ पुष्पफले समृद्धे
मूलं कृष्णो ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च॥ १११॥

युधिष्ठिर धर्ममय विशाल वृक्ष हैं। अर्जुन स्कन्ध, भीमसेन शाखा और माद्रीनन्दन इसके समृद्ध फल-पुष्प हैं। श्रीकृष्ण, वेद और ब्राह्मण ही इस वृक्षके मूल (जड़) हैं*॥ १११॥

पाण्डुर्जित्वा बहून् देशान् बुद्ध्या विक्रमणेन च।
अरण्ये मृगयाशीलो न्यवसन्मुनिभिः सह॥ ११२॥

महाराज पाण्डु अपनी बुद्धि और पराक्रमसे अनेक देशोंपर विजय पाकर (हिंसक) मृगोंको मारनेके स्वभाववाले होनेके कारण ऋषि-मुनियोंके साथ वनमें ही निवास करते थे॥ ११२॥

मृगव्यवायनिधनात् कृच्छ्रां प्राप स आपदम्।
जन्मप्रभृति पार्थानां तत्राचारविधिक्रमः॥ ११३॥

एक दिन उन्होंने मृगरूपधारी महर्षिको मैथुनकालमें मार डाला। इससे वे बड़े भारी संकटमें पड़ गये (ऋषिने यह शाप दे दिया कि स्त्री-सहवास करनेपर तुम्हारी मृत्यु हो जायगी), यह संकट होते हुए भी युधिष्ठिर आदि पाण्डवोंके जन्मसे लेकर जातकर्म आदि सब संस्कार वनमें ही हुए और वहीं उन्हें शील एवं सदाचारकी रक्षाका उपदेश हुआ॥ ११३॥

मात्रोरभ्युपपत्तिश्च धर्मोपनिषदं प्रति।
धर्मस्य वायोः शक्रस्य देवयोश्च तथाश्विनोः॥ ११४॥

(पूर्वोक्त शाप होनेपर भी संतान होनेका कारण यह था कि) कुल-धर्मकी रक्षाके लिये दुर्वासाद्वारा प्राप्त हुई विद्याका आश्रय लेनेके कारण पाण्डवोंकी दोनों माताओं कुन्ती और माद्रीके समीप क्रमशः धर्म, वायु, इन्द्र तथा दोनों अश्विनीकुमार—इन देवताओंका आगमन सम्भव हो सका (इन्हींकी कृपासे युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन एवं नकुल-सहदेवकी उत्पत्ति हुई)॥ ११४॥

(ततो धर्मोपनिषदः श्रुत्वा भर्तुः प्रिया पृथा।
धर्मानिलेन्द्रान् स्तुतिभिर्जुहाव सुतवाञ्छया।
तद्दत्तोपनिषन्माद्री चाश्विनावाजुहाव च।)
तापसैः सह संवृद्धा मातृभ्यां परिरक्षिताः।
मेध्यारण्येषु पुण्येषु महतामाश्रमेषु च॥ ११५॥

पतिप्रिया कुन्तीने पतिके मुखसे धर्म-रहस्यकी बातें सुनकर पुत्र पानेकी इच्छासे मन्त्र-जपपूर्वक स्तुतिद्वारा धर्म, वायु और इन्द्र देवताका आवाहन किया। कुन्तीके उपदेश देनेपर माद्री भी उस मन्त्र-विद्याको जान गयी और उसने संतानके लिये दोनों अश्विनीकुमारोंका आवाहन किया। इस प्रकार इन पाँचों देवताओंसे पाण्डवोंकी उत्पत्ति हुई। पाँचों पाण्डव अपनी दोनों माताओंद्वारा ही पाले-पोसे गये। वे वनोंमें और महात्माओंके परम पुण्य आश्रमोंमें ही तपस्वी लोगोंके साथ दिनोदिन बढ़ने लगे॥ ११५॥

ऋषिभिर्यत्तदाऽऽनीता धार्तराष्ट्रान् प्रति स्वयम्।
शिशवश्चाभिरूपाश्च जटिला ब्रह्मचारिणः॥ ११६॥

(पाण्डुकी मृत्यु होनेके पश्चात्) बड़े-बड़े ऋषि-मुनि स्वयं ही पाण्डवोंको लेकर धृतराष्ट्र एवं उनके पुत्रोंके पास आये। उस समय पाण्डव नन्हे-नन्हे शिशुके रूपमें बड़े ही सुन्दर लगते थे। वे सिरपर जटा धारण किये ब्रह्मचारीके वेशमें थे॥ ११६॥

विदुर आदिकी बात मानकर इसका त्याग कर देता तो विष-दान, लाक्षागृहदाह, द्रौपदी-केशाकर्षण आदि दुष्कर्मोंका अवसर ही नहीं आता और कुलक्षय न होता। इस प्रसंगसे यह भाव सूचित किया गया है कि यह जो मन्यु (दुर्योधन)-रूप वृक्ष है, इसका दृढ़ अज्ञान ही मूल है, क्रोध-लोभादि स्कन्ध हैं, हिंसा-चोरी आदि शाखाएँ हैं और बन्धन-नरकादि इसके फल-पुष्प हैं। पुरुषार्थकामी पुरुषको मूलाज्ञानका उच्छेद करके पहले ही इस (क्रोधरूप) वृक्षको नष्ट कर देना चाहिये।

* युधिष्ठिर धर्म हैं। इसका अभिप्राय यह है कि वे शम, दम, सत्य, अहिंसा आदि रूप धर्मकी मूर्ति हैं। अर्जुन-भीम आदिको धर्मकी शाखा बतलानेका अभिप्राय यह है कि वे सब युधिष्ठिरके ही स्वरूप हैं, उनसे अभिन्न हैं। शुद्धसत्त्वमय ज्ञानविग्रह श्रीकृष्णरूप परमात्मा ही उसके मूल हैं। उनके दृढ़ ज्ञानसे ही धर्मकी नींव मजबूत होती है। श्रुति भगवतीने कहा है कि 'हे गार्गी! इस अविनाशी परमात्माको जाने बिना इस लोकमें जो हजारों वर्षपर्यन्त यज्ञ करता है, दान देता है, तपस्या करता है, उन सबका फल नाशवान् ही होता है।' ज्ञानका मूल है ब्रह्म अर्थात् वेद। वेदसे ही परमधर्म योग और अपरधर्म यज्ञ-यागादिका ज्ञान होता है। यह निश्चित सिद्धान्त है कि धर्मका मूल केवल शब्दप्रमाण ही है। वेदके भी मूल ब्राह्मण हैं; क्योंकि वे ही वेद-सम्प्रदायके प्रवर्तक हैं। इस प्रकार उपदेशकके रूपमें ब्राह्मण, प्रमाणके रूपमें वेद और अनुग्राहकके रूपमें परमात्मा धर्मका मूल है। इससे यह बात सिद्ध हुई है कि वेद और ब्राह्मणका भक्त अधिकारी पुरुष भगवदाराधनके बलसे योगादिरूप धर्ममय वृक्षका सम्पादन करे। उस वृक्षके अहिंसा-सत्य आदि तने हैं। धारण-ध्यान आदि शाखाएँ हैं और तत्त्व-साक्षात्कार ही उसका फल है। इस धर्ममय वृक्षके समाश्रयसे ही पुरुषार्थकी सिद्धि होती है, अन्यथा नहीं।

पुत्राश्च भ्रातरश्चेमे शिष्याश्च सुहृदश्च वः।
पाण्डवा एत इत्युक्त्वा मुनयोऽन्तर्हितास्ततः॥ ११७॥

ऋषियोंने वहाँ जाकर धृतराष्ट्र एवं उनके पुत्रोंसे कहा—'ये तुम्हारे पुत्र, भाई, शिष्य और सुहृद् हैं। ये सभी महाराज पाण्डुके ही पुत्र हैं।' इतना कहकर वे मुनि वहाँसे अन्तर्धान हो गये॥ ११७॥

तांस्तैर्निवेदितान् दृष्ट्वा पाण्डवान् कौरवास्तदा।
शिष्टाश्च वर्णाः पौरा ये ते हर्षाच्चुक्रुशुर्भृशम्॥ ११८॥

ऋषियोंद्वारा लाये हुए उन पाण्डवोंको देखकर सभी कौरव और नगरनिवासी, शिष्ट तथा वर्णाश्रमी हर्षसे भरकर अत्यन्त कोलाहल करने लगे॥ ११८॥

आहुः केचिन्न तस्यैते तस्यैत इति चापरे।
यदा चिरमृतः पाण्डुः कथं तस्येति चापरे॥ ११९॥

कोई कहते, 'ये पाण्डुके पुत्र नहीं हैं।' दूसरे कहते, 'अजी! ये उन्हींके हैं।' कुछ लोग कहते, 'जब पाण्डुको मरे इतने दिन हो गये, तब ये उनके पुत्र कैसे हो सकते हैं?'॥

स्वागतं सर्वथा दिष्ट्या पाण्डोः पश्याम संततिम्।
उच्यतां स्वागतमिति वाचोऽश्रूयन्त सर्वशः॥ १२०॥

फिर सब लोग कहने लगे, 'हम तो सर्वथा इनका स्वागत करते हैं। हमारे लिये बड़े सौभाग्यकी बात है कि आज हम महाराज पाण्डुकी संतानको अपनी आँखोंसे देख रहे हैं।' फिर तो सब ओरसे स्वागत बोलनेवालोंकी ही बातें सुनायी देने लगीं॥ १२०॥

तस्मिन्नुपरते शब्दे दिशः सर्वा निनादयन्।
अन्तर्हितानां भूतानां निःस्वनस्तुमुलोऽभवत्॥ १२१॥

दर्शकोंका वह तुमुल शब्द बन्द होनेपर सम्पूर्ण दिशाओंको प्रतिध्वनित करती हुई अदृश्य भूतों—देवताओंकी यह सम्मिलित आवाज (आकाशवाणी) गूँज उठी—'ये पाण्डव ही हैं'॥ १२१॥

पुष्पवृष्टिः शुभा गन्धाः शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनाः।
आसन् प्रवेशे पार्थानां तदद्भुतमिवाभवत्॥ १२२॥

जिस समय पाण्डवोंने नगरमें प्रवेश किया, उसी समय फूलोंकी वर्षा होने लगी, सब ओर सुगन्ध छा गयी तथा शंख और दुन्दुभियोंके मांगलिक शब्द सुनायी देने लगे। यह एक अद्भुत चमत्कारकी-सी बात हुई॥ १२२॥

तत्प्रीत्या चैव सर्वेषां पौराणां हर्षसम्भवः।
शब्द आसीन्महांस्तत्र दिवःस्पृक्कीर्तिवर्धनः॥ १२३॥

सभी नागरिक पाण्डवोंके प्रेमसे आनन्दमें भरकर ऊँचे स्वरसे अभिनन्दन-ध्वनि करने लगे। उनका वह महान् शब्द स्वर्गलोकतक गूँज उठा जो पाण्डवोंकी कीर्ति बढ़ानेवाला था॥ १२३॥

तेऽधीत्य निखिलान् वेदाञ्छास्त्राणि विविधानि च।
न्यवसन् पाण्डवास्तत्र पूजिता अकुतोभयाः॥ १२४॥

वे सम्पूर्ण वेद एवं विविध शास्त्रोंका अध्ययन करके वहीं निवास करने लगे। सभी उनका आदर करते थे और उन्हें किसीसे भय नहीं था॥ १२४॥

युधिष्ठिरस्य शौचेन प्रीताः प्रकृतयोऽभवन्।
धृत्या च भीमसेनस्य विक्रमेणार्जुनस्य च॥ १२५॥
गुरुशुश्रूषया क्षान्त्या यमयोर्विनयेन च।
तुतोष लोकः सकलस्तेषां शौर्यगुणेन च॥ १२६॥

राष्ट्रकी सम्पूर्ण प्रजा युधिष्ठिरके शौचाचार, भीमसेनकी धृति, अर्जुनके विक्रम तथा नकुल-सहदेवकी गुरुशुश्रूषा, क्षमाशीलता और विनयसे बहुत ही प्रसन्न होती थी। सब लोग पाण्डवोंके शौर्यगुणसे संतोषका अनुभव करते थे*॥

समवाये ततो राज्ञां कन्यां भर्तृस्वयंवराम्।
प्राप्तवानर्जुनः कृष्णां कृत्वा कर्म सुदुष्करम्॥ १२७॥

तदनन्तर कुछ कालके पश्चात् राजाओंके समुदायमें अर्जुनने अत्यन्त दुष्कर पराक्रम करके स्वयं ही पति चुननेवाली द्रुपदकन्या कृष्णाको प्राप्त किया॥ १२७॥

ततः प्रभृति लोकेऽस्मिन् पूज्यः सर्वधनुष्मताम्।
आदित्य इव दुष्प्रेक्ष्यः समरेष्वपि चाभवत्॥ १२८॥

तभीसे वे इस लोकमें सम्पूर्ण धनुर्धारियोंके

---

* शास्त्रोक्त आचारका परित्याग न करना, सदाचारी सत्पुरुषोंका संग करना और सदाचारमें दृढ़तासे स्थित रहना—इसे 'शौच' कहते हैं। अपनी इच्छाके अनुकूल और प्रतिकूल पदार्थोंकी प्राप्ति होनेपर चित्तमें विकार न होना ही 'धृति' है। सबसे बढ़कर सामर्थ्यका होना ही 'विक्रम' है। सद्वृत्तकी अनुवृत्ति ही 'शुश्रूषा' है। (सदाचारपरायण गुरुजनोंका अनुसरण गुरुशुश्रूषा है।) किसीके द्वारा अपराध बन जानेपर भी उसके प्रति अपने चित्तमें क्रोध आदि विकारोंका न होना 'क्षमाशीलता' है। जितेन्द्रियता अथवा अनुद्धत रहना ही 'विनय' है। बलवान् शत्रुको भी पराजित कर देनेका अध्यवसाय 'शौर्य' है। इनके संग्राहक श्लोक इस प्रकार हैं—

आचारापरिहारश्च संसर्गश्चाप्यनिन्दितैः। आचारे च व्यवस्थानं शौचमित्यभिधीयते॥
इष्टानिष्टार्थसम्पत्तौ चित्तस्याविकृतिर्धृतिः। सर्वातिशयसामर्थ्यं विक्रमं परिचक्षते॥
वृत्तानुवृत्तिः शुश्रूषा क्षान्तिरागस्यविक्रिया। जितेन्द्रियत्वं विनयोऽथवानुद्धतशीलता॥
शौर्यमध्यवसायः स्याद् बलिनोऽपि पराभवे॥

पूजनीय (आदरणीय) हो गये और समरांगणमें प्रचण्ड मार्तण्डकी भाँति प्रतापी अर्जुनकी ओर किसीके लिये आँख उठाकर देखना भी कठिन हो गया॥ १२८॥

स सर्वान् पार्थिवान् जित्वा सर्वांश्च महतो गणान्।
आजहारार्जुनो राज्ञो राजसूयं महाक्रतुम्॥ १२९॥

उन्होंने पृथक्-पृथक् तथा महान् संघ बनाकर आये हुए सब राजाओंको जीतकर महाराज युधिष्ठिरके राजसूय नामक महायज्ञको सम्पन्न कराया॥ १२९॥

अन्नवान् दक्षिणावांश्च सर्वैः समुदितो गुणैः।
युधिष्ठिरेण सम्प्राप्तो राजसूयो महाक्रतुः॥ १३०॥
सुनयाद् वासुदेवस्य भीमार्जुनबलेन च।
घातयित्वा जरासन्धं चैद्यं च बलगर्वितम्॥ १३१॥

भगवान् श्रीकृष्णकी सुन्दर नीति और भीमसेन तथा अर्जुनकी शक्तिसे बलके घमण्डमें चूर रहनेवाले जरासन्ध और चेदिराज शिशुपालको मरवाकर धर्मराज युधिष्ठिरने महायज्ञ राजसूयका सम्पादन किया। वह यज्ञ सभी उत्तम* गुणोंसे सम्पन्न था। उसमें प्रचुर अन्न और पर्याप्त दक्षिणाका वितरण किया गया था॥ १३०-१३१॥

दुर्योधनं समागच्छन्नर्हणानि ततस्ततः।
मणिकाञ्चनरत्नानि गोहस्त्यश्वधनानि च॥ १३२॥
विचित्राणि च वासांसि प्रावारावरणानि च।
कम्बलाजिनरत्नानि राङ्कवास्तरणानि च॥ १३३॥

उस समय इधर-उधर विभिन्न देशों तथा नृपतियोंके यहाँसे मणि, सुवर्ण, रत्न, गाय, हाथी, घोड़े, धन-सम्पत्ति, विचित्र वस्त्र, तम्बू, कनात, परदे, उत्तम कम्बल, श्रेष्ठ मृगचर्म तथा रंकुनामक मृगके बालोंसे बने हुए कोमल बिछौने आदि जो उपहारकी बहुमूल्य वस्तुएँ आतीं, वे दुर्योधनके हाथमें दी जातीं—उसीकी देख-रेखमें रखी जाती थीं॥ १३२-१३३॥

समृद्धां तां तथा दृष्ट्वा पाण्डवानां तदा श्रियम्।
ईर्ष्यासमुत्थः सुमहांस्तस्य मन्युरजायत॥ १३४॥

उस समय पाण्डवोंकी वह बढ़ी-चढ़ी समृद्धि-सम्पत्ति देखकर दुर्योधनके मनमें ईर्ष्याजनित महान् रोष एवं दुःखका उदय हुआ॥ १३४॥

विमानप्रतिमां तत्र मयेन सुकृतां सभाम्।
पाण्डवानामुपहृतां स दृष्ट्वा पर्यतप्यत॥ १३५॥

उस अवसरपर मयदानवने पाण्डवोंको एक सभाभवन भेंटमें दिया था, जिसकी रूपरेखा विमानके समान थी। वह भवन उसके शिल्पकौशलका एक अच्छा नमूना था। उसे देखकर दुर्योधनको और अधिक संताप हुआ॥ १३५॥

तत्रावहसितश्चासीत् प्रस्कन्दन्निव सम्भ्रमात्।
प्रत्यक्षं वासुदेवस्य भीमेनानभिजातवत्॥ १३६॥

उसी सभाभवनमें जब सम्भ्रम (जलमें स्थल और स्थलमें जलका भ्रम) होनेके कारण दुर्योधनके पाँव फिसलने-से लगे, तब भगवान् श्रीकृष्णके सामने ही भीमसेनने उसे गँवार-सा सिद्ध करते हुए उसकी हँसी उड़ायी थी॥ १३६॥

स भोगान् विविधान् भुञ्जन् रत्नानि विविधानि च।
कथितो धृतराष्ट्रस्य विवर्णो हरिणः कृशः॥ १३७॥

दुर्योधन नाना प्रकारके भोग तथा भाँति-भाँतिके रत्नोंका उपयोग करते रहनेपर भी दिनोदिन दुबला रहने लगा। उसका रंग फीका पड़ गया। इसकी सूचना कर्मचारियोंने महाराज धृतराष्ट्रको दी॥ १३७॥

अन्वजानात् ततो द्यूतं धृतराष्ट्रः सुतप्रियः।
तच्छ्रुत्वा वासुदेवस्य कोपः समभवन्महान्॥ १३८॥

धृतराष्ट्र अपने उस पुत्रके प्रति अधिक आसक्त थे, अतः उसकी इच्छा जानकर उन्होंने उसे पाण्डवोंके साथ जूआ खेलनेकी आज्ञा दे दी। जब भगवान् श्रीकृष्णने यह समाचार सुना, तब उन्हें धृतराष्ट्रपर बड़ा क्रोध आया॥ १३८॥

नातिप्रीतमनाश्चासीद् विवादांश्चान्वमोदत।
द्यूतादीननयान् घोरान् विविधांश्चाप्युपैक्षत॥ १३९॥

यद्यपि उनके मनमें कलहकी सम्भावनाके कारण कुछ विशेष प्रसन्नता नहीं हुई, तथापि उन्होंने (मौन रहकर) इन विवादोंका अनुमोदन ही किया और भिन्न-भिन्न प्रकारके भयंकर अन्याय, द्यूत आदिको देखकर भी उनकी उपेक्षा कर दी॥ १३९॥

निरस्य विदुरं भीष्मं द्रोणं शारद्वतं कृपम्।
विग्रहे तुमुले तस्मिन् दहन् क्षत्रं परस्परम्॥ १४०॥

(इस अनुमोदन या उपेक्षाका कारण यह था कि वे धर्मनाशक दुष्ट राजाओंका संहार चाहते थे। अतः उन्हें विश्वास था कि) इस विग्रहजनित महान् युद्धमें विदुर, भीष्म, द्रोणाचार्य तथा कृपाचार्यकी अवहेलना करके सभी दुष्ट क्षत्रिय एक-दूसरेको अपनी क्रोधाग्निमें भस्म कर डालेंगे॥ १४०॥

---

* आचार्य, ब्रह्मा, ऋत्विक्, सदस्य, यजमान, यजमानपत्नी, धन-सम्पत्ति, श्रद्धा-उत्साह, विधि-विधानका सम्यक् पालन एवं सद्बुद्धि आदि यज्ञकी उत्तम गुणसामग्रीके अन्तर्गत हैं।

जयत्सु पाण्डुपुत्रेषु श्रुत्वा सुमहदप्रियम्।
दुर्योधनमतं ज्ञात्वा कर्णस्य शकुनेस्तथा॥ १४१॥
धृतराष्ट्रश्चिरं ध्यात्वा संजयं वाक्यमब्रवीत्।
शृणु संजय सर्वं मे न चासूयितुमर्हसि॥ १४२॥
श्रुतवानसि मेधावी बुद्धिमान् प्राज्ञसम्मतः।
न विग्रहे मम मतिर्न च प्रीये कुलक्षये॥ १४३॥

जब युद्धमें पाण्डवोंकी जीत होती गयी, तब यह अत्यन्त अप्रिय समाचार सुनकर तथा दुर्योधन, कर्ण और शकुनिके दुराग्रहपूर्ण निश्चित विचार जानकर धृतराष्ट्र बहुत देरतक चिन्तामें पड़े रहे। फिर उन्होंने संजयसे कहा—'संजय! मेरी सब बातें सुन लो। फिर इस युद्ध या विनाशके लिये मुझे दोष न दे सकोगे। तुम विद्वान्, मेधावी, बुद्धिमान् और पण्डितके लिये भी आदरणीय हो। इस युद्धमें मेरी सम्मति बिलकुल नहीं थी और यह जो हमारे कुलका विनाश हो गया है, इससे मुझे तनिक भी प्रसन्नता नहीं हुई है॥ १४१—१४३॥

न मे विशेषः पुत्रेषु स्वेषु पाण्डुसुतेषु वा।
वृद्धं मामभ्यसूयन्ति पुत्रा मन्युपरायणाः॥ १४४॥

मेरे लिये अपने पुत्रों और पाण्डवोंमें कोई भेद नहीं था। किंतु क्या करूँ? मेरे पुत्र क्रोधके वशीभूत हो मुझपर ही दोषारोपण करते थे और मेरी बात नहीं मानते थे॥ १४४॥

अहं त्वचक्षुः कार्पण्यात् पुत्रप्रीत्या सहामि तत्।
मुह्यन्तं चानुमुह्यामि दुर्योधनमचेतनम्॥ १४५॥

मैं अंधा हूँ, अतः कुछ दीनताके कारण और कुछ पुत्रके प्रति अधिक आसक्ति होनेसे भी वह सब अन्याय सहता आ रहा हूँ। मन्दबुद्धि दुर्योधन जब मोहवश दुःखी होता था, तब मैं भी उसके साथ दुःखी हो जाता था॥ १४५॥

राजसूये श्रियं दृष्ट्वा पाण्डवस्य महौजसः।
तच्चावहसनं प्राप्य सभारोहणदर्शने॥ १४६॥
अमर्षणः स्वयं जेतुमशक्तः पाण्डवान् रणे।
निरुत्साहश्च सम्प्राप्तुं सुश्रियं क्षत्रियोऽपि सन्॥ १४७॥
[illegible]धाराजसहितश्छद्मद्यूतममन्त्रयत्।
तत्र यद् यद् यथा ज्ञातं मया संजय तच्छृणु॥ १४८॥

राजसूय-यज्ञमें महापराक्रमी पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरकी [illegible] समृद्धि-सम्पत्ति देखकर तथा सभाभवनकी [illegible] चढ़ते और उस भवनको देखते समय [illegible] द्वारा उपहास पाकर दुर्योधन भारी अमर्षमें भर गया था। युद्धमें पाण्डवोंको हरानेकी शक्ति तो उसमें थी नहीं; अतः क्षत्रिय होते हुए भी वह युद्धके लिये उत्साह नहीं दिखा सका। परंतु पाण्डवोंकी उस उत्तम सम्पत्तिको हथियानेके लिये उसने गान्धारराज शकुनिको साथ लेकर कपटपूर्ण द्यूत खेलनेका ही निश्चय किया। संजय! इस प्रकार जूआ खेलनेका निश्चय हो जानेपर उसके पहले और पीछे जो-जो घटनाएँ घटित हुई हैं उन सबका विचार करते हुए मैंने समय-समयपर विजयकी आशाके विपरीत जो-जो अनुभव किया है उसे कहता हूँ, सुनो—॥ १४६—१४८॥

श्रुत्वा तु मम वाक्यानि बुद्धियुक्तानि तत्त्वतः।
ततो ज्ञास्यसि मां सौते प्रज्ञाचक्षुषमित्युत॥ १४९॥

सूतनन्दन! मेरे उन बुद्धिमत्तापूर्ण वचनोंको सुनकर तुम ठीक-ठीक समझ लोगे कि मैं कितना प्रज्ञाचक्षु हूँ॥ १४९॥

यदाश्रौषं धनुरायम्य चित्रं
विद्धं लक्ष्यं पातितं वै पृथिव्याम्।
कृष्णां हृतां प्रेक्षतां सर्वराज्ञां
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १५०॥

संजय! जब मैंने सुना कि अर्जुनने धनुषपर बाण चढ़ाकर अद्भुत लक्ष्य बेध दिया और उसे धरतीपर गिरा दिया। साथ ही सब राजाओंके सामने, जबकि वे टुकुर-टुकुर देखते ही रह गये, बलपूर्वक द्रौपदीको ले आया, तभी मैंने विजयकी आशा छोड़ दी थी॥ १५०॥

यदाश्रौषं द्वारकायां सुभद्रां
प्रसह्योढां माधवीमर्जुनेन।
इन्द्रप्रस्थं वृष्णिवीरौ च यातौ
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १५१॥

संजय! जब मैंने सुना कि अर्जुनने द्वारकामें मधुवंशकी राजकुमारी (और श्रीकृष्णकी बहिन) सुभद्राको बलपूर्वक हरण कर लिया और श्रीकृष्ण एवं बलराम (इस घटनाका विरोध न कर) दहेज लेकर इन्द्रप्रस्थमें आये, तभी समझ लिया था कि मेरी विजय नहीं हो सकती॥ १५१॥

यदाश्रौषं देवराजं प्रविष्टं
शरैर्दिव्यैर्वारितं चार्जुनेन।
अग्निं तथा तर्पितं खाण्डवे च
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १५२॥

जब मैंने सुना कि खाण्डवदाहके समय देवराज

इन्द्र तो वर्षा करके आग बुझाना चाहते थे और अर्जुनने उसे अपने दिव्य बाणोंसे रोक दिया तथा अग्निदेवको तृप्त किया, संजय! तभी मैंने समझ लिया कि अब मेरी विजय नहीं हो सकती॥ १५२॥

यदाश्रौषं जातुषाद् वेश्मनस्तान्
मुक्तान् पार्थान् पञ्च कुन्त्या समेतान्।
युक्तं चैषां विदुरं स्वार्थसिद्धौ
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १५३॥

जब मैंने सुना कि लाक्षाभवनसे अपनी मातासहित पाँचों पाण्डव बच गये हैं और स्वयं विदुर उनकी स्वार्थसिद्धिके प्रयत्नमें तत्पर हैं, संजय! तभी मैंने विजयकी आशा छोड़ दी थी॥ १५३॥

यदाश्रौषं द्रौपदीं रङ्गमध्ये
लक्ष्यं भित्त्वा निर्जितामर्जुनेन।
शूरान् पञ्चालान् पाण्डवेयांश्च युक्तां-
स्तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १५४॥

जब मैंने सुना कि रंगभूमिमें लक्ष्यवेध करके अर्जुनने द्रौपदी प्राप्त कर ली है और पांचाल वीर तथा पाण्डव वीर परस्पर सम्बद्ध हो गये हैं, संजय! उसी समय मैंने विजयकी आशा छोड़ दी॥ १५४॥

यदाश्रौषं मागधानां वरिष्ठं
जरासन्धं क्षत्रमध्ये ज्वलन्तम्।
दोर्भ्यां हतं भीमसेनेन गत्वा
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १५५॥

जब मैंने सुना कि मगधराज-शिरोमणि, क्षत्रियजातिके जाज्वल्यमान रत्न जरासन्धको भीमसेनने उसकी राजधानीमें जाकर बिना अस्त्र-शस्त्रके हाथोंसे ही चीर दिया। संजय! मेरी जीतकी आशा तो तभी टूट गयी॥ १५५॥

यदाश्रौषं दिग्विजये पाण्डुपुत्रै-
र्वशीकृतान् भूमिपालान् प्रसह्य।
महाक्रतुं राजसूयं कृतं च
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १५६॥

जब मैंने सुना कि दिग्विजयके समय पाण्डवोंने बलपूर्वक बड़े-बड़े भूमिपतियोंको अपने अधीन कर लिया और महायज्ञ राजसूय सम्पन्न कर दिया। संजय! तभी मैंने समझ लिया कि मेरी विजयकी कोई आशा नहीं है॥ १५६॥

यदाश्रौषं द्रौपदीमश्रुकण्ठीं
सभां नीतां दुःखितामेकवस्त्राम्।
रजस्वलां नाथवतीमनाथवत्
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १५७॥

संजय! जब मैंने सुना कि दुःखिता द्रौपदी रजस्वलावस्थामें आँखोंमें आँसू भरे केवल एक वस्त्र पहने वीर पतियोंके रहते हुए भी अनाथके समान भरी सभामें घसीटकर लायी गयी है, तभी मैंने समझ लिया था कि अब मेरी विजय नहीं हो सकती॥ १५७॥

यदाश्रौषं वाससां तत्र राशिं
समाक्षिपत् कितवो मन्दबुद्धिः।
दुःशासनो गतवान् नैव चान्तं
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १५८॥

जब मैंने सुना कि धूर्त एवं मन्दबुद्धि दुःशासनने द्रौपदीका वस्त्र खींचा और वहाँ वस्त्रोंका इतना ढेर लग गया कि वह उसका पार न पा सका; संजय! तभीसे मुझे विजयकी आशा नहीं रही॥ १५८॥

यदाश्रौषं हृतराज्यं युधिष्ठिरं
पराजितं सौबलेनाक्षवत्याम्।
अन्वागतं भ्रातृभिरप्रमेयै-
स्तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १५९॥

संजय! जब मैंने सुना कि धर्मराज युधिष्ठिरको जूएमें शकुनिने हरा दिया और उनका राज्य छीन लिया, फिर भी उनके अतुल बलशाली धीर गम्भीर भाइयोंने युधिष्ठिरका अनुगमन ही किया, तभी मैंने विजयकी आशा छोड़ दी॥ १५९॥

यदाश्रौषं विविधास्तत्र चेष्टा
धर्मात्मनां प्रस्थितानां वनाय।
ज्येष्ठप्रीत्या क्लिश्यतां पाण्डवानां
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १६०॥

जब मैंने सुना कि वनमें जाते समय धर्मात्मा पाण्डव धर्मराज युधिष्ठिरके प्रेमवश दुःख पा रहे थे और अपने हृदयका भाव प्रकाशित करनेके लिये विविध प्रकारकी चेष्टाएँ कर रहे थे; संजय! तभी मेरी विजयकी आशा नष्ट हो गयी॥ १६०॥

यदाश्रौषं स्नातकानां सहस्रै-
रन्वागतं धर्मराजं वनस्थम्।
भिक्षाभुजां ब्राह्मणानां महात्मनां
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १६१॥

जब मैंने सुना कि हजारों स्नातक वनवासी युधिष्ठिरके साथ रह रहे हैं और वे तथा दूसरे महात्मा

[illegible] ब्राह्मण उनसे भिक्षा प्राप्त करते हैं। संजय! तभी [illegible] विजयके सम्बन्धमें निराश हो गया॥ १६१॥

यदाश्रौषमर्जुनं देवदेवं
किरातरूपं त्र्यम्बकं तोष्य युद्धे।
अवाप्तवन्तं पाशुपतं महास्त्रं
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १६२॥

संजय! जब मैंने सुना कि किरातवेषधारी देवदेव त्रिलोचन महादेवको युद्धमें संतुष्ट करके अर्जुनने पाशुपत नामक महान् अस्त्र प्राप्त कर लिया है, तभी [illegible] आशा निराशामें परिणत हो गयी॥ १६२॥

यदाश्रौषं वनवासे तु पार्थान्
समागतान् महर्षिभिः पुराणैः।
उपास्यमानान् सगणैर्जातसख्यान्
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥)
यदाश्रौषं त्रिदिवस्थं धनञ्जयं
शक्रात् साक्षाद् दिव्यमस्त्रं यथावत्।
अर्धायानं शंसितं सत्यसन्धं
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १६३॥

जब मैंने सुना कि वनवासमें भी कुन्तीपुत्रोंके [illegible] पुरातन महर्षिगण पधारते और उनसे मिलते हैं। [illegible] साथ उठते-बैठते और निवास करते हैं तथा [illegible]-सम्बन्धियोंसहित पाण्डवोंके प्रति उनका मैत्रीभाव [illegible] है। संजय! तभीसे मुझे अपने पक्षकी विजयका [illegible] नहीं रह गया था। जब मैंने सुना कि सत्यसंध [illegible] अर्जुन स्वर्गमें गये हुए हैं और वहाँ साक्षात् [illegible] दिव्य अस्त्र-शस्त्रकी विधिपूर्वक शिक्षा प्राप्त कर [illegible] हैं और वहाँ उनके पौरुष एवं ब्रह्मचर्य आदिकी [illegible] हो रही है, संजय! तभीसे मेरी युद्धमें विजयकी [illegible] जाती रही॥ १६३॥

यदाश्रौषं कालकेयास्ततस्ते
पौलोमानो वरदानाच्च दृप्ताः।
देवैरेया निर्जिताश्चार्जुनेन
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १६४॥

जबसे मैंने सुना कि वरदानके प्रभावसे घमंडके [illegible] कालकेय तथा पौलोम नामके असुरोंको, [illegible] बड़े-बड़े देवता भी नहीं जीत सकते थे, अर्जुनने [illegible]-युद्धमें पराजित कर दिया, तभीसे संजय! मैंने [illegible] आशा कभी नहीं की॥ १६४॥

यदाश्रौषमसुराणां वधार्थे
किरीटिनं यान्तममित्रकर्शनम्।
कृतार्थं चाप्यागतं शक्रलोकात्
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १६५॥

मैंने जब सुना कि शत्रुओंका संहार करनेवाले किरीटी अर्जुन असुरोंका वध करनेके लिये गये थे और इन्द्रलोकसे अपना काम पूरा करके लौट आये हैं, संजय! तभी मैंने समझ लिया—अब मेरी जीतकी कोई आशा नहीं॥ १६५॥

(यदाश्रौषं तीर्थयात्राप्रवृत्तं
पाण्डोः सुतं सहितं लोमशेन।
तस्मादश्रौषीदर्जुनस्यार्थलाभं
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥)
यदाश्रौषं वैश्रवणेन सार्धं
समागतं भीममन्यांश्च पार्थान्।
तस्मिन् देशे मानुषाणामगम्ये
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १६६॥

जब मैंने सुना कि पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर महर्षि लोमशजीके साथ तीर्थयात्रा कर रहे हैं और लोमशजीके मुखसे ही उन्होंने यह भी सुना है कि स्वर्गमें अर्जुनको अभीष्ट वस्तु (दिव्यास्त्र)-की प्राप्ति हो गयी है, संजय! तभीसे मैंने विजयकी आशा ही छोड़ दी। जब मैंने सुना कि भीमसेन तथा दूसरे भाई उस देशमें जाकर, जहाँ मनुष्योंकी गति नहीं है, कुबेरके साथ मेल-मिलाप कर आये, संजय! तभी मैंने विजयकी आशा छोड़ दी थी॥ १६६॥

यदाश्रौषं घोषयात्रागतानां
बन्धं गन्धर्वैर्मोक्षणं चार्जुनेन।
स्वेषां सुतानां कर्णबुद्धौ रतानां
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १६७॥

जब मैंने सुना कि कर्णकी बुद्धिपर विश्वास करके चलनेवाले मेरे पुत्र घोषयात्राके निमित्त गये और गन्धर्वोंके हाथ बन्दी बन गये और अर्जुनने उन्हें उनके हाथसे छुड़ाया। संजय! तभीसे मैंने विजयकी आशा छोड़ दी॥ १६७॥

यदाश्रौषं यक्षरूपेण धर्मं
समागतं धर्मराजेन सूत।
प्रश्नान् कांश्चिद् विब्रुवाणं च सम्यक्
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १६८॥

सूत संजय! जब मैंने सुना कि धर्मराज यक्षका रूप धारण करके युधिष्ठिरसे मिले और युधिष्ठिरने उनके द्वारा किये गये गूढ़ प्रश्नोंका ठीक-ठीक समाधान कर दिया, तभी विजयके सम्बन्धमें मेरी आशा टूट गयी॥ १६८॥

यदाश्रौषं न विदुर्मामकास्तान्
प्रच्छन्नरूपान् वसतः पाण्डवेयान्।
विराटराष्ट्रे सह कृष्णया च
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १६९॥

संजय! विराटकी राजधानीमें गुप्तरूपसे द्रौपदीके साथ पाँचों पाण्डव निवास कर रहे थे, परंतु मेरे पुत्र और उनके सहायक इस बातका पता नहीं लगा सके; जब मैंने यह बात सुनी, मुझे यह निश्चय हो गया कि मेरी विजय सम्भव नहीं है॥ १६९॥

(यदाश्रौषं कीचकानां वरिष्ठं
निषूदितं भ्रातृशतेन सार्धम्।
द्रौपद्यर्थं भीमसेनेन संख्ये
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥)
यदाश्रौषं मामकानां वरिष्ठान्
धनञ्जयेनैकरथेन भग्नान्।
विराटराष्ट्रे वसता महात्मना
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १७०॥

संजय! जब मैंने सुना कि भीमसेनने द्रौपदीके प्रति किये हुए अपराधका बदला लेनेके लिये कीचकोंके सर्वश्रेष्ठ वीरको उसके सौ भाइयोंसहित युद्धमें मार डाला था, तभीसे मुझे विजयकी बिलकुल आशा नहीं रह गयी थी। संजय! जब मैंने सुना कि विराटकी राजधानीमें रहते समय महात्मा धनंजयने एकमात्र रथकी सहायतासे हमारे सभी श्रेष्ठ महारथियोंको (जो गो-हरणके लिये पूर्ण तैयारीके साथ वहाँ गये थे) मार भगाया, तभीसे मुझे विजयकी आशा नहीं रही॥ १७०॥

यदाश्रौषं सत्कृतां मत्स्यराज्ञा
सुतां दत्तामुत्तरामर्जुनाय।
तां चार्जुनः प्रत्यगृह्णात् सुतार्थे
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १७१॥

जिस दिन मैंने यह बात सुनी कि मत्स्यराज विराटने अपनी प्रिय एवं सम्मानित पुत्री उत्तराको अर्जुनके हाथ अर्पित कर दिया, परंतु अर्जुनने अपने लिये नहीं, अपने पुत्रके लिये उसे स्वीकार किया, संजय! उसी दिनसे मैं विजयकी आशा नहीं करता था॥ १७१॥

यदाश्रौषं निर्जितस्याधनस्य
प्रव्राजितस्य स्वजनात् प्रच्युतस्य।
अक्षौहिणीः सप्त युधिष्ठिरस्य
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १७२॥

संजय! युधिष्ठिर जूएमें पराजित हैं, निर्धन हैं, घरसे निकाले हुए हैं और अपने सगे-सम्बन्धियोंसे बिछुड़े हुए हैं। फिर भी जब मैंने सुना कि उनके पास सात अक्षौहिणी सेना एकत्र हो चुकी है, तभी विजयके लिये मेरे मनमें जो आशा थी, उसपर पानी फिर गया॥ १७२॥

यदाश्रौषं माधवं वासुदेवं
सर्वात्मना पाण्डवार्थे निविष्टम्।
यस्येमां गां विक्रममेकमाहु-
स्तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १७३॥

(वामनावतारके समय) यह सम्पूर्ण पृथ्वी जिनके एक डगमें ही आ गयी बतायी जाती है, वे लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्ण पूरे हृदयसे पाण्डवोंकी कार्यसिद्धिके लिये तत्पर हैं, जब यह बात मैंने सुनी, संजय! तभीसे मुझे विजयकी आशा नहीं रही॥ १७३॥

यदाश्रौषं नरनारायणौ तौ
कृष्णार्जुनौ वदतो नारदस्य।
अहं द्रष्टा ब्रह्मलोके च सम्यक्
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १७४॥

जब देवर्षि नारदके मुखसे मैंने यह बात सुनी कि श्रीकृष्ण और अर्जुन साक्षात् नर और नारायण हैं और इन्हें मैंने ब्रह्मलोकमें भलीभाँति देखा है, तभीसे मैंने विजयकी आशा छोड़ दी॥ १७४॥

यदाश्रौषं लोकहिताय कृष्णं
शमार्थिनमुपयातं कुरूणाम्।
शमं कुर्वाणमकृतार्थं च यातं
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १७५॥

संजय! जब मैंने सुना कि स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण लोककल्याणके लिये शान्तिकी इच्छासे आये हुए हैं और कौरव-पाण्डवोंमें शान्ति-सन्धि करवाना चाहते हैं, परंतु वे अपने प्रयासमें असफल होकर लौट गये, तभीसे मुझे विजयकी आशा नहीं रही॥ १७५॥

यदाश्रौषं कर्णदुर्योधनाभ्यां
बुद्धिं कृतां निग्रहे केशवस्य।
तं चात्मानं बहुधा दर्शयानं
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १७६॥

संजय! जब मैंने सुना कि कर्ण और दुर्योधन दोनोंने यह सलाह की है कि श्रीकृष्णको कैद कर लिया जाय और श्रीकृष्णने अपने-आपको अनेक रूपोंमें

विराट् या अखिल विश्वके रूपमें दिखा दिया, तभीसे मैंने विजयाशा त्याग दी थी॥ १७६॥

यदाश्रौषं वासुदेवे प्रयाते
रथस्यैकामग्रतस्तिष्ठमानाम् ।
आर्तां पृथां सान्त्वितां केशवेन
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १७७॥

जब मैंने सुना—यहाँसे श्रीकृष्णके लौटते समय अकेली कुन्ती उनके रथके सामने आकर खड़ी हो गयी और अपने हृदयकी आर्ति-वेदना प्रकट करने लगी, तब श्रीकृष्णने उसे भलीभाँति सान्त्वना दी। संजय! तभीसे मैंने विजयकी आशा छोड़ दी॥ १७७॥

यदाश्रौषं मन्त्रिणं वासुदेवं
तथा भीष्मं शान्तनवं च तेषाम्।
भारद्वाजं चाशिषोऽनुब्रुवाणं
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १७८॥

संजय! जब मैंने सुना कि श्रीकृष्ण पाण्डवोंके मन्त्री हैं और शान्तनुनन्दन भीष्म तथा भारद्वाज द्रोणाचार्य उन्हें आशीर्वाद दे रहे हैं, तब मुझे विजय-प्राप्तिकी किंचित् भी आशा नहीं रही॥ १७८॥

यदाश्रौषं कर्ण उवाच भीष्मं
नाहं योत्स्ये युध्यमाने त्वयीति।
हित्वा सेनामपचक्राम चापि
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १७९॥

जब कर्णने भीष्मसे यह बात कह दी कि आपके तक तुम युद्ध करते रहोगे तबतक मैं पाण्डवोंसे नहीं लड़ूँगा', इतना ही नहीं—वह सेनाको छोड़कर हट गया संजय! तभीसे मेरे मनमें विजयके लिये कुछ भी आशा नहीं रह गयी॥ १७९॥

यदाश्रौषं वासुदेवार्जुनौ तौ
तथा धनुर्गाण्डीवमप्रमेयम्।
क्षेत्रे युग्रवीर्याणि समागतानि
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १८०॥

संजय! जब मैंने सुना कि भगवान् श्रीकृष्ण, अर्जुन और अतुलित शक्तिशाली गाण्डीव धनुष— ये तीनों भयंकर प्रभावशाली शक्तियाँ इकट्ठी हुई हैं, तभी मैंने विजयकी आशा छोड़ दी॥ १८०॥

यदाश्रौषं कश्मलेनाभिपन्ने
रथोपस्थे सीदमानेऽर्जुने वै।
कृष्णे लोकान् दर्शयानं शरीरे
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १८१॥

संजय! जब मैंने सुना कि रथके पिछले भागमें स्थित मोहग्रस्त अर्जुन अत्यन्त दुःखी हो रहे थे और श्रीकृष्णने अपने शरीरमें उन्हें सब लोकोंका दर्शन करा दिया, तभी मेरे मनसे विजयकी सारी आशा समाप्त हो गयी॥ १८१॥

यदाश्रौषं भीष्ममप्रमित्रकर्शनं
निघ्नन्तमाजावयुतं रथानाम्।
नैषां कश्चिद् वध्यते ख्यातरूप-
स्तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १८२॥

जब मैंने सुना कि शत्रुघाती भीष्म रणांगणमें प्रतिदिन दस हजार रथियोंका संहार कर रहे हैं, परंतु पाण्डवोंका कोई प्रसिद्ध योद्धा नहीं मारा जा रहा है, संजय! तभी मैंने विजयकी आशा छोड़ दी॥ १८२॥

यदाश्रौषं चापगेयेन संख्ये
स्वयं मृत्युं विहितं धार्मिकेण।
तच्चाकार्षुः पाण्डवेयाः प्रहृष्टा-
स्तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १८३॥

जब मैंने सुना कि परम धार्मिक गंगानन्दन भीष्मने युद्धभूमिमें पाण्डवोंको अपनी मृत्युका उपाय स्वयं बता दिया और पाण्डवोंने प्रसन्न होकर उनकी उस आज्ञाका पालन किया। संजय! तभी मुझे विजयकी आशा नहीं रही॥ १८३॥

यदाश्रौषं भीष्ममत्यन्तशूरं
हतं पार्थेनाहवेष्वप्रधृष्यम्।
शिखण्डिनं पुरतः स्थापयित्वा
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १८४॥

जब मैंने सुना कि अर्जुनने सामने शिखण्डीको खड़ा करके उसकी ओटसे सर्वथा अजेय अत्यन्त शूर भीष्मपितामहको युद्धभूमिमें गिरा दिया। संजय! तभी मेरी विजयकी आशा समाप्त हो गयी॥ १८४॥

यदाश्रौषं शरतल्पे शयानं
वृद्धं वीरं सादितं चित्रपुङ्खैः।
भीष्मं कृत्वा सोमकानल्पशेषां-
स्तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १८५॥

जब मैंने सुना कि हमारे वृद्ध वीर भीष्मपितामह अधिकांश सोमकवंशी योद्धाओंका वध करके अर्जुनके बाणोंसे क्षत-विक्षत शरीर हो शरशय्यापर शयन कर रहे हैं, संजय! तभी मैंने समझ लिया अब मेरी विजय नहीं हो सकती॥ १८५॥

यदाश्रौषं शान्तनवे शयाने
पानीयार्थे चोदितेनार्जुनेन।
भूमिं भित्त्वा तर्पितं तत्र भीष्मं
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १८६॥

संजय! जब मैंने सुना कि शान्तनुनन्दन भीष्मपितामहने शरशय्यापर सोते समय अर्जुनको संकेत किया और उन्होंने बाणसे धरतीका भेदन करके उनकी प्यास बुझा दी, तब मैंने विजयकी आशा त्याग दी॥ १८६॥

यदा वायुश्चन्द्रसूर्यौ च युक्तौ
कौन्तेयानामनुलोमा जयाय।
नित्यं चास्माञ्श्वापदा भीषयन्ति
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १८७॥

जब वायु अनुकूल बहकर और चन्द्रमा-सूर्य लाभस्थानमें संयुक्त होकर पाण्डवोंकी विजयकी सूचना दे रहे हैं और कुत्ते आदि भयंकर प्राणी प्रतिदिन हमलोगोंको डरा रहे हैं। संजय! तब मैंने विजयके सम्बन्धमें अपनी आशा छोड़ दी॥ १८७॥

यदा द्रोणो विविधानस्त्रमार्गान्
निदर्शयन् समरे चित्रयोधी।
न पाण्डवाञ्श्रेष्ठतरान् निहन्ति
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १८८॥

संजय! हमारे आचार्य द्रोण बेजोड़ योद्धा थे और उन्होंने रणांगणमें अपने अस्त्र-शस्त्रके अनेकों विविध कौशल दिखलाये, परंतु जब मैंने सुना कि वे वीर-शिरोमणि पाण्डवोंमेंसे किसी एकका भी वध नहीं कर रहे हैं, तब मैंने विजयकी आशा त्याग दी॥ १८८॥

यदाश्रौषं चास्मदीयान् महारथान्
व्यवस्थितानर्जुनस्यान्तकाय।
संशप्तकान् निहतानर्जुनेन
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १८९॥

संजय! मेरी विजयकी आशा तो तभी नहीं रही जब मैंने सुना कि मेरे जो महारथी वीर संशप्तक योद्धा अर्जुनके वधके लिये मोर्चेपर डटे हुए थे, उन्हें अकेले ही अर्जुनने मौतके घाट उतार दिया॥ १८९॥

यदाश्रौषं व्यूहमभेद्यमन्यै-
र्भारद्वाजेनात्तशस्त्रेण गुप्तम्।
भित्त्वा सौभद्रं वीरमेकं प्रविष्टं
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १९०॥

संजय! स्वयं भारद्वाज द्रोणाचार्य अपने हाथमें शस्त्र उठाकर उस चक्रव्यूहकी रक्षा कर रहे थे, जिसको कोई दूसरा तोड़ ही नहीं सकता था, परंतु सुभद्रानन्दन वीर अभिमन्यु अकेला ही छिन्न-भिन्न करके उसमें घुस गया, जब यह बात मेरे कानोंतक पहुँची, तभी मेरी विजयकी आशा लुप्त हो गयी॥ १९०॥

यदाभिमन्युं परिवार्य बालं
सर्वे हत्वा हृष्टरूपा बभूवुः।
महारथाः पार्थमशक्नुवन्त-
स्तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १९१॥

संजय! मेरे बड़े-बड़े महारथी वीरवर अर्जुनके सामने तो टिक न सके और सबने मिलकर बालक अभिमन्युको घेर लिया और उसको मारकर हर्षित होने लगे, जब यह बात मुझतक पहुँची, तभीसे मैंने विजयकी आशा त्याग दी॥ १९१॥

यदाश्रौषमभिमन्युं निहत्य
हर्षान्मूढान् क्रोशतो धार्तराष्ट्रान्।
क्रोधादुक्तं सैन्धवे चार्जुनेन
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १९२॥

जब मैंने सुना कि मेरे मूढ़ पुत्र अपने ही वंशके होनहार बालक अभिमन्युकी हत्या करके हर्षपूर्ण कोलाहल कर रहे हैं और अर्जुनने क्रोधवश जयद्रथको मारनेकी भीषण प्रतिज्ञा की है, संजय! तभी मैंने विजयकी आशा छोड़ दी॥ १९२॥

यदाश्रौषं सैन्धवार्थे प्रतिज्ञां
प्रतिज्ञातां तद्वधायार्जुनेन।
सत्यां तीर्णां शत्रुमध्ये च तेन
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १९३॥

जब मैंने सुना कि अर्जुनने जयद्रथको मार डालनेकी जो दृढ़ प्रतिज्ञा की थी, उसने वह शत्रुओंसे भरी रणभूमिमें सत्य एवं पूर्ण करके दिखा दी। संजय! तभीसे मुझे विजयकी सम्भावना नहीं रह गयी॥ १९३॥

यदाश्रौषं श्रान्तहये धनञ्जये
मुक्त्वा हयान् पाययित्वोपवृत्तान्।
पुनर्युक्त्वा वासुदेवं प्रयातं
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १९४॥

युद्धभूमिमें धनञ्जय अर्जुनके घोड़े अत्यन्त श्रान्त और प्याससे व्याकुल हो रहे थे। स्वयं श्रीकृष्णने उन्हें रथसे खोलकर पानी पिलाया। फिरसे रथके निकट लाकर उन्हें जोत दिया और अर्जुनसहित वे सकुशल

[illegible] गये। जब मैंने यह बात सुनी, संजय! तभी मेरी [illegible] विजयकी आशा समाप्त हो गयी॥ १९४॥

यदाश्रौषं वाहनेष्वक्षमेषु
रथोपस्थे तिष्ठता पाण्डवेन।
[illegible]न् योधान् वारितानर्जुनेन
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १९५॥

जब संग्रामभूमिमें रथके घोड़े अपना काम करनेमें [illegible]र्थ हो गये, तब रथके समीप ही खड़े होकर [illegible]इवीर अर्जुनने अकेले ही सब योद्धाओंका [illegible] किया और उन्हें रोक दिया। मैंने जिस समय [illegible] बात सुनी, संजय! उसी समय मैंने विजयकी [illegible] छोड़ दी॥ १९५॥

यदाश्रौषं नागबलैः सुदुःसहं
द्रोणानीकं युयुधानं प्रमथ्य।
[illegible] वार्ष्णेयं यत्र तौ कृष्णपार्थौ
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १९६॥

[illegible]ब मैंने सुना कि वृष्णिवंशावतंस युयुधान— [illegible]ने अकेले ही द्रोणाचार्यकी उस सेनाको, जिसका [illegible] हाथियोंकी सेना भी नहीं कर सकती थी, तितर-[illegible] और तहस-नहस कर दिया तथा श्रीकृष्ण और [illegible] पास पहुँच गये। संजय! तभीसे मेरे लिये [illegible] आशा असम्भव हो गयी॥ १९६॥

यदाश्रौषं कर्णमासाद्य मुक्तं
वधाद् भीमं कुत्सयित्वा वचोभिः।
[illegible]ज्याऽऽतुद्य कर्णेन वीरं
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १९७॥

संजय! जब मैंने सुना कि वीर भीमसेन कर्णके [illegible] [illegible] गये थे, परंतु कर्णने तिरस्कारपूर्वक झिड़ककर [illegible] [illegible]नुषकी नोक चुभाकर ही छोड़ दिया तथा [illegible] मृत्युके मुखसे बच निकले। संजय! तभी मेरी [illegible] आशापर पानी फिर गया॥ १९७॥

यदाश्रौषं द्रोणः कृतवर्मा कृपश्च
कर्णो द्रौणिर्मद्रराजश्च शूरः।
[illegible]न् सैन्धवं वध्यमानं
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १९८॥

[illegible]ब मैंने सुना कि द्रोणाचार्य, कृतवर्मा, कृपाचार्य, [illegible] [illegible] अश्वत्थामा तथा वीर शल्यने भी सिन्धुराज [illegible] [illegible] सह लिया, प्रतीकार नहीं किया। संजय! [illegible] [illegible] विजयकी आशा छोड़ दी॥ १९८॥

यदाश्रौषं देवराजेन दत्तां
दिव्यां शक्तिं व्यंसितां माधवेन।
घटोत्कचे राक्षसे घोररूपे
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ १९९॥

संजय! देवराज इन्द्रने कर्णको कवचके बदले एक दिव्य शक्ति दे रखी थी और उसने उसे अर्जुनपर प्रयुक्त करनेके लिये रख छोड़ा था; परंतु मायापति श्रीकृष्णने भयंकर राक्षस घटोत्कचपर छुड़वाकर उससे भी वंचित करवा दिया। जिस समय यह बात मैंने सुनी, उसी समय मेरी विजयकी आशा टूट गयी॥ १९९॥

यदाश्रौषं कर्णघटोत्कचाभ्यां
युद्धे मुक्तां सूतपुत्रेण शक्तिम्।
यया वध्यः समरे सव्यसाची
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ २००॥

जब मैंने सुना कि कर्ण और घटोत्कचके युद्धमें कर्णने वह शक्ति घटोत्कचपर चला दी, जिससे रणांगणमें अर्जुनका वध किया जा सकता था। संजय! तब मैंने विजयकी आशा छोड़ दी॥ २००॥

यदाश्रौषं द्रोणमाचार्यमेकं
धृष्टद्युम्नेनाभ्यतिक्रम्य धर्मम्।
रथोपस्थे प्रायगतं विशस्तं
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ २०१॥

संजय! जब मैंने सुना कि आचार्य द्रोण पुत्रकी मृत्युके शोकसे शस्त्रादि छोड़कर आमरण अनशन करनेके निश्चयसे अकेले रथके पास बैठे थे और धृष्टद्युम्नने धर्मयुद्धकी मर्यादाका उल्लंघन करके उन्हें मार डाला, तभी मैंने विजयकी आशा छोड़ दी थी॥ २०१॥

यदाश्रौषं द्रौणिना द्वैरथस्थं
माद्रीसुतं नकुलं लोकमध्ये।
समं युद्धे मण्डलेभ्यश्चरन्तं
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ २०२॥

जब मैंने सुना कि अश्वत्थामा-जैसे वीरके साथ बड़े-बड़े वीरोंके सामने ही माद्रीनन्दन नकुल अकेले ही अच्छी तरह युद्ध कर रहे हैं। संजय! तब मुझे जीतकी आशा न रही॥ २०२॥

यदा द्रोणे निहते द्रोणपुत्रो
नारायणं दिव्यमस्त्रं विकुर्वन्।
नैषामन्तं गतवान् पाण्डवानां
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ २०३॥

जब द्रोणाचार्यकी हत्याके अनन्तर अश्वत्थामाने दिव्य नारायणास्त्रका प्रयोग किया; परंतु उससे वह पाण्डवोंका अन्त नहीं कर सका। संजय! तभी मेरी विजयकी आशा समाप्त हो गयी॥ २०३॥

यदाश्रौषं भीमसेनेन पीतं
रक्तं भ्रातुर्युधि दुःशासनस्य।
निवारितं नान्यतमेन भीमं
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ २०४॥

जब मैंने सुना कि रणभूमिमें भीमसेनने अपने भाई दुःशासनका रक्तपान किया, परंतु वहाँ उपस्थित सत्पुरुषोंमेंसे किसी एकने भी निवारण नहीं किया। संजय! तभीसे मुझे विजयकी आशा बिलकुल नहीं रह गयी॥ २०४॥

यदाश्रौषं कर्णमत्यन्तशूरं
हतं पार्थेनाहवेष्वप्रधृष्यम्।
तस्मिन् भ्रातॄणां विग्रहे देवगुह्ये
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ २०५॥

संजय! वह भाईका भाईसे युद्ध देवताओंकी गुप्त प्रेरणासे हो रहा था। जब मैंने सुना कि भिन्न-भिन्न युद्धभूमियोंमें कभी पराजित न होनेवाले अत्यन्त शूरशिरोमणि कर्णको पृथापुत्र अर्जुनने मार डाला, तब मेरी विजयकी आशा नष्ट हो गयी॥ २०५॥

यदाश्रौषं द्रोणपुत्रं च शूरं
दुःशासनं कृतवर्माणमुग्रम्।
युधिष्ठिरं धर्मराजं जयन्तं
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ २०६॥

जब मैंने सुना कि धर्मराज युधिष्ठिर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, शूरवीर दुःशासन एवं उग्र योद्धा कृतवर्माको भी युद्धमें जीत रहे हैं, संजय! तभीसे मुझे विजयकी आशा नहीं रह गयी॥ २०६॥

यदाश्रौषं निहतं मद्रराजं
रणे शूरं धर्मराजेन सूत।
सदा संग्रामे स्पर्धते यस्तु कृष्णं
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ २०७॥

संजय! जब मैंने सुना कि रणभूमिमें धर्मराज युधिष्ठिरने शूरशिरोमणि मद्रराज शल्यको मार डाला, जो सर्वदा युद्धमें घोड़े हाँकनेके सम्बन्धमें श्रीकृष्णकी होड़ करनेपर उतारू रहता था, तभीसे मैं विजयकी आशा नहीं करता था॥ २०७॥

यदाश्रौषं कलहद्यूतमूलं
मायाबलं सौबलं पाण्डवेन।
हतं संग्रामे सहदेवेन पापं
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ २०८॥

जब मैंने सुना कि कलहकारी द्यूतके मूल कारण, केवल छल-कपटके बलसे बली पापी शकुनिको पाण्डुनन्दन सहदेवने रणभूमिमें यमराजके हवाले कर दिया, संजय! तभी मेरी विजयकी आशा समाप्त हो गयी॥ २०८॥

यदाश्रौषं श्रान्तमेकं शयानं
ह्रदं गत्वा स्तम्भयित्वा तदम्भः।
दुर्योधनं विरथं भग्नशक्तिं
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ २०९॥

जब दुर्योधनका रथ छिन्न-भिन्न हो गया, शक्ति क्षीण हो गयी और वह थक गया, तब सरोवरपर जाकर वहाँका जल स्तम्भित करके उसमें अकेला ही सो गया। संजय! जब मैंने यह संवाद सुना, तब मेरी विजयकी आशा भी चली गयी॥ २०९॥

यदाश्रौषं पाण्डवांस्तिष्ठमानान्
गत्वा ह्रदे वासुदेवेन सार्धम्।
अमर्षणं धर्षयतः सुतं मे
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ २१०॥

जब मैंने सुना कि उसी सरोवरके तटपर श्रीकृष्णके साथ पाण्डव जाकर खड़े हैं और मेरे पुत्रको असह्य दुर्वचन कहकर नीचा दिखा रहे हैं, तभी संजय! मैंने विजयकी आशा सर्वथा त्याग दी॥ २१०॥

यदाश्रौषं विविधांश्चित्रमार्गान्
गदायुद्धे मण्डलशश्चरन्तम्।
मिथ्याहतं वासुदेवस्य बुद्ध्या
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ २११॥

संजय! जब मैंने सुना कि गदायुद्धमें मेरा पुत्र बड़ी निपुणतासे पैंतरे बदलकर रणकौशल प्रकट कर रहा है और श्रीकृष्णकी सलाहसे भीमसेनने गदायुद्धकी मर्यादाके विपरीत जाँघमें गदाका प्रहार करके उसे मार डाला, तब तो संजय! मेरे मनमें विजयकी आशा रह ही नहीं गयी॥ २११॥

यदाश्रौषं द्रोणपुत्रादिभिस्तै-
र्हतान् पञ्चालान् द्रौपदेयांश्च सुप्तान्।
कृतं बीभत्समयशस्यं च कर्म
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ २१२॥

संजय! जब मैंने सुना कि अश्वत्थामा आदि दुष्टोंने सोते हुए पाञ्चाल नरपतियों और द्रौपदीके

[illegible]हार पुत्रोंको मारकर अत्यन्त बीभत्स और वंशके [illegible]को कलंकित करनेवाला काम किया है, तब तो [illegible] विजयकी आशा रही ही नहीं॥ २१२॥

[illegible]श्रौषं भीमसेनानुयाते-
नाश्वत्थाम्ना परमास्त्रं प्रयुक्तम्।
[illegible]र्भेनैषीकमवधीद् येन गर्भं
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ २१३॥

संजय! जब मैंने सुना कि भीमसेनके पीछा करनेपर [illegible]श्वत्थामाने क्रोधपूर्वक सींकके बाणपर ब्रह्मास्त्रका प्रयोग [illegible] दिया, जिससे कि पाण्डवोंका गर्भस्थ वंशधर भी नष्ट [illegible]य, तभी मेरे मनमें विजयकी आशा नहीं रही॥ २१३॥

[illegible]श्रौषं ब्रह्मशिरोऽर्जुनेन
स्वस्तीत्युक्त्वास्त्रमस्त्रेण शान्तम्।
[illegible]श्वत्थाम्ना मणिरत्नं च दत्तं
तदा नाशंसे विजयाय संजय॥ २१४॥

जब मैंने सुना कि अश्वत्थामाके द्वारा प्रयुक्त [illegible]र अस्त्रको अर्जुनने 'स्वस्ति', 'स्वस्ति' कहकर [illegible] अस्त्रसे शान्त कर दिया और अश्वत्थामाको [illegible] मणिरत्न भी देना पड़ा। संजय! उसी समय मुझे [illegible] आशा नहीं रही॥ २१४॥

[illegible]श्रौषं द्रोणपुत्रेण गर्भे
वैराट्या वै पात्यमाने महास्त्रैः।
[illegible]मयनः केशवो द्रोणपुत्रं
परस्परेणाभिशापैः शशाप॥ २१५॥
[illegible]च्चा गान्धारी पुत्रपौत्रैर्विहीना
तथा बन्धुभिः पितृभिर्भ्रातृभिश्च।
[illegible] कार्यं दुष्करं पाण्डवेयैः
प्राप्तं राज्यमसपत्नं पुनस्तैः॥ २१६॥

[illegible]व मैंने सुना कि अश्वत्थामा अपने महान् [illegible] प्रयोग करके उत्तराका गर्भ गिरानेकी चेष्टा [illegible] है तथा श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास और स्वयं [illegible] श्रीकृष्णने परस्पर विचार करके उसे शापोंसे [illegible] कर दिया है (तभी मेरी विजयकी आशा [illegible] थे समाप्त हो गयी)। इस समय गान्धारीकी [illegible] [illegible]चनीय हो गयी है; क्योंकि उसके पुत्र-पौत्र, [illegible] [illegible] भाई-बन्धुओंमेंसे कोई नहीं रहा। पाण्डवोंने [illegible] [illegible] कर डाला। उन्होंने फिरसे अपना अकण्टक [illegible] [illegible] कर लिया॥ २१५-२१६॥

[illegible] युद्धे दश शेषाः श्रुता मे
त्रयोऽस्माकं पाण्डवानां च सप्त।
द्व्यूना विंशतिराहताक्षौहिणीनां
तस्मिन् संग्रामे भैरवे क्षत्रियाणाम्॥ २१७॥

हाय-हाय! कितने कष्टकी बात है, मैंने सुना है कि इस भयंकर युद्धमें केवल दस व्यक्ति बचे हैं; मेरे पक्षके तीन—कृपाचार्य, अश्वत्थामा और कृतवर्मा तथा पाण्डवपक्षके सात—श्रीकृष्ण, सात्यकि और पाँचों पाण्डव। क्षत्रियोंके इस भीषण संग्राममें अठारह अक्षौहिणी सेनाएँ नष्ट हो गयीं॥ २१७॥

तमस्त्वतीव विस्तीर्णं मोह आविशतीव माम्।
संज्ञां नोपलभे सूत मनो विह्वलतीव मे॥ २१८॥

सारथे! यह सब सुनकर मेरी आँखोंके सामने घना अन्धकार छाया हुआ है। मेरे हृदयमें मोहका आवेश-सा होता जा रहा है। मैं चेतना-शून्य हो रहा हूँ। मेरा मन विह्वल-सा हो रहा है॥ २१८॥

सौतिरुवाच

इत्युक्त्वा धृतराष्ट्रोऽथ विलप्य बहुदुःखितः।
मूर्च्छितः पुनराश्वस्तः संजयं वाक्यमब्रवीत्॥ २१९॥

उग्रश्रवाजी कहते हैं—धृतराष्ट्रने ऐसा कहकर बहुत विलाप किया और अत्यन्त दुःखके कारण वे मूर्च्छित हो गये। फिर होशमें आकर कहने लगे॥ २१९॥

धृतराष्ट्र उवाच

संजयैवं गते प्राणांस्त्यक्तुमिच्छामि मा चिरम्।
स्तोकं ह्यपि न पश्यामि फलं जीवितधारणे॥ २२०॥

धृतराष्ट्रने कहा—संजय! युद्धका यह परिणाम निकलनेपर अब मैं अविलम्ब अपने प्राण छोड़ना चाहता हूँ। अब जीवन-धारण करनेका कुछ भी फल मुझे दिखलायी नहीं देता॥ २२०॥

सौतिरुवाच

तं तथावादिनं दीनं विलपन्तं महीपतिम्।
निःश्वसन्तं यथा नागं मुह्यमानं पुनः पुनः॥ २२१॥
गावल्गणिरिदं धीमान् महार्थं वाक्यमब्रवीत्।

उग्रश्रवाजी कहते हैं—जब राजा धृतराष्ट्र दीनतापूर्वक विलाप करते हुए ऐसा कह रहे थे और नागके समान लम्बी साँस ले रहे थे तथा बार-बार मूर्च्छित होते जा रहे थे, तब बुद्धिमान् संजयने यह सारगर्भित प्रवचन किया॥ २२१½॥

संजय उवाच

श्रुतवानसि वै राजन् महोत्साहान् महाबलान्॥ २२२॥
द्वैपायनस्य वदतो नारदस्य च धीमतः।

संजयने कहा—महाराज! आपने परम ज्ञानी

देवर्षि नारद एवं महर्षि व्यासके मुखसे महान् उत्साहसे युक्त एवं परम पराक्रमी नृपतियोंका चरित्र श्रवण किया है॥ २२२½ ॥

महत्सु राजवंशेषु गुणैः समुदितेषु च॥ २२३॥
जातान् दिव्यास्त्रविदुषः शक्रप्रतिमतेजसः।
धर्मेण पृथिवीं जित्वा यज्ञैरिष्ट्वाप्तदक्षिणैः॥ २२४॥
अस्मिँल्लोके यशः प्राप्य ततः कालवशं गतान्।
शैब्यं महारथं वीरं सृञ्जयं जयतां वरम्॥ २२५॥
सुहोत्रं रन्तिदेवं च काक्षीवन्तमथौशिजम्।
बाह्लीकं दमनं चैद्यं शर्यातिमजितं नलम्॥ २२६॥
विश्वामित्रममित्रघ्नमम्बरीषं महाबलम्।
मरुत्तं मनुमिक्ष्वाकुं गयं भरतमेव च॥ २२७॥
रामं दाशरथिं चैव शशबिन्दुं भगीरथम्।
कृतवीर्यं महाभागं तथैव जनमेजयम्॥ २२८॥
ययातिं शुभकर्माणं देवैर्यो याजितः स्वयम्।
चैत्ययूपाङ्किता भूमिर्यस्येयं सवनाकरा॥ २२९॥
इति राज्ञां चतुर्विंशन्नारदेन सुरर्षिणा।
पुत्रशोकाभितप्ताय पुरा शैवत्याय कीर्तितम्॥ २३०॥

आपने ऐसे-ऐसे राजाओंके चरित्र सुने हैं जो सर्वसद्गुणसम्पन्न महान् राजवंशोंमें उत्पन्न, दिव्य अस्त्र-शस्त्रोंके पारदर्शी एवं देवराज इन्द्रके समान प्रभावशाली थे। जिन्होंने धर्मयुद्धसे पृथ्वीपर विजय प्राप्त की, बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले यज्ञ किये, इस लोकमें उज्ज्वल यश प्राप्त किया और फिर कालके गालमें समा गये। इनमेंसे महारथी शैब्य, विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ सृंजय, सुहोत्र, रन्तिदेव, काक्षीवान्, औशिज, बाह्लीक, दमन, चैद्य, शर्याति, अपराजित नल, शत्रुघाती विश्वामित्र, महाबली अम्बरीष, मरुत्त, मनु, इक्ष्वाकु, गय, भरत, दशरथनन्दन श्रीराम, शशबिन्दु, भगीरथ, महाभाग्यशाली कृतवीर्य, जनमेजय और वे शुभकर्मा ययाति, जिनका यज्ञ देवताओंने स्वयं करवाया था, जिन्होंने अपनी राष्ट्रभूमिको यज्ञोंकी खान बना दिया था और सारी पृथ्वी यज्ञ-सम्बन्धी यूपों (खंभों)-से अंकित कर दी थी—इन चौबीस राजाओंका वर्णन पूर्वकालमें देवर्षि नारदने पुत्रशोकसे अत्यन्त संतप्त महाराज शैवत्यका दुःख दूर करनेके लिये किया था॥ २२३—२३०॥

तेभ्यश्चान्ये गताः पूर्वं राजानो बलवत्तराः।
महारथा महात्मानः सर्वैः समुदिता गुणैः॥ २३१॥
पूरुः कुरुर्यदुः शूरो विष्वगश्वो महाद्युतिः।
अणुहो युवनाश्वश्च ककुत्स्थो विक्रमी रघुः॥ २३२॥
विजयो वीतिहोत्रोऽङ्गो भवः श्वेतो बृहद्गुरुः।
उशीनरः शतरथः कङ्को दुलिदुहो द्रुमः॥ २३३॥
दम्भोद्भवः परो वेनः सगरः संकृतिर्निमिः।
अजेयः परशुः पुण्ड्रः शम्भुर्देवावृधोऽनघः॥ २३४॥
देवाह्वयः सुप्रतिमः सुप्रतीको बृहद्रथः।
महोत्साहो विनीतात्मा सुक्रतुर्नैषधो नलः॥ २३५॥
सत्यव्रतः शान्तभयः सुमित्रः सुबलः प्रभुः।
जानुजङ्घोऽनरण्योऽर्कः प्रियभृत्यः शुचिव्रतः॥ २३६॥
बलबन्धुर्निरामर्दः केतुशृङ्गो बृहद्बलः।
धृष्टकेतुर्बृहत्केतुर्दीप्तकेतुर्निरामयः॥ २३७॥
अवीक्षिच्चपलो धूर्तः कृतबन्धुर्दृढेषुधिः।
महापुराणसम्भाव्यः प्रत्यङ्गः परहा श्रुतिः॥ २३८॥
एते चान्ये च राजानः शतशोऽथ सहस्रशः।
श्रूयन्ते शतशश्चान्ये संख्याताश्चैव पद्यशः॥ २३९॥
हित्वा सुविपुलान् भोगान् बुद्धिमन्तो महाबलाः।
राजानो निधनं प्राप्तास्तव पुत्रा इव प्रभो॥ २४०॥

महाराज! पिछले युगमें इन राजाओंके अतिरिक्त दूसरे और बहुत-से महारथी, महात्मा, शौर्य-वीर्य आदि सद्गुणोंसे सम्पन्न, परम पराक्रमी राजा हो गये हैं। जैसे—पूरु, कुरु, यदु, शूर, महातेजस्वी विष्वगश्व, अणुह, युवनाश्व, ककुत्स्थ, पराक्रमी रघु, विजय, वीतिहोत्र, अंग, भव, श्वेत, बृहद्गुरु, उशीनर, शतरथ, कंक, दुलिदुह, द्रुम, दम्भोद्भव, पर, वेन, सगर, संकृति, निमि, अजेय, परशु, पुण्ड्र, शम्भु, निष्पाप देवावृध, देवाह्वय, सुप्रतिम, सुप्रतीक, बृहद्रथ, महान् उत्साही और महाविनयी सुक्रतु, निषधराज नल, सत्यव्रत, शान्तभय, सुमित्र, सुबल, प्रभु, जानुजंघ, अनरण्य, अर्क, प्रियभृत्य, शुचिव्रत, बलबन्धु, निरामर्द, केतुशृंग, बृहद्बल, धृष्टकेतु, बृहत्केतु, दीप्तकेतु, निरामय, अवीक्षित्, चपल, धूर्त, कृतबन्धु, दृढेषुधि, महापुराणोंमें सम्मानित प्रत्यंग, परहा और श्रुति—ये और इनके अतिरिक्त दूसरे सैकड़ों तथा हजारों राजा सुने जाते हैं, जिनका सैकड़ों बार वर्णन किया गया है और इनके सिवा दूसरे भी, जिनकी संख्या पद्योंमें कही गयी है, बड़े बुद्धिमान् और शक्तिशाली थे। महाराज! किंतु वे अपने विपुल भोग-वैभवको छोड़कर वैसे ही मर गये, जैसे आपके पुत्रोंकी मृत्यु हुई है॥ २३१—२४०॥

येषां दिव्यानि कर्माणि विक्रमस्त्याग एव च।
माहात्म्यमपि चास्तिक्यं सत्यं शौचं दयार्जवम्॥ २४१॥
विद्वद्भिः कथ्यते लोके पुराणे कविसत्तमैः।
सर्वर्द्धिगुणसम्पन्नास्ते चापि निधनं गताः॥ २४२॥

जिनके दिव्य कर्म, पराक्रम, त्याग, माहात्म्य, अस्तिकता, सत्य, पवित्रता, दया और सरलता आदि सद्गुणोंका वर्णन बड़े-बड़े विद्वान् एवं श्रेष्ठतम कवि प्राचीन ग्रन्थोंमें तथा लोकमें भी करते रहते हैं, वे समस्त सम्पत्ति और सद्गुणोंसे सम्पन्न महापुरुष भी मृत्युको प्राप्त हो गये॥ २४१-२४२॥

न वै पुत्रा दुरात्मानः प्रतप्ताश्चैव मन्युना।
वृथा दुर्वृत्तभूयिष्ठा न ताञ्छोचितुमर्हसि॥ २४३॥

आपके पुत्र दुर्योधन आदि तो दुरात्मा, क्रोधसे जले-भुने, लोभी एवं अत्यन्त दुराचारी थे। उनकी मृत्युपर आपको शोक नहीं करना चाहिये॥ २४३॥

श्रुतवानसि मेधावी बुद्धिमान् प्राज्ञसम्मतः।
तेषां शास्त्रानुगा बुद्धिर्न ते मुह्यन्ति भारत॥ २४४॥

आपने गुरुजनोंसे सत्-शास्त्रोंका श्रवण किया है। आपकी धारणाशक्ति तीव्र है, आप बुद्धिमान् हैं और विद्वान् पुरुष आपका आदर करते हैं। भरतवंशशिरोमणे! उनकी बुद्धि शास्त्रके अनुसार सोचती है, वे कभी शोक-मोहसे मोहित नहीं होते॥ २४४॥

महानुग्रहो चापि विदितौ ते नराधिप।
तयोरन्तमेवानुवृत्तिः कार्या ते पुत्ररक्षणे॥ २४५॥

महाराज! आपने पाण्डवोंके साथ निर्दयता और अपने पुत्रोंके प्रति पक्षपातका जो बर्ताव किया है, वह सबको विदित ही है। इसलिये अब पुत्रोंके जीवनके विषयमें आपको अत्यन्त व्याकुल नहीं होना चाहिये॥ २४५॥

भवितव्यं तथा तच्च नानुशोचितुमर्हसि।
दैवं प्रज्ञाविशेषेण को निवर्तितुमर्हति॥ २४६॥

होनहार ही ऐसी थी, इसके लिये आपको शोक नहीं करना चाहिये। भला, इस सृष्टिमें ऐसा कौन-सा पुरुष है, जो अपनी बुद्धिकी विशेषतासे दैवको मिटा सके॥ २४६॥

विधातृविहितं मार्गं न कश्चिदतिवर्तते।
सर्वमूलमिदं सर्वं भावाभावौ सुखासुखे॥ २४७॥

अपने कर्मोंका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है—यह विधाताका विधान है। इसको कोई टाल नहीं सकता। जन्म-मृत्यु और सुख-दुःख सबका मूल कारण काल ही है॥ २४७॥

कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः।
संहरन्तं प्रजाः कालं कालः शमयते पुनः॥ २४८॥

काल ही प्राणियोंकी सृष्टि करता है और काल ही उनका संहार करता है। फिर प्रजाका संहार करनेवाले उस कालको महाकालस्वरूप परमात्मा ही शान्त करता है॥ २४८॥

कालो हि कुरुते भावान् सर्वलोके शुभाशुभान्।
कालः संक्षिपते सर्वाः प्रजा विसृजते पुनः॥ २४९॥

सम्पूर्ण लोकोंमें यह काल ही शुभ-अशुभ सब पदार्थोंका कर्ता है। काल ही सम्पूर्ण प्रजाका संहार करता है और वही पुनः सबकी सृष्टि भी करता है॥ २४९॥

कालः सुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः।
कालः सर्वेषु भूतेषु चरत्यविधृतः समः॥ २५०॥
अतीतानागता भावा ये च वर्तन्ति साम्प्रतम्।
तान् कालनिर्मितान् बुद्ध्वा न संज्ञां हातुमर्हसि॥ २५१॥

जब सुषुप्ति-अवस्थामें सब इन्द्रियाँ और मनोवृत्तियाँ लीन हो जाती हैं, तब भी यह काल जागता रहता है। कालकी गतिका कोई उल्लंघन नहीं कर सकता। वह सम्पूर्ण प्राणियोंमें समानरूपसे बेरोक-टोक अपनी क्रिया करता रहता है। इस सृष्टिमें जितने पदार्थ हो चुके, भविष्यमें होंगे और इस समय वर्तमान हैं, वे सब कालकी रचना हैं; ऐसा समझकर आपको अपने विवेकका परित्याग नहीं करना चाहिये॥ २५०-२५१॥

सौतिरुवाच

इत्येवं पुत्रशोकार्तं धृतराष्ट्रं जनेश्वरम्।
आश्वास्य स्वस्थमकरोत् सूतो गावल्गणिस्तदा॥ २५२॥
अत्रोपनिषदं पुण्यां कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत्।
विद्वद्भिः कथ्यते लोके पुराणे कविसत्तमैः॥ २५३॥

उग्रश्रवाजी कहते हैं—सूतवंशी संजयने यह सब कहकर पुत्रशोकसे व्याकुल नरपति धृतराष्ट्रको समझाया-बुझाया और उन्हें स्वस्थ किया। इसी इतिहासके आधारपर श्रीकृष्णद्वैपायनने इस परम पुण्यमयी उपनिषद्-रूप महाभारतका (शोकातुर प्राणियोंका शोक नाश करनेके लिये) निरूपण किया। विद्वज्जन लोकमें और श्रेष्ठतम कवि पुराणोंमें सदासे इसीका वर्णन करते आये हैं॥ २५२-२५३॥

भारताध्ययनं पुण्यमपि पादमधीयतः।
श्रद्दधानस्य पूयन्ते सर्वपापान्यशेषतः॥ २५४॥

महाभारतका अध्ययन अन्तःकरणको शुद्ध करनेवाला है। जो कोई श्रद्धाके साथ इसके किसी एक श्लोकके एक पादका भी अध्ययन करता है, उसके सब पाप सम्पूर्णरूपसे मिट जाते हैं॥ २५४॥

देवा देवर्षयो ह्यत्र तथा ब्रह्मर्षयोऽमलाः।
कीर्त्यन्ते शुभकर्माणस्तथा यक्षा महोरगाः॥ २५५॥

इस ग्रन्थरत्नमें शुभ कर्म करनेवाले देवता, देवर्षि, निर्मल ब्रह्मर्षि, यक्ष और महानागोंका वर्णन किया गया है॥ २५५॥

भगवान् वासुदेवश्च कीर्त्यतेऽत्र सनातनः।
स हि सत्यमृतं चैव पवित्रं पुण्यमेव च॥ २५६॥

इस ग्रन्थके मुख्य विषय हैं स्वयं सनातन परब्रह्मस्वरूप वासुदेव भगवान् श्रीकृष्ण। उन्हींका इसमें संकीर्तन किया गया है। वे ही सत्य, ऋत, पवित्र एवं पुण्य हैं॥ २५६॥

शाश्वतं ब्रह्म परमं ध्रुवं ज्योतिः सनातनम्।
यस्य दिव्यानि कर्माणि कथयन्ति मनीषिणः॥ २५७॥

वे ही शाश्वत परब्रह्म हैं और वे ही अविनाशी सनातन ज्योति हैं। मनीषी पुरुष उन्हींकी दिव्य लीलाओंका संकीर्तन किया करते हैं॥ २५७॥

असच्च सदसच्चैव यस्माद् विश्वं प्रवर्तते।
संततिश्च प्रवृत्तिश्च जन्ममृत्युपुनर्भवाः॥ २५८॥

उन्हींसे असत्, सत् तथा सदसत्—उभयरूप सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न होता है। उन्हींसे संतति (प्रजा), प्रवृत्ति (कर्तव्य-कर्म), जन्म-मृत्यु तथा पुनर्जन्म होते हैं॥ २५८॥

अध्यात्मं श्रूयते यच्च पञ्चभूतगुणात्मकम्।
अव्यक्तादि परं यच्च स एव परिगीयते॥ २५९॥

इस महाभारतमें जीवात्माका स्वरूप भी बतलाया गया है एवं जो सत्त्व-रज-तम—इन तीनों गुणोंके कार्यरूप पाँच महाभूत हैं, उनका तथा जो अव्यक्त प्रकृति आदिके मूल कारण परम ब्रह्म परमात्मा हैं, उनका भी भलीभाँति निरूपण किया गया है॥ २५९॥

यत्तद् यतिवरा मुक्ता ध्यानयोगबलान्विताः।
प्रतिबिम्बमिवादर्शे पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम्॥ २६०॥

ध्यानयोगकी शक्तिसे सम्पन्न जीवन्मुक्त यतिवर, दर्पणमें प्रतिबिम्बके समान अपने हृदयमें अवस्थित उन्हीं परमात्माका अनुभव करते हैं॥ २६०॥

श्रद्दधानः सदा युक्तः सदा धर्मपरायणः।
आसेवन्निममध्यायं नरः पापात् प्रमुच्यते॥ २६१॥

जो धर्मपरायण पुरुष श्रद्धाके साथ सर्वदा सावधान रहकर प्रतिदिन इस अध्यायका सेवन करता है, वह पाप-तापसे मुक्त हो जाता है॥ २६१॥

अनुक्रमणिकाध्यायं भारतस्येममादितः।
आस्तिकः सततं शृण्वन् न कृच्छ्रेष्ववसीदति॥ २६२॥

जो आस्तिक पुरुष महाभारतके इस अनुक्रमणिका-अध्यायको आदिसे अन्ततक प्रतिदिन श्रवण करता है, वह संकटकालमें भी दुःखसे अभिभूत नहीं होता॥ २६२॥

उभे संध्ये जपन् किंचित् सद्यो मुच्येत किल्बिषात्।
अनुक्रमण्या यावत् स्यादह्ना रात्र्या च संचितम्॥ २६३॥

जो इस अनुक्रमणिका-अध्यायका कुछ अंश भी प्रातः-सायं अथवा मध्याह्नमें जपता है, वह दिन अथवा रात्रिके समय संचित सम्पूर्ण पापराशिसे तत्काल मुक्त हो जाता है॥ २६३॥

भारतस्य वपुर्ह्येतत् सत्यं चामृतमेव च।
नवनीतं यथा दध्नो द्विपदां ब्राह्मणो यथा॥ २६४॥
आरण्यकं च वेदेभ्य ओषधिभ्योऽमृतं यथा।
ह्रदानामुदधिः श्रेष्ठो गौर्वरिष्ठा चतुष्पदाम्॥ २६५॥
यथैतानीतिहासानां तथा भारतमुच्यते।
यश्चैनं श्रावयेच्छ्राद्धे ब्राह्मणान् पादमन्ततः॥ २६६॥
अक्षय्यमन्नपानं वै पितॄंस्तस्योपतिष्ठते।

यह अध्याय महाभारतका मूल शरीर है। यह सत्य एवं अमृत है। जैसे दहीमें नवनीत, मनुष्योंमें ब्राह्मण, वेदोंमें उपनिषद्, ओषधियोंमें अमृत, सरोवरोंमें समुद्र और चौपायोंमें गाय सबसे श्रेष्ठ है, वैसे ही उन्हींके समान इतिहासोंमें यह महाभारत भी है। जो श्राद्धमें भोजन करनेवाले ब्राह्मणोंको अन्तमें इस अध्यायका एक चौथाई भाग अथवा श्लोकका एक चरण भी सुनाता है, उसके पितरोंको अक्षय अन्न-पानकी प्राप्ति होती है॥ २६४—२६६½॥

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्॥ २६७॥
बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति।
काष्णं वेदमिमं विद्वाञ्श्रावयित्वार्थमश्नुते॥ २६८॥

इतिहास और पुराणोंकी सहायतासे ही वेदोंके अर्थका विस्तार एवं समर्थन करना चाहिये। जो इतिहास एवं पुराणोंसे अनभिज्ञ है, उससे वेद डरते रहते हैं कि कहीं यह मुझपर प्रहार कर देगा। जो विद्वान् श्रीकृष्णद्वैपायनद्वारा कहे हुए इस वेदका दूसरोंको श्रवण कराते हैं, उन्हें मनोवांछित अर्थकी प्राप्ति होती है॥ २६७-२६८॥

भ्रूणहत्यादिकं चापि पापं जह्यादसंशयम्।
य इमं शुचिरध्यायं पठेत् पर्वणि पर्वणि॥ २६९॥
अधीतं भारतं तेन कृत्स्नं स्यादिति मे मतिः।
यश्चैनं शृणुयान्नित्यमार्षं श्रद्धासमन्वितः॥ २७०॥
स दीर्घमायुः कीर्तिं च स्वर्गतिं चाप्नुयान्नरः।
एकतश्चतुरो वेदान् भारतं चैतदेकतः॥ २७१॥
पुरा किल सुरैः सर्वैः समेत्य तुलया धृतम्।
चतुर्भ्यः सरहस्येभ्यो वेदेभ्यो ह्यधिकं यदा॥ २७२॥
तदा प्रभृति लोकेऽस्मिन् महाभारतमुच्यते।
महत्त्वे च गुरुत्वे च ध्रियमाणं यतोऽधिकम्॥ २७३॥

और इससे भ्रूणहत्या आदि पापोंका भी नाश हो जाता है, इसमें संदेह नहीं है। जो पवित्र होकर प्रत्येक पर्वपर इस अध्यायका पाठ करता है, उसे सम्पूर्ण महाभारतके अध्ययनका फल मिलता है, ऐसा मेरा निश्चय है। जो पुरुष श्रद्धाके साथ प्रतिदिन इस महर्षि व्यासप्रणीत ग्रन्थरत्नका श्रवण करता है, उसे दीर्घ आयु, कीर्ति और स्वर्गकी प्राप्ति होती है। प्राचीन कालमें सब देवताओंने इकट्ठे होकर तराजूके एक पलड़ेपर चारों वेदोंको और दूसरेपर महाभारतको रखा। परंतु जब यह रहस्यसहित चारों वेदोंकी अपेक्षा अधिक भारी निकला, तभीसे संसारमें यह महाभारतके नामसे कहा जाने लगा। सत्यके तराजूपर तौलनेसे यह ग्रन्थ महत्त्व, गौरव अथवा गम्भीरतामें वेदोंसे भी अधिक सिद्ध हुआ है॥ २६९—२७३॥

महत्त्वाद् भारवत्त्वाच्च महाभारतमुच्यते।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ २७४॥

अतएव महत्ता, भार अथवा गम्भीरताकी विशेषतासे ही इसको महाभारत कहते हैं। जो इस ग्रन्थके निर्वचनको जान लेता है, वह सब पापोंसे छूट जाता है॥ २७४॥

तपो न कल्कोऽध्ययनं न कल्कः
स्वाभाविको वेदविधिर्न कल्कः।
प्रसह्य वित्ताहरणं न कल्क-
स्तान्येव भावोपहतानि कल्कः॥ २७५॥

तपस्या निर्मल है, शास्त्रोंका अध्ययन भी निर्मल है, वर्णाश्रमके अनुसार स्वाभाविक वेदोक्त विधि भी निर्मल है और कष्टपूर्वक उपार्जन किया हुआ धन भी निर्मल है, किंतु वे ही सब विपरीत भावसे किये जानेपर पापमय हैं अर्थात् दूसरेके अनिष्टके लिये किया हुआ तप, शास्त्राध्ययन और वेदोक्त स्वाभाविक कर्म तथा क्लेशपूर्वक उपार्जित धन भी पापयुक्त हो जाता है। (तात्पर्य यह कि इस ग्रन्थरत्नमें भावशुद्धिपर विशेष जोर दिया गया है; इसलिये महाभारत-ग्रन्थका अध्ययन करते समय भी भाव शुद्ध रखना चाहिये)॥ २७५॥

इति श्रीमन्महाभारते आदिपर्वणि अनुक्रमणिकापर्वणि प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आदिपर्वके अन्तर्गत अनुक्रमणिकापर्वमें पहला अध्याय पूरा हुआ॥ १॥

[दाक्षिणात्य अधिक पाठके ७ श्लोक मिलाकर कुल २८२ श्लोक हैं]

॥ अनुक्रमणिकापर्व सम्पूर्ण॥

≈≈○≈≈

(पर्वसंग्रहपर्व)

द्वितीयोऽध्यायः

समन्तपंचकक्षेत्रका वर्णन, अक्षौहिणी सेनाका प्रमाण, महाभारतमें वर्णित पर्वों और उनके संक्षिप्त विषयोंका संग्रह तथा महाभारतके श्रवण एवं पठनका फल

ऋषय ऊचुः

समन्तपञ्चकमिति यदुक्तं सूतनन्दन।
एतत् सर्वं यथातत्त्वं श्रोतुमिच्छामहे वयम्॥ १॥

ऋषि बोले—सूतनन्दन! आपने अपने प्रवचनके प्रसङ्गमें जो समन्तपंचक (कुरुक्षेत्र)-की चर्चा की थी, उस उस देश (तथा वहाँ हुए युद्ध)-के सम्बन्धमें हमलोग सब कुछ यथावत् सुनना चाहते हैं॥ १॥

सौतिरुवाच

शृणुध्वं मम भो विप्रा ब्रुवतश्च कथाः शुभाः।
समन्तपञ्चकाख्यं च श्रोतुमर्हथ सत्तमाः॥ २॥

उग्रश्रवाजीने कहा—साधुशिरोमणि विप्रगण! अब मैं उन-उन शुभ कथाएँ कह रहा हूँ; उसे आपलोग सावधान चित्तसे सुनिये और इसी प्रसंगमें समन्तपंचकक्षेत्रका वर्णन भी सुन लीजिये॥ २॥

त्रेताद्वापरयोः सन्धौ रामः शस्त्रभृतां वरः।
असकृत् पार्थिवं क्षत्रं जघानामर्षचोदितः॥ ३॥

त्रेता और द्वापरकी सन्धिके समय शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ परशुरामजीने क्षत्रियोंके प्रति क्रोधसे प्रेरित होकर अनेकों बार क्षत्रिय राजाओंका संहार किया॥ ३॥

स सर्वं क्षत्रमुत्साद्य स्ववीर्येणानलद्युतिः।
समन्तपञ्चके पञ्च चकार रुधिरान् ह्रदान्॥ ४॥

अग्निके समान तेजस्वी परशुरामजीने अपने पराक्रमसे सम्पूर्ण क्षत्रियवंशका संहार करके समन्तपंचकक्षेत्रमें रक्तके पाँच सरोवर बना दिये॥ ४॥

स तेषु रुधिराम्भःसु ह्रदेषु क्रोधमूर्च्छितः।
पितॄन् संतर्पयामास रुधिरेणेति नः श्रुतम्॥ ५॥

क्रोधसे आविष्ट होकर परशुरामजीने उन रक्तरूप जलसे भरे हुए सरोवरोंमें रक्ताञ्जलिके द्वारा अपने पितरोंका तर्पण किया, यह बात हमने सुनी है॥ ५॥

अथर्चीकादयोऽभ्येत्य पितरो राममब्रुवन्।
राम राम महाभाग प्रीताः स्म तव भार्गव॥ ६॥
अनया पितृभक्त्या च विक्रमेण तव प्रभो।
वरं वृणीष्व भद्रं ते यमिच्छसि महाद्युते॥ ७॥

तदनन्तर, ऋचीक आदि पितृगण परशुरामजीके पास आकर बोले—'महाभाग राम! सामर्थ्यशाली भृगुवंशभूषण परशुराम!! तुम्हारी इस पितृभक्ति और पराक्रमसे हम बहुत ही प्रसन्न हैं। महाप्रतापी परशुराम! तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हें जिस वरकी इच्छा हो हमसे माँग लो'॥ ६-७॥

राम उवाच

यदि मे पितरः प्रीता यद्यनुग्राह्यता मयि।
यच्च रोषाभिभूतेन क्षत्रमुत्सादितं मया॥ ८॥
अतश्च पापान्मुच्येऽहमेष मे प्रार्थितो वरः।
ह्रदाश्च तीर्थभूता मे भवेयुर्भुवि विश्रुताः॥ ९॥

परशुरामजीने कहा—यदि आप सब हमारे पितर मुझपर प्रसन्न हैं और मुझे अपने अनुग्रहका पात्र समझते हैं तो मैंने जो क्रोधवश क्षत्रियवंशका विध्वंस किया है, इस कुकर्मके पापसे मैं मुक्त हो जाऊँ और ये मेरे बनाये हुए सरोवर पृथ्वीमें प्रसिद्ध तीर्थ हो जायँ। यही वर मैं आपलोगोंसे चाहता हूँ॥ ८-९॥

एवं भविष्यतीत्येवं पितरस्तमथाब्रुवन्।
तं क्षमस्वेति निषिषिधुस्ततः स विरराम ह॥ १०॥

तदनन्तर 'ऐसा ही होगा' यह कहकर पितरोंने वरदान दिया। साथ ही 'अब बचे-खुचे क्षत्रियवंशको क्षमा कर दो'—ऐसा कहकर उन्हें क्षत्रियोंके संहारसे भी रोक दिया। इसके पश्चात् परशुरामजी शान्त हो गये॥ १०॥

तेषां समीपे यो देशो ह्रदानां रुधिराम्भसाम्।
समन्तपञ्चकमिति पुण्यं तत् परिकीर्तितम्॥ ११॥

उन रक्तसे भरे सरोवरोंके पास जो प्रदेश है उसे ही समन्तपंचक कहते हैं। यह क्षेत्र बहुत ही पुण्यप्रद है॥ ११॥

येन लिङ्गेन यो देशो युक्तः समुपलक्ष्यते।
तेनैव नाम्ना तं देशं वाच्यमाहुर्मनीषिणः॥ १२॥

जिस चिह्नसे जो देश युक्त होता है और जिससे जिसकी पहचान होती है, विद्वानोंका कहना है कि उस देशका वही नाम रखना चाहिये॥ १२॥

अन्तरे चैव सम्प्राप्ते कलिद्वापरयोरभूत्।
समन्तपञ्चके युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः॥ १३॥

जब कलियुग और द्वापरकी सन्धिका समय आया, तब उसी समन्तपंचकक्षेत्रमें कौरवों और पाण्डवोंकी सेनाओंका परस्पर भीषण युद्ध हुआ॥ १३॥

तस्मिन् परमधर्मिष्ठे देशे भूदोषवर्जिते।
अष्टादश समाजग्मुरक्षौहिण्यो युयुत्सया॥ १४॥

भूमिसम्बन्धी दोषोंसे[1] रहित उस परम धार्मिक प्रदेशमें युद्ध करनेकी इच्छासे अठारह अक्षौहिणी सेनाएँ इकट्ठी हुई थीं॥ १४॥

समेत्य तं द्विजास्ताश्च तत्रैव निधनं गताः।
एतन्नामाभिनिर्वृत्तं तस्य देशस्य वै द्विजाः॥ १५॥

ब्राह्मणो! वे सब सेनाएँ वहाँ इकट्ठी हुईं और वहीं नष्ट हो गयीं। द्विजवरो! इसीसे उस देशका नाम समन्तपंचक[2] पड़ गया॥ १५॥

पुण्यश्च रमणीयश्च स देशो वः प्रकीर्तितः।
तदेतत् कथितं सर्वं मया ब्राह्मणसत्तमाः।
यथा देशः स विख्यातस्त्रिषु लोकेषु सुव्रताः॥ १६॥

वह देश अत्यन्त पुण्यमय एवं रमणीय कहा गया है। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले श्रेष्ठ ब्राह्मणो! तीनों लोकोंमें जिस प्रकार उस देशकी प्रसिद्धि हुई थी, वह सब मैंने आपलोगोंसे कह दिया॥ १६॥

ऋषय ऊचुः

अक्षौहिण्य इति प्रोक्तं यत्त्वया सूतनन्दन।
एतदिच्छामहे श्रोतुं सर्वमेव यथातथम्॥ १७॥

ऋषियोंने पूछा—सूतनन्दन! अभी-अभी आपने

---

१. अधिक नीचा-ऊँचा होना, काँटेदार वृक्षोंसे व्याप्तहोना तथा कंकड़-पत्थरोंकी अधिकताका होना आदि भूमिसम्बन्धी दोष माने गये हैं।

२. समन्त नामक क्षेत्रमें पाँच कुण्ड या सरोवर होनेसे उस क्षेत्र और उसके समीपवर्ती प्रदेशका भी समन्तपंचक नाम हुआ। परंतु उसका समन्त नाम क्यों पड़ा, इसका कारण इस श्लोकमें बता रहे हैं—'समेतानाम् अन्तो यस्मिन् स समन्तः'—समागत सेनाओंका अन्त हुआ हो जिस स्थानपर, उसे समन्त कहते हैं। इसी व्युत्पत्तिके अनुसार वह क्षेत्र समन्त कहलाता है।

जो अक्षौहिणी शब्दका उच्चारण किया है, इसके सम्बन्धमें हमलोग सारी बातें यथार्थरूपसे सुनना चाहते हैं॥ १७॥

अक्षौहिण्याः परीमाणं नराश्वरथदन्तिनाम्।
यथावच्चैव नो ब्रूहि सर्वं हि विदितं तव॥ १८॥

अक्षौहिणी सेनामें कितने पैदल, घोड़े, रथ और हाथी होते हैं? इसका हमें यथार्थ वर्णन सुनाइये; क्योंकि आपको सब कुछ ज्ञात है॥ १८॥

सौतिरुवाच

एको रथो गजश्चैको नराः पञ्च पदातयः।
त्रयश्च तुरगास्तज्ज्ञैः पत्तिरित्यभिधीयते॥ १९॥

उग्रश्रवाजीने कहा—एक रथ, एक हाथी, पाँच पैदल सैनिक और तीन घोड़े—बस, इन्हींको सेनाके मर्मज्ञ विद्वानोंने 'पत्ति' कहा है॥ १९॥

तिस्रो तु त्रिगुणामेतामाहुः सेनामुखं बुधाः।
तिस्रोऽपि सेनामुखान्येको गुल्म इत्यभिधीयते॥ २०॥

इसी पत्तिकी तिगुनी संख्याको विद्वान् पुरुष 'सेनामुख' कहते हैं। तीन 'सेनामुखों'को एक 'गुल्म' कहा जाता है॥ २०॥

त्रयो गुल्मा गणो नाम वाहिनी तु गणास्त्रयः।
तिस्रोऽनीकिन्यस्तु वाहिन्यः पृतनेति विचक्षणैः॥ २१॥

तीन गुल्मका एक 'गण' होता है, तीन गणकी एक 'वाहिनी' होती है और तीन वाहिनियोंको सेनाका तत्त्व जाननेवाले विद्वानोंने 'पृतना' कहा है॥ २१॥

तिस्रस्तु पृतनास्तिस्रस्तिस्रश्चम्वस्त्वनीकिनी।
अनीकिनीं दशगुणां प्राहुरक्षौहिणीं बुधाः॥ २२॥

तीन पृतनाकी एक 'चमू', तीन चमूकी एक 'अनीकिनी' और दस अनीकिनीकी एक 'अक्षौहिणी' होती है। यह विद्वानोंका कथन है॥ २२॥

अक्षौहिण्याः प्रसंख्याता रथानां द्विजसत्तमाः।
संख्या गणिततत्त्वज्ञैः सहस्राण्येकविंशतिः॥ २३॥
शतान्युपरि चैवाष्टौ तथा भूयश्च सप्ततिः।
गजानां च परीमाणमेतदेव विनिर्दिशेत्॥ २४॥

श्रेष्ठ ब्राह्मणो! गणितके तत्त्वज्ञ विद्वानोंने एक अक्षौहिणी सेनामें रथोंकी संख्या इक्कीस हजार आठ सौ (२१,८७०) बतलायी है। हाथियोंकी संख्या भी इतनी ही कहनी चाहिये॥ २३-२४॥

नराणां शतसहस्रं तु सहस्राणि नवैव तु।
नरामपि पञ्चाशच्छतानि त्रीणि चानघाः॥ २५॥

निष्पाप ब्राह्मणो! एक अक्षौहिणीमें पैदल मनुष्योंकी संख्या एक लाख नौ हजार तीन सौ पचास (१,०९,३५०) जाननी चाहिये॥ २५॥

पञ्चषष्टिसहस्राणि तथाश्वानां शतानि च।
दशोत्तराणि षट् प्राहुर्यथावदिह संख्यया॥ २६॥

एक अक्षौहिणी सेनामें, घोड़ोंकी ठीक-ठीक संख्या पैंसठ हजार छः सौ दस (६५,६१०) कही गयी है॥ २६॥

एतामक्षौहिणीं प्राहुः संख्यातत्त्वविदो जनाः।
यां वः कथितवानस्मि विस्तरेण तपोधनाः॥ २७॥

तपोधनो! संख्याका तत्त्व जाननेवाले विद्वानोंने इसीको अक्षौहिणी कहा है, जिसे मैंने आपलोगोंको विस्तारपूर्वक बताया है॥ २७॥

एतया संख्यया ह्यासन् कुरुपाण्डवसेनयोः।
अक्षौहिण्यो द्विजश्रेष्ठाः पिण्डिताष्टादशैव तु॥ २८॥

श्रेष्ठ ब्राह्मणो! इसी गणनाके अनुसार कौरव-पाण्डव दोनों सेनाओंकी संख्या अठारह अक्षौहिणी थी॥ २८॥

समेतास्तत्र वै देशे तत्रैव निधनं गताः।
कौरवान् कारणं कृत्वा कालेनाद्भुतकर्मणा॥ २९॥

अद्भुत कर्म करनेवाले कालकी प्रेरणासे समन्तपंचकक्षेत्रमें कौरवोंको निमित्त बनाकर इतनी सेनाएँ इकट्ठी हुईं और वहीं नाशको प्राप्त हो गयीं॥ २९॥

अहानि युयुधे भीष्मो दशैव परमास्त्रवित्।
अहानि पञ्च द्रोणस्तु ररक्ष कुरुवाहिनीम्॥ ३०॥

अस्त्र-शस्त्रोंके सर्वोपरि मर्मज्ञ भीष्मपितामहने दस दिनोंतक युद्ध किया, आचार्य द्रोणने पाँच दिनोंतक कौरव-सेनाकी रक्षा की॥ ३०॥

अहनी युयुधे द्वे तु कर्णः परबलार्दनः।
शल्योऽर्धदिवसं चैव गदायुद्धमतः परम्॥ ३१॥

शत्रुसेनाको पीड़ित करनेवाले वीरवर कर्णने दो दिन युद्ध किया और शल्यने आधे दिनतक। इसके पश्चात् (दुर्योधन और भीमसेनका परस्पर) गदायुद्ध आधे दिनतक होता रहा॥ ३१॥

तस्यैव दिवसस्यान्ते द्रौणिहार्दिक्यगौतमाः।
प्रसुप्तं निशि विश्वस्तं जघ्नुर्योधिष्ठिरं बलम्॥ ३२॥

अठारहवाँ दिन बीत जानेपर रात्रिके समय अश्वत्थामा, कृतवर्मा और कृपाचार्यने निःशंक सोते हुए युधिष्ठिरके सैनिकोंको मार डाला॥ ३२॥

यत्तु शौनक सत्रे ते भारताख्यानमुत्तमम्।
जनमेजयस्य तत् सत्रे व्यासशिष्येण धीमता॥ ३३॥
कथितं विस्तरार्थं च यशो वीर्यं महीक्षिताम्।
पौष्यं तत्र च पौलोममास्तीकं चादितः स्मृतम्॥ ३४॥

शौनकजी! आपके इस सत्संग-सत्रमें मैं यह जो उत्तम इतिहास महाभारत सुना रहा हूँ, यही जनमेजयके सर्पयज्ञमें व्यासजीके बुद्धिमान् शिष्य वैशम्पायनजीके द्वारा भी वर्णन किया गया था। उन्होंने बड़े-बड़े नरपतियोंके यश और पराक्रमका विस्तारपूर्वक वर्णन करनेके लिये प्रारम्भमें पौष्य, पौलोम और आस्तीक—इन तीन पर्वोंका स्मरण किया है॥ ३३-३४॥

विचित्रार्थपदाख्यानमनेकसमयान्वितम् ।
प्रतिपन्नं नरैः प्राज्ञैर्वैराग्यमिव मोक्षिभिः॥ ३५॥

जैसे मोक्ष चाहनेवाले पुरुष पर-वैराग्यकी शरण ग्रहण करते हैं, वैसे ही प्रज्ञावान् मनुष्य अलौकिक अर्थ, विचित्र पद, अद्भुत आख्यान और भाँति-भाँतिकी परस्पर विलक्षण मर्यादाओंसे युक्त इस महाभारतका आश्रय ग्रहण करते हैं॥ ३५॥

आत्मेव वेदितव्येषु प्रियेष्विव हि जीवितम्।
इतिहासः प्रधानार्थः श्रेष्ठः सर्वागमेष्वयम्॥ ३६॥

जैसे जाननेयोग्य पदार्थोंमें आत्मा, प्रिय पदार्थोंमें अपना जीवन सर्वश्रेष्ठ है, वैसे ही सम्पूर्ण शास्त्रोंमें परब्रह्म परमात्माकी प्राप्तिरूप प्रयोजनको पूर्ण करनेवाला यह इतिहास श्रेष्ठ है॥ ३६॥

अनाश्रित्येदमाख्यानं कथा भुवि न विद्यते।
आहारमनपाश्रित्य शरीरस्येव धारणम्॥ ३७॥

जैसे भोजन किये बिना शरीर-निर्वाह सम्भव नहीं है, वैसे ही इस इतिहासका आश्रय लिये बिना पृथ्वीपर कोई कथा नहीं है॥ ३७॥

तदेतद् भारतं नाम कविभिस्तूपजीव्यते।
उदयप्रेप्सुभिर्भृत्यैरभिजात इवेश्वरः॥ ३८॥

जैसे अपनी उन्नति चाहनेवाले महत्त्वाकांक्षी सेवक अपने कुलीन और सद्भावसम्पन्न स्वामीकी सेवा करते हैं, इसी प्रकार संसारके श्रेष्ठ कवि इस महाभारतकी सेवा करके ही अपने काव्यकी रचना करते हैं॥ ३८॥

इतिहासोत्तमे यस्मिन्नर्पिता बुद्धिरुत्तमा।
स्वरव्यञ्जनयोः कृत्स्ना लोकवेदाश्रयेव वाक्॥ ३९॥

जैसे लौकिक और वैदिक सब प्रकारके ज्ञानको प्रकाशित करनेवाली सम्पूर्ण वाणी स्वरों एवं व्यंजनोंमें समायी रहती है, वैसे ही (लोक, परलोक एवं परमार्थसम्बन्धी) सम्पूर्ण उत्तम विद्या-बुद्धि इस श्रेष्ठ इतिहासमें भरी हुई है॥ ३९॥

तस्य प्रज्ञाभिपन्नस्य विचित्रपदपर्वणः।
सूक्ष्मार्थन्याययुक्तस्य वेदार्थैर्भूषितस्य च॥ ४०॥
भारतस्येतिहासस्य श्रूयतां पर्वसंग्रहः।
पर्वानुक्रमणी पूर्वं द्वितीयः पर्वसंग्रहः॥ ४१॥

यह महाभारत इतिहास ज्ञानका भण्डार है। इसमें सूक्ष्म-से-सूक्ष्म पदार्थ और उनका अनुभव करानेवाली युक्तियाँ भरी हुई हैं। इसका एक-एक पद और पर्व आश्चर्यजनक है तथा यह वेदोंके धर्ममय अर्थसे अलंकृत है। अब इसके पर्वोंकी संग्रह-सूची सुनिये। पहले अध्यायमें पर्वानुक्रमणी है और दूसरेमें पर्वसंग्रह॥ ४०-४१॥

पौष्यं पौलोममास्तीकमादिरंशावतारणम्।
ततः सम्भवपर्वोक्तमद्भुतं रोमहर्षणम्॥ ४२॥

इसके पश्चात् पौष्य, पौलोम, आस्तीक और आदिअंशावतरण पर्व हैं। तदनन्तर सम्भवपर्वका वर्णन है, जो अत्यन्त अद्भुत और रोमांचकारी है॥ ४२॥

दाहो जतुगृहस्यात्र हैडिम्बं पर्व चोच्यते।
ततो बकवधः पर्व पर्व चैत्ररथं ततः॥ ४३॥

इसके पश्चात् जतुगृह (लाक्षाभवन) दाहपर्व है। तदनन्तर हिडिम्बवधपर्व है, फिर बकवध और उसके बाद चैत्ररथपर्व है॥ ४३॥

ततः स्वयंवरो देव्याः पाञ्चाल्याः पर्व चोच्यते।
क्षात्रधर्मेण निर्जित्य ततो वैवाहिकं स्मृतम्॥ ४४॥

उसके बाद पांचालराजकुमारी देवी द्रौपदीके स्वयंवरपर्वका तथा क्षत्रियधर्मसे सब राजाओंपर विजय-प्राप्तिपूर्वक वैवाहिकपर्वका वर्णन है॥ ४४॥

विदुरागमनं पर्व राज्यलम्भस्तथैव च।
अर्जुनस्य वने वासः सुभद्राहरणं ततः॥ ४५॥

विदुरागमन, राज्यलम्भपर्व, तत्पश्चात् अर्जुन-वनवासपर्व और फिर सुभद्राहरणपर्व है॥ ४५॥

सुभद्राहरणादूर्ध्वं ज्ञेया हरणहारिका।
ततः खाण्डवदाहाख्यं तत्रैव मयदर्शनम्॥ ४६॥

सुभद्राहरणके बाद हरणाहरणपर्व है, पुनः खाण्डवदाह-पर्व है, उसीमें मयदानवके दर्शनकी कथा है॥ ४६॥

सभापर्व ततः प्रोक्तं मन्त्रपर्व ततः परम्।
जरासन्धवधः पर्व पर्व दिग्विजयं तथा॥ ४७॥

इसके बाद क्रमशः सभापर्व, मन्त्रपर्व, जरासन्ध-वधपर्व और दिग्विजयपर्वका प्रवचन है॥ ४७॥

पर्व दिग्विजयादूर्ध्वं राजसूयिकमुच्यते।
ततश्चार्घाभिहरणं शिशुपालवधस्ततः॥ ४८॥

तदनन्तर राजसूय, अर्घाभिहरण और शिशुपाल-वधपर्व कहे गये हैं॥ ४८॥

द्यूतपर्व ततः प्रोक्तमनुद्यूतमतः परम्।
तत आरण्यकं पर्व किर्मीरवध एव च॥ ४९॥

इसके बाद क्रमशः द्यूत एवं अनुद्यूतपर्व हैं। तत्पश्चात् वनयात्रापर्व तथा किर्मीरवधपर्व है॥ ४९॥

अर्जुनस्याभिगमनं पर्व ज्ञेयमतः परम्।
ईश्वरार्जुनयोर्युद्धं पर्व कैरातसंज्ञितम्॥ ५०॥

इसके बाद अर्जुनाभिगमनपर्व जानना चाहिये और फिर कैरातपर्व आता है, जिसमें सर्वेश्वर भगवान् शिव तथा अर्जुनके युद्धका वर्णन है॥ ५०॥

इन्द्रलोकाभिगमनं पर्व ज्ञेयमतः परम्।
नलोपाख्यानमपि च धार्मिकं करुणोदयम्॥ ५१॥

तत्पश्चात् इन्द्रलोकाभिगमनपर्व है, फिर धार्मिक तथा करुणोत्पादक नलोपाख्यानपर्व है॥ ५१॥

तीर्थयात्रा ततः पर्व कुरुराजस्य धीमतः।
जटासुरवधः पर्व यक्षयुद्धमतः परम्॥ ५२॥

तदनन्तर बुद्धिमान् कुरुराजका तीर्थयात्रापर्व, जटासुरवधपर्व और उसके बाद यक्षयुद्धपर्व है॥ ५२॥

निवातकवचैर्युद्धं पर्व चाजगरं ततः।
मार्कण्डेयसमास्या च पर्वानन्तरमुच्यते॥ ५३॥

इसके पश्चात् निवातकवचयुद्ध, आजगर और मार्कण्डेयसमास्यापर्व क्रमशः कहे गये हैं॥ ५३॥

त्रयोदशं ततः पर्व द्रौपदीसत्यभामयोः।
घोषयात्रा ततः पर्व मृगस्वप्नोद्भवं ततः॥ ५४॥
व्रीहिद्रौणिकमाख्यानमैन्द्रद्युम्नं तथैव च।
द्रौपदीहरणं पर्व जयद्रथविमोक्षणम्॥ ५५॥

इसके बाद आता है द्रौपदी और सत्यभामाके संवादका पर्व, इसके अनन्तर घोषयात्रापर्व है, उसीमें मृगस्वप्नोद्भव और व्रीहिद्रौणिक उपाख्यान है। तदनन्तर इन्द्रद्युम्नका आख्यान और उसके बाद द्रौपदीहरणपर्व है, इसीमें जयद्रथविमोक्षणपर्व है॥ ५४-५५॥

पतिव्रताया माहात्म्यं सावित्र्याश्चैवमद्भुतम्।
रामोपाख्यानमत्रैव पर्व ज्ञेयमतः परम्॥ ५६॥

इसके बाद पतिव्रता सावित्रीके पातिव्रत्यका अद्भुत माहात्म्य है। फिर इसी स्थानपर रामोपाख्यानपर्व जानना चाहिये॥ ५६॥

कुण्डलाहरणं पर्व ततः परमिहोच्यते।
आरणेयं ततः पर्व वैराटं तदनन्तरम्।
पाण्डवानां प्रवेशश्च समयस्य च पालनम्॥ ५७॥

इसके बाद क्रमशः कुण्डलाहरण और आरणेय-पर्व कहे गये हैं। तदनन्तर विराटपर्वका आरम्भ होता है, जिसमें पाण्डवोंके नगरप्रवेश और समयपालन-सम्बन्धीपर्व हैं॥ ५७॥

कीचकानां वधः पर्व पर्व गोग्रहणं ततः।
अभिमन्योश्च वैराट्याः पर्व वैवाहिकं स्मृतम्॥ ५८॥

इसके बाद कीचकवधपर्व, गोग्रहण (गोहरण)-पर्व तथा अभिमन्यु और उत्तराके विवाहका पर्व है॥ ५८॥

उद्योगपर्व विज्ञेयमत ऊर्ध्वं महाद्भुतम्।
ततः संजययानाख्यं पर्व ज्ञेयमतः परम्॥ ५९॥
प्रजागरं तथा पर्व धृतराष्ट्रस्य चिन्तया।
पर्व सानत्सुजातं वै गुह्यमध्यात्मदर्शनम्॥ ६०॥

इसके पश्चात् परम अद्भुत उद्योगपर्व समझना चाहिये। इसीमें संजययानपर्व कहा गया है। तदनन्तर चिन्ताके कारण धृतराष्ट्रके रातभर जागनेसे सम्बन्ध रखनेवाला प्रजागरपर्व समझना चाहिये। तत्पश्चात् वह प्रसिद्ध सनत्सुजातपर्व है, जिसमें अत्यन्त गोपनीय अध्यात्मदर्शनका समावेश हुआ है॥ ५९-६०॥

यानसन्धिस्ततः पर्व भगवद्यानमेव च।
मातलीयमुपाख्यानं चरितं गालवस्य च॥ ६१॥
सावित्रं वामदेव्यं च वैन्योपाख्यानमेव च।
जामदग्न्यमुपाख्यानं पर्व षोडशराजिकम्॥ ६२॥

इसके पश्चात् यानसन्धि तथा भगवद्यानपर्व है, इसीमें मातलिका उपाख्यान, गालव-चरित, सावित्र, वामदेव तथा वैन्य-उपाख्यान, जामदग्न्य और षोडशराजिक-उपाख्यान आते हैं॥ ६१-६२॥

सभाप्रवेशः कृष्णस्य विदुलापुत्रशासनम्।
उद्योगः सैन्यनिर्याणं विश्वोपाख्यानमेव च॥ ६३॥

फिर श्रीकृष्णका सभाप्रवेश, विदुलाका अपने पुत्रके प्रति उपदेश, युद्धका उद्योग, सैन्यनिर्याण तथा विश्वोपाख्यान—इनका क्रमशः उल्लेख हुआ है॥ ६३॥

ज्ञेयं विवादपर्वात्र कर्णस्यापि महात्मनः।
निर्याणं च ततः पर्व कुरुपाण्डवसेनयोः॥ ६४॥

इसी प्रसंगमें महात्मा कर्णका विवादपर्व है। तदनन्तर कौरव एवं पाण्डव-सेनाका निर्याणपर्व है॥ ६४॥

रथातिरथसंख्या च पर्वोक्तं तदनन्तरम्।
उलूकदूतागमनं पर्वामर्षविवर्धनम्॥ ६५॥

तत्पश्चात् रथातिरथसंख्यापर्व और उसके बाद क्रोधकी आग प्रज्वलित करनेवाला उलूकदूतागमनपर्व है॥ ६५॥

अम्बोपाख्यानमत्रैव पर्व ज्ञेयमतः परम्।
भीष्माभिषेचनं पर्व ततश्चाद्भुतमुच्यते॥ ६६॥

इसके बाद ही अम्बोपाख्यानपर्व है। तत्पश्चात् अद्भुत भीष्माभिषेचनपर्व कहा गया है॥ ६६॥

जम्बूखण्डविनिर्माणं पर्वोक्तं तदनन्तरम्।
भूमिपर्व ततः प्रोक्तं द्वीपविस्तारकीर्तनम्॥ ६७॥

इसके आगे जम्बूखण्ड विनिर्माणपर्व है। तदनन्तर भूमिपर्व कहा गया है, जिसमें द्वीपोंके विस्तारका कीर्तन किया गया है॥ ६७॥

पर्वोक्तं भगवद्गीता पर्व भीष्मवधस्ततः।
द्रोणाभिषेचनं पर्व संशप्तकवधस्ततः॥ ६८॥

इसके बाद क्रमशः भगवद्गीता, भीष्मवध, द्रोणाभिषेक तथा संशप्तकवधपर्व हैं॥ ६८॥

अभिमन्युवधः पर्व प्रतिज्ञापर्व चोच्यते।
जयद्रथवधः पर्व घटोत्कचवधस्ततः॥ ६९॥

इसके बाद अभिमन्युवधपर्व, प्रतिज्ञापर्व, जयद्रथवधपर्व और घटोत्कचवधपर्व हैं॥ ६९॥

ततो द्रोणवधः पर्व विज्ञेयं लोमहर्षणम्।
मोक्षो नारायणास्त्रस्य पर्वानन्तरमुच्यते॥ ७०॥

फिर रोंगटे खड़े कर देनेवाला द्रोणवधपर्व जानना चाहिये। तदनन्तर नारायणास्त्रमोक्षपर्व कहा गया है॥ ७०॥

कर्णपर्व ततो ज्ञेयं शल्यपर्व ततः परम्।
ह्रदप्रवेशनं पर्व गदायुद्धमतः परम्॥ ७१॥

फिर कर्णपर्व और उसके बाद शल्यपर्व है। इसी पर्वमें ह्रदप्रवेश और गदायुद्धपर्व भी हैं॥ ७१॥

सारस्वतं ततः पर्व तीर्थवंशानुकीर्तनम्।
अत ऊर्ध्वं सुबीभत्सं पर्व सौप्तिकमुच्यते॥ ७२॥

तदनन्तर सारस्वतपर्व है, जिसमें तीर्थों और वंशोंका वर्णन किया गया है। इसके बाद है अत्यन्त बीभत्स सौप्तिकपर्व॥ ७२॥

ऐषीकं पर्व चोद्दिष्टमत ऊर्ध्वं सुदारुणम्।
जलप्रदानिकं पर्व स्त्रीविलापस्ततः परम्॥ ७३॥

इसके बाद अत्यन्त दारुण ऐषीकपर्वकी कथा है। फिर जलप्रदानिक और स्त्रीविलापपर्व आते हैं॥ ७३॥

श्राद्धपर्व ततो ज्ञेयं कुरूणामौर्ध्वदेहिकम्।
चार्वाकनिग्रहः पर्व रक्षसो ब्रह्मरूपिणः॥ ७४॥

तत्पश्चात् श्राद्धपर्व है, जिसमें मृत कौरवोंकी अन्त्येष्टिक्रियाका वर्णन है। उसके बाद ब्राह्मण-वेषधारी राक्षस चार्वाकके निग्रहका पर्व है॥ ७४॥

आभिषेचनिकं पर्व धर्मराजस्य धीमतः।
प्रविभागो गृहाणां च पर्वोक्तं तदनन्तरम्॥ ७५॥

तदनन्तर धर्मबुद्धिसम्पन्न धर्मराज युधिष्ठिरके अभिषेकका पर्व है तथा इसके पश्चात् गृहप्रविभागपर्व है॥ ७५॥

शान्तिपर्व ततो यत्र राजधर्मानुशासनम्।
आपद्धर्मश्च पर्वोक्तं मोक्षधर्मस्ततः परम्॥ ७६॥

इसके बाद शान्तिपर्व प्रारम्भ होता है; जिसमें राजधर्मानुशासन, आपद्धर्म और मोक्षधर्मपर्व हैं॥ ७६॥

शुकप्रश्नाभिगमनं ब्रह्मप्रश्नानुशासनम्।
प्रादुर्भावश्च दुर्वासः संवादश्चैव मायया॥ ७७॥

फिर शुकप्रश्नाभिगमन, ब्रह्मप्रश्नानुशासन, दुर्वासाका प्रादुर्भाव और मायासंवादपर्व हैं॥ ७७॥

ततः पर्व परिज्ञेयमानुशासनिकं परम्।
स्वर्गारोहणिकं चैव ततो भीष्मस्य धीमतः॥ ७८॥

इसके बाद धर्माधर्मका अनुशासन करनेवाला आनुशासनिकपर्व है, तदनन्तर बुद्धिमान् भीष्मजीका स्वर्गारोहणपर्व है॥ ७८॥

ततोऽऽश्वमेधिकं पर्व सर्वपापप्रणाशनम्।
अनुगीता ततः पर्व ज्ञेयमध्यात्मवाचकम्॥ ७९॥

अब आता है आश्वमेधिकपर्व, जो सम्पूर्ण पापोंका नाशक है। उसीमें अनुगीतापर्व है, जिसमें अध्यात्मज्ञानका सुन्दर निरूपण हुआ है॥ ७९॥

पर्व चाश्रमवासाख्यं पुत्रदर्शनमेव च।
नारदागमनं पर्व ततः परमिहोच्यते॥ ८०॥

इसके बाद आश्रमवासिक, पुत्रदर्शन और तदनन्तर नारदागमनपर्व कहे गये हैं॥ ८०॥

मौसलं पर्व चोद्दिष्टं ततो घोरं सुदारुणम्।
महाप्रस्थानिकं पर्व स्वर्गारोहणिकं ततः॥ ८१॥

इसके बाद है अत्यन्त भयानक एवं दारुण मौसलपर्व। तत्पश्चात् महाप्रस्थानपर्व और स्वर्गारोहण-पर्व आते हैं॥ ८१॥

हरिवंशस्ततः पर्व पुराणं खिलसंज्ञितम्।
विष्णुपर्व शिशोश्चर्या विष्णोः कंसवधस्तथा॥ ८२॥

इसके बाद हरिवंशपर्व है, जिसे खिल (परिशिष्ट) पुराण भी कहते हैं, इसमें विष्णुपर्व, श्रीकृष्णकी बाललीला एवं कंसवधका वर्णन है॥ ८२॥

भविष्यपर्व चाप्युक्तं खिलेष्वेवाद्भुतं महत्।
एतत् पर्वशतं पूर्णं व्यासेनोक्तं महात्मना॥ ८३॥

इस खिलपर्वमें भविष्यपर्व भी कहा गया है, जो महान् अद्भुत है। महात्मा श्रीव्यासजीने इस प्रकार पूरे सौ पर्वोंकी रचना की है॥ ८३॥

यथावत् सूतपुत्रेण लौमहर्षणिना ततः।
उक्तानि नैमिषारण्ये पर्वाण्यष्टादशैव तु॥ ८४॥

सूतवंशशिरोमणि लोमहर्षणके पुत्र उग्रश्रवाजीने ऋषियोंकी रचना पूर्ण हो जानेपर नैमिषारण्यक्षेत्रमें इन्हीं सौ पर्वोंको अठारह पर्वोंके रूपमें सुव्यवस्थित करके ऋषियोंके सामने कहा॥ ८४॥

व्यासो भारतस्यायमत्रोक्तः पर्वसंग्रहः।
पौष्यं पौलोममास्तीकमादिरंशावतारणम्॥ ८५॥
सम्भवो जतुवेश्माख्यं हिडिम्बबकयोर्वधः।
त्या चैत्ररथं देव्याः पाञ्चाल्याश्च स्वयंवरः॥ ८६॥
क्षत्रधर्मेण निर्जित्य ततो वैवाहिकं स्मृतम्।
विदुरागमनं चैव राज्यलम्भस्तथैव च॥ ८७॥
र्जुनवासोऽर्जुनस्यापि सुभद्राहरणं ततः।
हरणाहरणं चैव दहनं खाण्डवस्य च॥ ८८॥
मस्य दर्शनं चैव आदिपर्वणि कथ्यते।

इस प्रकार यहाँ संक्षेपसे महाभारतके पर्वोंका संग्रह कर दिया गया है। पौष्य, पौलोम, आस्तीक, आदिअंशावतरण, सम्भव, लाक्षागृह, हिडिम्बवध, बकवध, चैत्ररथ, देवी द्रौपदीका स्वयंवर, क्षत्रियधर्मसे राजाओंपर विजयप्राप्तिपूर्वक वैवाहिक विधि, विदुरागमन, राज्यलम्भ, अर्जुनका वनवास, सुभद्राका हरण, हरणाहरण, खाण्डवदाह तथा मयदानवसे सभाका प्रसंग—यहाँतककी कथा आदिपर्वमें कही गयी है॥ ८५—८८½॥

सभ्ये पर्वणि माहात्म्यमुत्तङ्कस्योपवर्णितम्॥ ८९॥
वनपर्वणि भृगुवंशस्य विस्तारः परिकीर्तितः।
आस्तीके सर्वनागानां गरुडस्य च सम्भवः॥ ९०॥

पौष्यपर्वमें उत्तंकके माहात्म्यका वर्णन है। पौलोमपर्वमें भृगुवंशके विस्तारका वर्णन है। आस्तीकपर्वमें सब नागों तथा गरुडकी उत्पत्तिकी कथा है॥ ८९-९०॥

क्षीरोदमथनं चैव जन्मोच्चैःश्रवसस्तथा।
राज्ञः सर्पसत्रेण राज्ञः पारीक्षितस्य च॥ ९१॥
वंशस्यमभिनिर्वृत्ता भरतानां महात्मनाम्।
विविधाः सम्भवा राज्ञामुक्ताः सम्भवपर्वणि॥ ९२॥
अन्येषां चैव शूराणामृषेर्द्वैपायनस्य च।
अवतरणं चात्र देवानां परिकीर्तितम्॥ ९३॥

इसी पर्वमें क्षीरसागरके मन्थन और उच्चैःश्रवा घोड़ेके जन्मकी भी कथा है। परीक्षित्‌नन्दन राजा जनमेजयके सर्पसत्रमें इन भरतवंशी महात्मा राजाओंकी कथा कही गयी है सम्भवपर्वमें राजाओंके भिन्न-भिन्न प्रकारके जन्मोंकी वृत्तान्तोंका वर्णन है। इसीमें दूसरे शूरवीरों तथा श्रीकृष्णद्वैपायनके जन्मकी कथा भी है। यहीं देवताओंके अवतारोंकी कथा कही गयी है॥ ९१—९३॥

दैत्यानां दानवानां च यक्षाणां च महौजसाम्।
नागानामथ सर्पाणां गन्धर्वाणां पतत्त्रिणाम्॥ ९४॥
अन्येषां चैव भूतानां विविधानां समुद्भवः।
महर्षेराश्रमपदे कण्वस्य च तपस्विनः॥ ९५॥
शकुन्तलायां दुष्यन्ताद् भरतश्चापि जज्ञिवान्।
यस्य लोकेषु नाम्नेदं प्रथितं भारतं कुलम्॥ ९६॥

इसी पर्वमें अत्यन्त प्रभावशाली दैत्य, दानव, यक्ष, नाग, सर्प, गन्धर्व और पक्षियों तथा अन्य विविध प्रकारके प्राणियोंकी उत्पत्तिका वर्णन है। परम तपस्वी महर्षि कण्वके आश्रममें दुष्यन्तके द्वारा शकुन्तलाके गर्भसे भरतके जन्मकी कथा भी इसीमें है। उन्हीं महात्मा भरतके नामसे यह भरतवंश संसारमें प्रसिद्ध हुआ है॥ ९४—९६॥

वसूनां पुनरुत्पत्तिर्भागीरथ्यां महात्मनाम्।
शान्तनोर्वेश्मनि पुनस्तेषां चारोहणं दिवि॥ ९७॥

इसके बाद महाराज शान्तनुके गृहमें भागीरथी गंगाके गर्भसे महात्मा वसुओंकी उत्पत्ति एवं फिरसे उनके स्वर्गमें जानेका वर्णन किया गया है॥ ९७॥

तेजोंऽशानां च सम्पातो भीष्मस्याप्यत्र सम्भवः।
राज्यान्निवर्तनं तस्य ब्रह्मचर्यव्रते स्थितिः॥ ९८॥
प्रतिज्ञापालनं चैव रक्षा चित्राङ्गदस्य च।
हते चित्राङ्गदे चैव रक्षा भ्रातुर्यवीयसः॥ ९९॥
विचित्रवीर्यस्य तथा राज्ये सम्प्रतिपादनम्।
धर्मस्य नृषु सम्भूतिरणीमाण्डव्यशापजा॥ १००॥
कृष्णद्वैपायनाच्चैव प्रसूतिर्वरदानजा।
धृतराष्ट्रस्य पाण्डोश्च पाण्डवानां च सम्भवः॥ १०१॥

इसी पर्वमें वसुओंके तेजके अंशभूत भीष्मके जन्मकी कथा भी है। उनकी राज्यभोगसे निवृत्ति, आजीवन ब्रह्मचर्यव्रतमें स्थित रहनेकी प्रतिज्ञा, प्रतिज्ञापालन, चित्रांगदकी रक्षा और चित्रांगदकी मृत्यु हो जानेपर छोटे भाई विचित्रवीर्यकी रक्षा, उन्हें राज्य-समर्पण, अणीमाण्डव्यके शापसे भगवान् धर्मकी विदुरके रूपमें मनुष्योंमें उत्पत्ति, श्रीकृष्णद्वैपायनके वरदानके कारण धृतराष्ट्र एवं पाण्डुका जन्म और इसी प्रसंगमें पाण्डवोंकी उत्पत्ति-कथा भी है॥ ९८—१०१॥

वारणावतयात्रायां मन्त्रो दुर्योधनस्य च।
कूटस्य धार्तराष्ट्रेण प्रेषणं पाण्डवान् प्रति॥ १०२॥
हितोपदेशश्च पथि धर्मराजस्य धीमतः।
विदुरेण कृतो यत्र हितार्थं म्लेच्छभाषया॥ १०३॥

लाक्षागृहदाहपर्वमें पाण्डवोंकी वारणावत-यात्राके प्रसंगमें दुर्योधनके गुप्त षड्यन्त्रका वर्णन है। उसका

पाण्डवोंके पास कूटनीतिज्ञ पुरोचनको भेजनेका भी प्रसंग है। मार्गमें विदुरजीने बुद्धिमान् युधिष्ठिरके हितके लिये म्लेच्छभाषामें जो हितोपदेश किया, उसका भी वर्णन है॥ १०२-१०३॥

विदुरस्य च वाक्येन सुरङ्गोपक्रमक्रिया।
निषाद्याः पञ्चपुत्रायाः सुप्ताया जतुवेश्मनि॥ १०४॥
पुरोचनस्य चात्रैव दहनं सम्प्रकीर्तितम्।
पाण्डवानां वने घोरे हिडिम्बायाश्च दर्शनम्॥ १०५॥
तत्रैव च हिडिम्बस्य वधो भीमान्महाबलात्।
घटोत्कचस्य चोत्पत्तिरत्रैव परिकीर्तिता॥ १०६॥

फिर विदुरकी बात मानकर सुरंग खुदवानेका कार्य आरम्भ किया गया। उसी लाक्षागृहमें अपने पाँच पुत्रोंके साथ सोती हुई एक भीलनी और पुरोचन भी जल मरे—यह सब कथा कही गयी है। हिडिम्बवधपर्वमें घोर वनके मार्गसे यात्रा करते समय पाण्डवोंको हिडिम्बाके दर्शन, महाबली भीमसेनके द्वारा हिडिम्बासुरके वध तथा घटोत्कचके जन्मकी कथा कही गयी है॥ १०४—१०६॥

महर्षेर्दर्शनं चैव व्यासस्यामिततेजसः।
तदाज्ञयैकचक्रायां ब्राह्मणस्य निवेशने॥ १०७॥
अज्ञातचर्यया वासो यत्र तेषां प्रकीर्तितः।
बकस्य निधनं चैव नागराणां च विस्मयः॥ १०८॥

अमिततेजस्वी महर्षि व्यासका पाण्डवोंसे मिलना और उनकी आज्ञासे एकचक्रा नगरीमें ब्राह्मणके घर पाण्डवोंके गुप्त निवासका वर्णन है। वहीं रहते समय उन्होंने बकासुरका वध किया, जिससे नागरिकोंको बड़ा भारी आश्चर्य हुआ॥ १०७-१०८॥

सम्भवश्चैव कृष्णाया धृष्टद्युम्नस्य चैव ह।
ब्राह्मणात् समुपश्रुत्य व्यासवाक्यप्रचोदिताः॥ १०९॥
द्रौपदीं प्रार्थयन्तस्ते स्वयंवरदिदृक्षया।
पञ्चालानभितो जग्मुर्यत्र कौतूहलान्विताः॥ ११०॥

इसके अनन्तर कृष्णा (द्रौपदी) और उसके भाई धृष्टद्युम्नकी उत्पत्तिका वर्णन है। जब पाण्डवोंको ब्राह्मणके मुखसे यह संवाद मिला, तब वे महर्षि व्यासकी आज्ञासे द्रौपदीकी प्राप्तिके लिये कौतूहलपूर्ण चित्तसे स्वयंवर देखने पांचालदेशकी ओर चल पड़े॥ १०९-११०॥

अङ्गारपर्णं निर्जित्य गङ्गाकूलेऽर्जुनस्तदा।
सख्यं कृत्वा ततस्तेन तस्मादेव च शुश्रुवे॥ १११॥
तापत्यमथ वासिष्ठमौर्वं चाख्यानमुत्तमम्।
भ्रातृभिः सहितः सर्वैः पञ्चालानभितो ययौ॥ ११२॥
पाञ्चालनगरे चापि लक्ष्यं भित्त्वा धनंजयः।
द्रौपदीं लब्धवानत्र मध्ये सर्वमहीक्षिताम्॥ ११३॥
भीमसेनार्जुनौ यत्र संरब्धान् पृथिवीपतीन्।
शल्यकर्णौ च तरसा जितवन्तौ महामृधे॥ ११४॥

चैत्ररथपर्वमें गंगाके तटपर अर्जुनने अंगारपर्ण गन्धर्वको जीतकर उससे मित्रता कर ली और उसीके मुखसे तपती, वसिष्ठ और और्वके उत्तम आख्यान सुने। फिर अर्जुनने वहाँसे अपने सभी भाइयोंके साथ पांचालकी ओर यात्रा की। तदनन्तर अर्जुनने पांचालनगरके बड़े-बड़े राजाओंसे भरी सभामें लक्ष्यवेध करके द्रौपदीको प्राप्त किया—यह कथा भी इसी पर्वमें है। वहीं भीमसेन और अर्जुनने रणांगणमें युद्धके लिये संनद्ध क्रोधान्ध राजाओंको तथा शल्य और कर्णको भी अपने पराक्रमसे पराजित कर दिया॥ १११—११४॥

दृष्ट्वा तयोश्च तद्वीर्यमप्रमेयममानुषम्।
शङ्कमानौ पाण्डवांस्तान् रामकृष्णौ महामती॥ ११५॥
जग्मतुस्तैः समागन्तुं शालां भार्गववेश्मनि।
पञ्चानामेकपत्नीत्वे विमर्शो द्रुपदस्य च॥ ११६॥

महामति बलराम एवं भगवान् श्रीकृष्णने जब भीमसेन एवं अर्जुनके अपरिमित और अतिमानुष बल-वीर्यको देखा, तब उन्हें यह शंका हुई कि कहीं ये पाण्डव तो नहीं हैं। फिर वे दोनों उनसे मिलनेके लिये कुम्हारके घर आये। इसके पश्चात् द्रुपदने 'पाँचों पाण्डवोंकी एक ही पत्नी कैसे हो सकती है'—इस सम्बन्धमें विचार-विमर्श किया॥ ११५-११६॥

पञ्चेन्द्राणामुपाख्यानमत्रैवाद्भुतमुच्यते।
द्रौपद्या देवविहितो विवाहश्चाप्यमानुषः॥ ११७॥

इसी वैवाहिकपर्वमें पाँच इन्द्रोंका अद्भुत उपाख्यान और द्रौपदीके देवविहित तथा मनुष्य-परम्पराके विपरीत विवाहका वर्णन हुआ है॥ ११७॥

क्षत्तुश्च धृतराष्ट्रेण प्रेषणं पाण्डवान् प्रति।
विदुरस्य च सम्प्राप्तिर्दर्शनं केशवस्य च॥ ११८॥

इसके बाद धृतराष्ट्रने पाण्डवोंके पास विदुरजीको भेजा है, विदुरजी पाण्डवोंसे मिले हैं तथा उन्हें श्रीकृष्णका दर्शन हुआ है॥ ११८॥

खाण्डवप्रस्थवासश्च तथा राज्यार्धसर्जनम्।
नारदस्याज्ञया चैव द्रौपद्याः समयक्रिया॥ ११९॥

इसके पश्चात् धृतराष्ट्रका पाण्डवोंको आधा राज्य देना, इन्द्रप्रस्थमें पाण्डवोंका निवास करना एवं नारदजीकी आज्ञासे द्रौपदीके पास आने-जानेके सम्बन्धमें समय-निर्धारण आदि विषयोंका वर्णन है॥ ११९॥

मुन्दोपसुन्दयोस्तद्वदाख्यानं परिकीर्तितम्।
अनन्तरं च द्रौपद्या सहासीनं युधिष्ठिरम्॥ १२०॥
अनुप्रविश्य विप्रार्थे फाल्गुनो गृह्य चायुधम्।
मोक्षयित्वा गृहं गत्वा विप्रार्थं कृतनिश्चयः॥ १२१॥
समयं पालयन् वीरो वनं यत्र जगाम ह।
पार्थस्य वनवासे च उलूप्या पथि संगमः॥ १२२॥

इसी प्रसंगमें सुन्द और उपसुन्दके उपाख्यानका भी वर्णन है। तदनन्तर एक दिन धर्मराज युधिष्ठिर द्रौपदीके साथ बैठे हुए थे। अर्जुनने ब्राह्मणके लिये नियम तोड़कर वहाँ प्रवेश किया और अपने आयुध लेकर ब्राह्मणकी वस्तु उसे प्राप्त करा दी और दृढ़ निश्चय करके वीरताके साथ मर्यादापालनके लिये वनमें चले गये। इसी प्रसंगमें यह कथा भी कही गयी है कि वनवासके अवसरपर मार्गमें ही अर्जुन और उलूपीका मेल-मिलाप हो गया॥ १२०—१२२॥

पुण्यतीर्थानुसंयानं बभ्रुवाहनजन्म च।
तत्रैव मोक्षयामास पञ्च सोऽप्सरसः शुभाः॥ १२३॥
शापाद् ग्राहत्वमापन्ना ब्राह्मणस्य तपस्विनः।
प्रभासतीर्थे पार्थेन कृष्णस्य च समागमः॥ १२४॥

इसके बाद अर्जुनने पवित्र तीर्थोंकी यात्रा की है। इसी समय चित्रांगदाके गर्भसे बभ्रुवाहनका जन्म हुआ है और इसी यात्रामें उन्होंने पाँच शुभ अप्सराओंको मुक्तिदान किया, जो एक तपस्वी ब्राह्मणके शापसे ग्राह हो गयी थीं। फिर प्रभासतीर्थमें श्रीकृष्ण और अर्जुनके मिलनका वर्णन है॥ १२३-१२४॥

द्वारकायां सुभद्रा च कामयानेन कामिनी।
वासुदेवस्यानुमते प्राप्ता चैव किरीटिना॥ १२५॥

तत्पश्चात् यह बताया गया है कि द्वारकामें सुभद्रा और अर्जुन परस्पर एक-दूसरेपर आसक्त हो गये, इसके बाद श्रीकृष्णकी अनुमतिसे अर्जुनने सुभद्राको हर लिया॥ १२५॥

हृत्वा हरणं प्राप्ते कृष्णे देवकिनन्दने।
अभिमन्योः सुभद्रायां जन्म चोत्तमतेजसः॥ १२६॥

तदनन्तर देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णके दहेज लेकर पाण्डवोंके पास पहुँचनेकी और सुभद्राके गर्भसे परम तेजस्वी वीर बालक अभिमन्युके जन्मकी कथा है॥ १२६॥

द्रौपद्यास्तनयानां च सम्भवोऽनुप्रकीर्तितः।
विहारार्थं च गतयोः कृष्णयोर्यमुनामनु॥ १२७॥
सम्प्राप्तिश्चक्रधनुषोः खाण्डवस्य च दाहनम्।
मयस्य मोक्षो ज्वलनाद् भुजङ्गस्य च मोक्षणम्॥ १२८॥

इसके पश्चात् द्रौपदीके पुत्रोंकी उत्पत्तिकी कथा है। तदनन्तर जब श्रीकृष्ण और अर्जुन यमुनाजीके तटपर विहार करनेके लिये गये हुए थे, तब उन्हें जिस प्रकार चक्र और धनुषकी प्राप्ति हुई, उसका वर्णन है। साथ ही खाण्डववनके दाह, मयदानवके छुटकारे और अग्निकाण्डसे सर्पके सर्वथा बच जानेका वर्णन हुआ है॥ १२७-१२८॥

महर्षेर्मन्दपालस्य शार्ङ्ग्यां तनयसम्भवः।
इत्येतदादिपर्वोक्तं प्रथमं बहुविस्तरम्॥ १२९॥

इसके बाद महर्षि मन्दपालका शार्ङ्गी पक्षीके गर्भसे पुत्र उत्पन्न करनेकी कथा है। इस प्रकार इस अत्यन्त विस्तृत आदिपर्वका सबसे प्रथम निरूपण हुआ है॥ १२९॥

अध्यायानां शते द्वे तु संख्याते परमर्षिणा।
सप्तविंशतिरध्याया व्यासेनोत्तमतेजसा॥ १३०॥

परमर्षि एवं परम तेजस्वी महर्षि व्यासने इस पर्वमें दो सौ सत्ताईस (२२७) अध्यायोंकी रचना की है॥ १३०॥

अष्टौ श्लोकसहस्राणि अष्टौ श्लोकशतानि च।
श्लोकाश्च चतुराशीतिर्मुनिनोक्ता महात्मना॥ १३१॥

महात्मा व्यास मुनिने इन दो सौ सत्ताईस (२२७) अध्यायोंमें आठ हजार आठ सौ चौरासी (८,८८४) श्लोक कहे हैं॥ १३१॥

द्वितीयं तु सभापर्व बहुवृत्तान्तमुच्यते।
सभाक्रिया पाण्डवानां किङ्कराणां च दर्शनम्॥ १३२॥
लोकपालसभाख्यानं नारदाद् देवदर्शिनः।
राजसूयस्य चारम्भो जरासन्धवधस्तथा॥ १३३॥
गिरिव्रजे निरुद्धानां राज्ञां कृष्णेन मोक्षणम्।
तथा दिग्विजयोऽत्रैव पाण्डवानां प्रकीर्तितः॥ १३४॥

दूसरा सभापर्व है। इसमें बहुत-से वृत्तान्तोंका वर्णन है। पाण्डवोंका सभानिर्माण, किंकर नामक राक्षसोंका दीखना, देवर्षि नारदद्वारा लोकपालोंकी सभाका वर्णन, राजसूययज्ञका आरम्भ एवं जरासन्धवध, गिरिव्रजमें बंदी राजाओंका श्रीकृष्णके द्वारा छुड़ाया जाना और पाण्डवोंकी दिग्विजयका भी इसी सभापर्वमें वर्णन किया गया है॥ १३२—१३४॥

राज्ञामागमनं चैव साहणानां महाक्रतौ।
राजसूयेऽर्घसंवादे शिशुपालवधस्तथा॥ १३५॥

राजसूय महायज्ञमें उपहार ले-लेकर राजाओंके आगमन तथा पहले किसकी पूजा हो इस विषयको लेकर छिड़े हुए विवादमें शिशुपालके वधका प्रसंग भी इसी सभापर्वमें आया है॥ १३५॥

यज्ञे विभूतिं तां दृष्ट्वा दुःखामर्षान्वितस्य च।
दुर्योधनस्यावहासो भीमेन च सभातले॥१३६॥

यज्ञमें पाण्डवोंका यह वैभव देखकर दुर्योधन दुःख और ईर्ष्यासे मन-ही-मनमें जलने लगा। इसी प्रसंगमें सभाभवनके सामने समतल भूमिपर भीमसेनने उसका उपहास किया॥ १३६॥

यत्रास्य मन्युरुद्भूतो येन द्यूतमकारयत्।
यत्र धर्मसुतं द्यूते शकुनिः कितवोऽजयत्॥ १३७॥

उसी उपहासके कारण दुर्योधनके हृदयमें क्रोधाग्नि जल उठी। जिसके कारण उसने जूएके खेलका षड्यन्त्र रचा। इसी जूएमें कपटी शकुनिने धर्मपुत्र युधिष्ठिरको जीत लिया॥ १३७॥

यत्र द्यूतार्णवे मग्नां द्रौपदीं नौरिवार्णवात्।
धृतराष्ट्रो महाप्राज्ञः स्नुषां परमदुःखिताम्॥ १३८॥
तारयामास तांस्तीर्णान् ज्ञात्वा दुर्योधनो नृपः।
पुनरेव ततो द्यूते समाह्वयत पाण्डवान्॥ १३९॥

जैसे समुद्रमें डूबी हुई नौकाको कोई फिरसे निकाल ले, वैसे ही द्यूतके समुद्रमें डूबी हुई परमदुःखिनी पुत्रवधू द्रौपदीको परम बुद्धिमान् धृतराष्ट्रने निकाल लिया। जब राजा दुर्योधनको जूएकी विपत्तिसे पाण्डवोंके बच जानेका समाचार मिला, तब उसने पुनः उन्हें (पितासे आग्रह करके) जूएके लिये बुलवाया॥ १३८-१३९॥

जित्वा स वनवासाय प्रेषयामास तांस्ततः।
एतत् सर्वं सभापर्व समाख्यातं महात्मना॥ १४०॥

दुर्योधनने उन्हें जूएमें जीतकर वनवासके लिये भेज दिया। महर्षि व्यासने सभापर्वमें यही सब कथा कही है॥ १४०॥

अध्यायाः सप्ततिर्ज्ञेयास्तथा चाष्टौ प्रसंख्यया।
श्लोकानां द्वे सहस्रे तु पञ्च श्लोकशतानि च॥ १४१॥
श्लोकाश्चैकादश ज्ञेयाः पर्वण्यस्मिन् द्विजोत्तमाः।
अतः परं तृतीयं तु ज्ञेयमारण्यकं महत्॥ १४२॥

श्रेष्ठ ब्राह्मणो! इस पर्वमें अध्यायोंकी संख्या अठहत्तर (७८) है और श्लोकोंकी संख्या दो हजार पाँच सौ ग्यारह (२,५११) बतायी गयी है। इसके पश्चात् महत्त्वपूर्ण वनपर्वका आरम्भ होता है॥ १४१-१४२॥

वनवासं प्रयातेषु पाण्डवेषु महात्मसु।
पौरानुगमनं चैव धर्मपुत्रस्य धीमतः॥ १४३॥

जिस समय महात्मा पाण्डव वनवासके लिये यात्रा कर रहे थे, उस समय बहुत-से पुरवासी लोग बुद्धिमान् धर्मराज युधिष्ठिरके पीछे-पीछे चलने लगे॥ १४३॥

अन्नौषधीनां च कृते पाण्डवेन महात्मना।
द्विजानां भरणार्थं च कृतमाराधनं रवेः॥ १४४॥

महात्मा युधिष्ठिरने पहले अनुयायी ब्राह्मणोंके भरण-पोषणके लिये अन्न और ओषधियाँ प्राप्त करनेके उद्देश्यसे सूर्यभगवान्की आराधना की॥ १४४॥

धौम्योपदेशात् तिग्मांशुप्रसादादन्नसम्भवः।
हितं च ब्रुवतः क्षत्तुः परित्यागोऽम्बिकासुतात्॥ १४५॥
त्यक्तस्य पाण्डुपुत्राणां समीपगमनं तथा।
पुनरागमनं चैव धृतराष्ट्रस्य शासनात्॥ १४६॥
कर्णप्रोत्साहनाच्चैव धार्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः।
वनस्थान् पाण्डवान् हन्तुं मन्त्रो दुर्योधनस्य च॥ १४७॥

महर्षि धौम्यके उपदेशसे उन्हें सूर्यभगवान्की कृपा प्राप्त हुई और अक्षय अन्नका पात्र मिला। उधर विदुरजी धृतराष्ट्रको हितकारी उपदेश कर रहे थे, परंतु धृतराष्ट्रने उनका परित्याग कर दिया। धृतराष्ट्रके परित्यागपर विदुरजी पाण्डवोंके पास चले गये और फिर धृतराष्ट्रका आदेश प्राप्त होनेपर उनके पास लौट आये। धृतराष्ट्रनन्दन दुर्मति दुर्योधनने कर्णके प्रोत्साहनसे वनवासी पाण्डवोंको मार डालनेका विचार किया॥ १४५—१४७॥

तं दुष्टभावं विज्ञाय व्यासस्यागमनं द्रुतम्।
निर्याणप्रतिषेधश्च सुरभ्याख्यानमेव च॥ १४८॥

दुर्योधनके इस दूषित भावको जानकर महर्षि व्यास झटपट वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने दुर्योधनकी यात्राका निषेध कर दिया। इसी प्रसंगमें सुरभिका आख्यान भी है॥ १४८॥

मैत्रेयागमनं चात्र राज्ञश्चैवानुशासनम्।
शापोत्सर्गश्च तेनैव राज्ञो दुर्योधनस्य च॥ १४९॥

मैत्रेय ऋषिने आकर राजा धृतराष्ट्रको उपदेश किया और उन्होंने ही राजा दुर्योधनको शाप दे दिया॥ १४९॥

किर्मीरस्य वधश्चात्र भीमसेनेन संयुगे।
वृष्णीनामागमश्चात्र पञ्चालानां च सर्वशः॥ १५०॥

इसी पर्वमें यह कथा है कि युद्धमें भीमसेनने किर्मीरको मार डाला। पाण्डवोंके पास वृष्णिवंशी और पांचाल आये। पाण्डवोंने उन सबके साथ वार्तालाप किया॥ १५०॥

श्रुत्वा शकुनिना द्यूते निकृत्या निर्जितांश्च तान्।
क्रुद्धस्यानुप्रशमनं हरेश्चैव किरीटिना॥ १५१॥

जब श्रीकृष्णने यह सुना कि शकुनिने जूएमें पाण्डवोंको कपटसे हरा दिया है, तब वे अत्यन्त क्रोधित हुए; परंतु अर्जुनने हाथ जोड़कर उन्हें शान्त किया॥ १५१॥

परिदेवनं च पाञ्चाल्या वासुदेवस्य संनिधौ।
आश्वासनं च कृष्णेन दुःखार्तायाः प्रकीर्तितम्॥ १५२॥

द्रौपदी श्रीकृष्णके पास बहुत रोयी-कलपी। श्रीकृष्णने दुःखार्त द्रौपदीको आश्वासन दिया। यह सब कथा वनपर्वमें है॥ १५२॥

तथा सौभवधाख्यानमत्रैवोक्तं महर्षिणा।
सुभद्रायाः सपुत्रायाः कृष्णेन द्वारकां पुरीम्॥ १५३॥
नयनं द्रौपदेयानां धृष्टद्युम्नेन चैव ह।
प्रवेशः पाण्डवेयानां रम्ये द्वैतवने ततः॥ १५४॥

इसी पर्वमें महर्षि व्यासने सौभवधकी कथा कही है। श्रीकृष्ण सुभद्राको पुत्रसहित द्वारकामें ले गये। धृष्टद्युम्न द्रौपदीके पुत्रोंको अपने साथ लिवा ले गये। तदनन्तर पाण्डवोंने परम रमणीय द्वैतवनमें प्रवेश किया॥ १५३-१५४॥

धर्मराजस्य चात्रैव संवादः कृष्णया सह।
संवादश्च तथा राज्ञा भीमस्यापि प्रकीर्तितः॥ १५५॥

इसी पर्वमें युधिष्ठिर एवं द्रौपदीका संवाद तथा युधिष्ठिर और भीमसेनके संवादका भलीभाँति वर्णन किया गया है॥ १५५॥

समीपं पाण्डुपुत्राणां व्यासस्यागमनं तथा।
प्रतिस्मृत्याथ विद्याया दानं राज्ञो महर्षिणा॥ १५६॥

महर्षि व्यास पाण्डवोंके पास आये और उन्होंने राजा युधिष्ठिरको प्रतिस्मृति नामक मन्त्रविद्याका उपदेश दिया॥ १५६॥

गमनं काम्यके चापि व्यासे प्रतिगते ततः।
अस्त्रहेतोर्विवासश्च पार्थस्यामिततेजसः॥ १५७॥

व्यासजीके चले जानेपर पाण्डवोंने काम्यकवनकी यात्रा की। इसके बाद अमिततेजस्वी अर्जुन अस्त्र प्राप्त करनेके लिये अपने भाइयोंसे अलग चले गये॥ १५७॥

महादेवेन युद्धं च किरातवपुषा सह।
दर्शनं लोकपालानामस्त्रप्राप्तिस्तथैव च॥ १५८॥

वहीं किरातवेशधारी महादेवजीके साथ अर्जुनका युद्ध हुआ, लोकपालोंके दर्शन हुए और अस्त्रकी प्राप्ति हुई॥ १५८॥

महेन्द्रलोकगमनमस्त्रार्थे च किरीटिनः।
यत्र चिन्ता समुत्पन्ना धृतराष्ट्रस्य भूयसी॥ १५९॥

इसके बाद अर्जुन अस्त्रके लिये इन्द्रलोकमें गये यह सुनकर धृतराष्ट्रको बड़ी चिन्ता हुई॥ १५९॥

दर्शनं बृहदश्वस्य महर्षेर्भावितात्मनः।
युधिष्ठिरस्य चार्तस्य व्यसनं परिदेवनम्॥ १६०॥

इसके बाद धर्मराज युधिष्ठिरको शुद्धहृदय महर्षि बृहदश्वका दर्शन हुआ। युधिष्ठिरने आर्त होकर उन्हें अपनी दुःखगाथा सुनायी और विलाप किया॥ १६०॥

नलोपाख्यानमत्रैव धर्मिष्ठं करुणोदयम्।
दमयन्त्याः स्थितिर्यत्र नलस्य चरितं तथा॥ १६१॥

इसी प्रसंगमें नलोपाख्यान आता है, जिसमें धर्मनिष्ठाका अनुपम आदर्श है और जिसे पढ़-सुनकर हृदयमें करुणाकी धारा बहने लगती है। दमयन्तीका दृढ़ धैर्य और नलका चरित्र यहीं पढ़नेको मिलते हैं॥ १६१॥

तथाक्षहृदयप्राप्तिस्तस्मादेव महर्षितः।
लोमशस्यागमस्तत्र स्वर्गात् पाण्डुसुतान् प्रति॥ १६२॥
वनवासगतानां च पाण्डवानां महात्मनाम्।
स्वर्गे प्रवृत्तिराख्याता लोमशेनार्जुनस्य वै॥ १६३॥

उन्हीं महर्षिसे पाण्डवोंको अक्षहृदय (जूएके रहस्य)-की प्राप्ति हुई। यहीं स्वर्गसे महर्षि लोमश पाण्डवोंके पास पधारे। लोमशने ही वनवासी महात्मा पाण्डवोंको यह बात बतलायी कि अर्जुन स्वर्गमें किस प्रकार अस्त्र-विद्या सीख रहे हैं॥ १६२-१६३॥

संदेशादर्जुनस्यात्र तीर्थाभिगमनक्रिया।
तीर्थानां च फलप्राप्तिः पुण्यत्वं चापि कीर्तितम्॥ १६४॥

इसी पर्वमें अर्जुनका संदेश पाकर पाण्डवोंने तीर्थयात्रा की। उन्हें तीर्थयात्राका फल प्राप्त हुआ और कौन तीर्थ कितने पुण्यप्रद होते हैं—इस बातका वर्णन हुआ है॥ १६४॥

पुलस्त्यतीर्थयात्रा च नारदेन महर्षिणा।
तीर्थयात्रा च तत्रैव पाण्डवानां महात्मनाम्॥ १६५॥
कर्णस्य परिमोक्षोऽत्र कुण्डलाभ्यां पुरन्दरात्।
तथा यज्ञविभूतिश्च गयस्यात्र प्रकीर्तिता॥ १६६॥

इसके बाद महर्षि नारदने पुलस्त्यतीर्थकी यात्रा करनेकी प्रेरणा दी और महात्मा पाण्डवोंने वहाँकी यात्रा की। यहीं इन्द्रके द्वारा कर्णको कुण्डलोंसे वंचित करनेका तथा राजा गयके यज्ञवैभवका वर्णन किया गया है॥ १६५-१६६॥

आगस्त्यमपि चाख्यानं यत्र वातापिभक्षणम्।
लोपामुद्राभिगमनमपत्यार्थमृषेस्तथा ॥ १६७ ॥

इसके बाद अगस्त्य-चरित्र है, जिसमें उनके वातापिभक्षण तथा संतानके लिये लोपामुद्राके साथ समागमका वर्णन है॥ १६७॥

ऋष्यशृङ्गस्य चरितं कौमारब्रह्मचारिणः।
जामदग्न्यस्य रामस्य चरितं भूरितेजसः॥ १६८॥

इसके पश्चात् कौमार ब्रह्मचारी ऋष्यशृंगका चरित्र है। फिर परम तेजस्वी जमदग्निनन्दन परशुरामका चरित्र है॥ १६८॥

कार्तवीर्यवधो यत्र हैहयानां च वर्ण्यते।
प्रभासतीर्थे पाण्डूनां वृष्णिभिश्च समागमः॥ १६९॥

इसी चरित्रमें कार्तवीर्य अर्जुन तथा हैहयवंशी राजाओंके वधका वर्णन किया गया है। प्रभासतीर्थमें पाण्डवों एवं यादवोंके मिलनेकी कथा भी इसीमें है॥ १६९॥

सौकन्यमपि चाख्यानं च्यवनो यत्र भार्गवः।
शर्यातियज्ञे नासत्यौ कृतवान् सोमपीतिनौ॥ १७०॥

इसके बाद सुकन्याका उपाख्यान है। इसीमें यह कथा है कि भृगुनन्दन च्यवनने शर्यातिके यज्ञमें अश्विनीकुमारोंको सोमपानका अधिकारी बना दिया॥ १७०॥

ताभ्यां च यत्र स मुनिर्यौवनं प्रतिपादितः।
मान्धातुश्चाप्युपाख्यानं राज्ञोऽत्रैव प्रकीर्तितम्॥ १७१॥

उन्हीं दोनोंने च्यवन मुनिको बूढ़ेसे जवान बना दिया। राजा मान्धाताकी कथा भी इसी पर्वमें कही गयी है॥ १७१॥

जन्तूपाख्यानमत्रैव यत्र पुत्रेण सोमकः।
पुत्रार्थमयजद् राजा लेभे पुत्रशतं च सः॥ १७२॥

यहीं जन्तूपाख्यान है। इसमें राजा सोमकने बहुत-से पुत्र प्राप्त करनेके लिये एक पुत्रसे यजन किया और उसके फलस्वरूप सौ पुत्र प्राप्त किये॥ १७२॥

ततः श्येनकपोतीयमुपाख्यानमनुत्तमम्।
इन्द्राग्नी यत्र धर्मस्य जिज्ञासार्थं शिबिं नृपम्॥ १७३॥

इसके बाद श्येन (बाज) और कपोत (कबूतर)-का सर्वोत्तम उपाख्यान है। इसमें इन्द्र और अग्नि राजा शिबिके धर्मकी परीक्षा लेनेके लिये आये हैं॥ १७३॥

अष्टावक्रीयमत्रैव विवादो यत्र बन्दिना।
अष्टावक्रस्य विप्रर्षेर्जनकस्याध्वरेऽभवत्॥ १७४॥
नैयायिकानां मुख्येन वरुणस्यात्मजेन च।
पराजितो यत्र बन्दी विवादेन महात्मना॥ १७५॥
विजित्य सागरं प्राप्तं पितरं लब्धवानृषिः।
यवक्रीतस्य चाख्यानं रैभ्यस्य च महात्मनः।
गन्धमादनयात्रा च वासो नारायणाश्रमे॥ १७६॥

इसी पर्वमें अष्टावक्रका चरित्र भी है। जिसमें बन्दीके साथ जनकके यज्ञमें ब्रह्मर्षि अष्टावक्रके शास्त्रार्थका वर्णन है। वह बन्दी वरुणका पुत्र था और नैयायिकोंमें प्रधान था। उसे महात्मा अष्टावक्रने वाद-विवादमें पराजित कर दिया। महर्षि अष्टावक्रने बन्दीको हराकर समुद्रमें डाले हुए अपने पिताको प्राप्त कर लिया। इसके बाद यवक्रीत और महात्मा रैभ्यका उपाख्यान है। तदनन्तर पाण्डवोंकी गन्धमादनयात्रा और नारायणाश्रममें निवासका वर्णन है॥ १७४—१७६॥

नियुक्तो भीमसेनश्च द्रौपद्या गन्धमादने।
व्रजन् पथि महाबाहुर्दृष्टवान् पवनात्मजम्॥ १७७॥
कदलीखण्डमध्यस्थं हनूमन्तं महाबलम्।
यत्र सौगन्धिकार्थेऽसौ नलिनीं तामधर्षयत्॥ १७८॥

द्रौपदीने सौगन्धिक कमल लानेके लिये भीमसेनको गन्धमादन पर्वतपर भेजा। यात्रा करते समय महाबाहु भीमसेनने मार्गमें कदलीवनमें महाबली पवननन्दन श्रीहनुमान्‌जीका दर्शन किया। यहीं सौगन्धिक कमलके लिये भीमसेनने सरोवरमें घुसकर उसे मथ डाला॥ १७७-१७८॥

यत्रास्य युद्धमभवत् सुमहद् राक्षसैः सह।
यक्षैश्चैव महावीर्यैर्मणिमत्प्रमुखैस्तथा॥ १७९॥

वहाँ भीमसेनका राक्षसों एवं महाशक्तिशाली मणिमान् आदि यक्षोंके साथ घमासान युद्ध हुआ॥ १७९॥

जटासुरस्य च वधो राक्षसस्य वृकोदरात्।
वृषपर्वणश्च राजर्षेस्ततोऽभिगमनं स्मृतम्॥ १८०॥
आर्ष्टिषेणाश्रमे चैषां गमनं वास एव च।
प्रोत्साहनं च पाञ्चाल्या भीमस्यात्र महात्मनः॥ १८१॥
कैलासारोहणं प्रोक्तं यत्र यक्षैर्बलोत्कटैः।
युद्धमासीन्महाघोरं मणिमत्प्रमुखैः सह॥ १८२॥

तत्पश्चात् भीमसेनके द्वारा जटासुर राक्षसका वध हुआ। फिर पाण्डव क्रमशः राजर्षि वृषपर्वा और आर्ष्टिषेणके आश्रमपर गये और वहीं रहने लगे। यहीं द्रौपदी महात्मा भीमसेनको प्रोत्साहित करती रही। भीमसेन कैलासपर्वतपर चढ़ गये। यहीं अपनी शक्तिके नशेमें चूर मणिमान् आदि यक्षोंके साथ उनका अत्यन्त घोर युद्ध हुआ॥ १८०—१८२॥

समागमश्च पाण्डूनां यत्र वैश्रवणेन च।
समागमश्चार्जुनस्य तत्रैव भ्रातृभिः सह॥ १८३॥

यहीं पाण्डवोंका कुबेरके साथ समागम हुआ। इस स्थानपर अर्जुन आकर अपने भाइयोंसे मिले॥ १८३॥

प्राप्य दिव्यान्यस्त्राणि गुर्वर्थं सव्यसाचिना।
निवातकवचैर्युद्धं हिरण्यपुरवासिभिः॥ १८४॥

इधर सव्यसाची अर्जुनने अपने बड़े भाईके लिये दिव्य अस्त्र प्राप्त कर लिये और हिरण्यपुरवासी निवातकवच दानवोंके साथ उनका घोर युद्ध हुआ॥ १८४॥

निवातकवचैर्घोरैर्दानवैः सुरशत्रुभिः।
पौलोमैः कालकेयैश्च यत्र युद्धं किरीटिनः॥ १८५॥
वधश्चैषां समाख्यातो राज्ञस्तेनैव धीमता।
अस्त्रसंदर्शनारम्भो धर्मराजस्य संनिधौ॥ १८६॥

वहाँ देवताओंके शत्रु भयंकर दानव निवातकवच, पौलोम और कालकेयोंके साथ अर्जुनने जैसा युद्ध किया तथा जिस प्रकार उन सबका वध हुआ था, वह सब बुद्धिमान् अर्जुनने स्वयं राजा युधिष्ठिरको सुनाया। इसके बाद अर्जुनने धर्मराज युधिष्ठिरके पास अपने अस्त्र-शस्त्रोंका प्रदर्शन करना चाहा॥ १८५-१८६॥

नृत्यस्य प्रतिषेधश्च नारदेन सुरर्षिणा।
अवरोहणं पुनश्चैव पाण्डूनां गन्धमादनात्॥ १८७॥

इसी समय देवर्षि नारदने आकर अर्जुनको अस्त्र-प्रदर्शनसे रोक दिया। अब पाण्डव गन्धमादन पर्वतसे नीचे उतरने लगे॥ १८७॥

भीमस्य ग्रहणं चात्र पर्वताभोगवर्ष्मणा।
भुजगेन्द्रेण बलिना तस्मिन् सुगहने वने॥ १८८॥

फिर एक बीहड़ वनमें पर्वतके समान विशाल शरीरधारी बलवान् अजगरने भीमसेनको पकड़ लिया॥ १८८॥

अमोक्षयद् यत्र चैनं प्रश्नानुक्त्वा युधिष्ठिरः।
काम्यकागमनं चैव पुनस्तेषां महात्मनाम्॥ १८९॥

धर्मराज युधिष्ठिरने अजगर-वेशधारी नहुषके प्रश्नोंका उत्तर देकर भीमसेनको छुड़ा लिया। इसके बाद महानुभाव पाण्डव पुनः काम्यकवनमें आये॥ १८९॥

तत्रस्थांश्च पुनर्द्रष्टुं पाण्डवान् पुरुषर्षभान्।
वासुदेवस्यागमनमत्रैव परिकीर्तितम्॥ १९०॥

जब नरपुंगव पाण्डव काम्यकवनमें निवास करने लगे, तब उनसे मिलनेके लिये वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण उनके पास आये—यह कथा इसी प्रसंगमें कही गयी है॥ १९०॥

मार्कण्डेयसमास्यायामुपाख्यानानि सर्वशः।
पृथोर्वैन्यस्य यत्रोक्तमाख्यानं परमर्षिणा॥ १९१॥

पाण्डवोंका महामुनि मार्कण्डेयके साथ समागम हुआ। वहाँ महर्षिने बहुत-से उपाख्यान सुनाये। उनमें वेनपुत्र पृथुका भी उपाख्यान है॥ १९१॥

संवादश्च सरस्वत्यास्तार्क्ष्यर्षेः सुमहात्मनः।
मत्स्योपाख्यानमत्रैव प्रोच्यते तदनन्तरम्॥ १९२॥

इसी प्रसंगमें प्रसिद्ध महात्मा महर्षि तार्क्ष्य और सरस्वतीका संवाद है। तदनन्तर मत्स्योपाख्यान भी कहा गया है॥ १९२॥

मार्कण्डेयसमास्या च पुराणं परिकीर्त्यते।
ऐन्द्रद्युम्नमुपाख्यानं धौन्धुमारं तथैव च॥ १९३॥

इसी मार्कण्डेय-समागममें पुराणोंकी अनेक कथाएँ, राजा इन्द्रद्युम्नका उपाख्यान तथा धुन्धुमारकी कथा भी है॥ १९३॥

पतिव्रतायाश्चाख्यानं तथैवाङ्गिरसं स्मृतम्।
द्रौपद्याः कीर्तितश्चात्र संवादः सत्यभामया॥ १९४॥

पतिव्रताका और आंगिरसका उपाख्यान भी इसी प्रसंगमें है। द्रौपदीका सत्यभामाके साथ संवाद भी इसीमें है॥ १९४॥

पुनर्द्वैतवनं चैव पाण्डवाः समुपागताः।
घोषयात्रा च गन्धर्वैर्यत्र बद्धः सुयोधनः॥ १९५॥

तदनन्तर धर्मात्मा पाण्डव पुनः द्वैतवनमें आये। कौरवोंने घोषयात्रा की और गन्धर्वोंने दुर्योधनको बन्दी बना लिया॥ १९५॥

ह्रियमाणस्तु मन्दात्मा मोक्षितोऽसौ किरीटिना।
धर्मराजस्य चात्रैव मृगस्वप्ननिदर्शनम्॥ १९६॥

वे मन्दमति दुर्योधनको कैद करके लिये जा रहे थे कि अर्जुनने युद्ध करके उसे छुड़ा लिया। इसके बाद धर्मराज युधिष्ठिरको स्वप्नमें हरिणके दर्शन हुए॥ १९६॥

काम्यके काननश्रेष्ठे पुनर्गमनमुच्यते।
व्रीहिद्रौणिकमाख्यानमत्रैव बहुविस्तरम्॥ १९७॥

इसके पश्चात् पाण्डवगण काम्यक नामक श्रेष्ठ वनमें फिरसे गये। इसी प्रसंगमें अत्यन्त विस्तारके साथ व्रीहिद्रौणिक उपाख्यान भी कहा गया है॥ १९७॥

दुर्वाससोऽप्युपाख्यानमत्रैव परिकीर्तितम्।
जयद्रथेनापहारो द्रौपद्याश्चाश्रमान्तरात्॥ १९८॥

इसीमें दुर्वासाजीका उपाख्यान और जयद्रथके द्वारा आश्रमसे द्रौपदीके हरणकी कथा भी कही गयी है॥ १९८॥

यत्रैनमन्वयाद् भीमो वायुवेगसमो जवे।
चक्रे चैनं पञ्चशिखं यत्र भीमो महाबलः॥ १९९॥

उस समय महाबली भयंकर भीमसेनने वायुवेगसे दौड़कर उसका पीछा किया था तथा जयद्रथके सिरके सारे बाल मूँड़कर उसमें पाँच चोटियाँ रख दी थीं॥ १९९॥

रामायणमुपाख्यानमत्रैव बहुविस्तरम्।
यत्र रामेण विक्रम्य निहतो रावणो युधि॥ २००॥

वनपर्वमें बड़े ही विस्तारके साथ रामायणका उपाख्यान है, जिसमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने युद्धभूमिमें अपने पराक्रमसे रावणका वध किया है॥ २००॥

सावित्र्याश्चाप्युपाख्यानमत्रैव परिकीर्तितम्।
कर्णस्य परिमोक्षोऽत्र कुण्डलाभ्यां पुरन्दरात्॥ २०१॥

इसके बाद ही सावित्रीका उपाख्यान और इन्द्रके द्वारा कर्णको कुण्डलोंसे वंचित कर देनेकी कथा है॥ २०१॥

यत्रास्य शक्तिं तुष्टोऽसावदादेकवधाय च।
आरणेयमुपाख्यानं यत्र धर्मोऽन्वशात् सुतम्॥ २०२॥

इसी प्रसंगमें इन्द्रने प्रसन्न होकर कर्णको एक शक्ति दी थी, जिससे कोई भी एक वीर मारा जा सकता था। इसके बाद है आरणेय उपाख्यान, जिसमें धर्मराजने अपने पुत्र युधिष्ठिरको शिक्षा दी है॥ २०२॥

जग्मुर्लब्धवरा यत्र पाण्डवाः पश्चिमां दिशम्।
एतदारण्यकं पर्व तृतीयं परिकीर्तितम्॥ २०३॥
अत्राध्यायशते द्वे तु संख्यया परिकीर्तिते।
एकोनसप्ततिश्चैव तथाध्यायाः प्रकीर्तिताः॥ २०४॥

और उनसे वरदान प्राप्तकर पाण्डवोंने पश्चिम दिशाकी यात्रा की। यह तीसरे वनपर्वकी सूची कही गयी। इस पर्वमें गिनकर दो सौ उनहत्तर (२६९) अध्याय कहे गये हैं॥ २०३-२०४॥

एकादशसहस्राणि श्लोकानां षट् शतानि च।
चतुःषष्टिस्तथाश्लोकाः पर्वण्यस्मिन् प्रकीर्तिताः॥ २०५॥

ग्यारह हजार छः सौ चौंसठ (११,६६४) श्लोक इस पर्वमें हैं॥ २०५॥

अतः परं निबोधेदं वैराटं पर्व विस्तरम्।
विराटनगरे गत्वा श्मशाने विपुलां शमीम्॥ २०६॥
दृष्ट्वा संनिदधुस्तत्र पाण्डवा ह्यायुधान्युत।
यत्र प्रविश्य नगरं छद्मना न्यवसंस्तु ते॥ २०७॥

इसके बाद विराटपर्वकी विस्तृत सूची सुनो। पाण्डवोंने विराटनगरमें जाकर श्मशानके पास एक विशाल शमीका वृक्ष देखा। उसीपर उन्होंने अपने सारे अस्त्र-शस्त्र रख दिये। तदनन्तर उन्होंने नगरमें प्रवेश किया और छद्मवेशमें वहाँ निवास करने लगे॥ २०६-२०७॥

पाञ्चालीं प्रार्थयानस्य कामोपहतचेतसः।
दुष्टात्मनो वधो यत्र कीचकस्य वृकोदरात्॥ २०८॥

कीचक स्वभावसे ही दुष्ट था। द्रौपदीको देखते ही उसका मन कामबाणसे घायल हो गया। वह द्रौपदीके पीछे पड़ गया। इसी अपराधसे भीमसेनने उसे मार डाला। यह कथा इसी पर्वमें है॥ २०८॥

पाण्डवान्वेषणार्थं च राज्ञो दुर्योधनस्य च।
चाराः प्रस्थापिताश्चात्र निपुणाः सर्वतोदिशम्॥ २०९॥

राजा दुर्योधनने पाण्डवोंका पता चलानेके लिये बहुत-से निपुण गुप्तचर सब ओर भेजे॥ २०९॥

न च प्रवृत्तिस्तैर्लब्धा पाण्डवानां महात्मनाम्।
गोग्रहश्च विराटस्य त्रिगर्तैः प्रथमं कृतः॥ २१०॥

परंतु उन्हें महात्मा पाण्डवोंकी गतिविधिका कोई हालचाल न मिला। इन्हीं दिनों त्रिगर्तोंने राजा विराटकी गौओंका प्रथम बार अपहरण कर लिया॥ २१०॥

यत्रास्य युद्धं सुमहत् तैरासील्लोमहर्षणम्।
ह्रियमाणश्च यत्रासौ भीमसेनेन मोक्षितः॥ २११॥

राजा विराटने त्रिगर्तोंके साथ रोंगटे खड़े कर देनेवाला घमासान युद्ध किया। त्रिगर्त विराटको पकड़कर लिये जा रहे थे; किंतु भीमसेनने उन्हें छुड़ा लिया॥ २११॥

गोधनं च विराटस्य मोक्षितं यत्र पाण्डवैः।
अनन्तरं च कुरुभिस्तस्य गोग्रहणं कृतम्॥ २१२॥

साथ ही पाण्डवोंने उनके गोधनको भी त्रिगर्तोंसे छुड़ा लिया। इसके बाद ही कौरवोंने विराटनगरपर चढ़ाई करके उनकी (उत्तर दिशाकी) गायोंको लूटना प्रारम्भ कर दिया॥ २१२॥

समस्ता यत्र पार्थेन निर्जिताः कुरवो युधि।
प्रत्याहृतं गोधनं च विक्रमेण किरीटिना॥ २१३॥

इसी अवसरपर किरीटधारी अर्जुनने अपना पराक्रम प्रकट करके संग्रामभूमिमें सम्पूर्ण कौरवोंको पराजित कर दिया और विराटके गोधनको लौटा लिया॥ २१३॥

विराटेनोत्तरा दत्ता स्नुषा यत्र किरीटिनः।
अभिमन्युं समुद्दिश्य सौभद्रमरिघातिनम्॥ २१४॥

(पाण्डवोंके पहचाने जानेपर) राजा विराटने अपनी पुत्री उत्तरा शत्रुघाती सुभद्रानन्दन अभिमन्युसे विवाह करनेके लिये पुत्रवधूके रूपमें अर्जुनको दे दी॥ २१४॥

चतुर्थमेतद् विपुलं वैराटं पर्व वर्णितम्।
अत्रापि परिसंख्याता अध्यायाः परमर्षिणा॥ २१५॥

सप्तषष्टिरथो पूर्णा श्लोकानामपि मे शृणु।
श्लोकानां द्वे सहस्रे तु श्लोकाः पञ्चाशदेव तु॥ २१६॥
उक्तानि वेदविदुषा पर्वण्यस्मिन् महर्षिणा।
उद्योगपर्व विज्ञेयं पञ्चमं शृण्वतः परम्॥ २१७॥

इस प्रकार इस चौथे विराटपर्वकी सूचीका विस्तारपूर्वक ज्ञान किया गया। परमर्षि व्यासजी महाराजने इस पर्वमें गिनकर सड़सठ (६७) अध्याय रखे हैं। अब तुम इसके श्लोकोंकी संख्या सुनो। इस पर्वमें दो हजार पचास (२,०५०) श्लोक वेदवेत्ता महर्षि वेदव्यासने कहे हैं। इसके बाद पाँचवाँ उद्योगपर्व समझना चाहिये। अब तुम उसकी विषय-सूची सुनो॥ २१५—२१७॥

उपप्लव्ये निविष्टेषु पाण्डवेषु जिगीषया।
दुर्योधनोऽर्जुनश्चैव वासुदेवमुपस्थितौ॥ २१८॥

जब पाण्डव उपप्लव्यनगरमें रहने लगे, तब दुर्योधन और अर्जुन विजयकी आकांक्षासे भगवान् श्रीकृष्णके पास उपस्थित हुए॥ २१८॥

साह्यमस्मिन् समरे भवान् नौ कर्तुमर्हति।
इत्युक्ते वचने कृष्णो यत्रोवाच महामतिः॥ २१९॥

दोनोंने ही भगवान् श्रीकृष्णसे प्रार्थना की कि 'आप इस युद्धमें हमारी सहायता कीजिये।' इसपर उन्होंने श्रीकृष्णने कहा—॥ २१९॥

उभयोर्युध्यमानमात्मानं मन्त्रिणं पुरुषर्षभौ।
अक्षौहिणीं वा सैन्यस्य कस्य किं वा ददाम्यहम्॥ २२०॥

'दुर्योधन और अर्जुन! तुम दोनों ही श्रेष्ठ पुरुष हो। मैं स्वयं युद्ध न करके एकका मन्त्री बन जाऊँगा और दूसरेको एक अक्षौहिणी सेना दे दूँगा। अब तुम्हीं दोनों निश्चय करो कि किसे क्या दूँ?'॥ २२०॥

तत्र दुर्योधनः सैन्यं मन्दात्मा यत्र दुर्मतिः।
उभयमानं सचिवं वव्रे कृष्णं धनञ्जयः॥ २२१॥

अपने स्वार्थके सम्बन्धमें अनजान एवं खोटी बुद्धिवाले दुर्योधनने एक अक्षौहिणी सेना माँग ली और अर्जुनने यह माँग की कि 'श्रीकृष्ण युद्ध भले ही न करें, वे मेरे मन्त्री बन जायँ'॥ २२१॥

उपप्लव्यं च राजानमायान्तं पाण्डवान् प्रति।
सत्कारैर्वञ्चयित्वा वर्त्मन्येव सुयोधनः॥ २२२॥
वव्रे तं वरं वव्रे साहाय्यं क्रियतां मम।
प्रत्यस्तस्मै प्रतिश्रुत्य जगामोद्दिश्य पाण्डवान्॥ २२३॥
तत्रापूर्वं चाकथयद् यत्रेन्द्रविजयं नृपः।
दूतहितप्रेषणं च पाण्डवैः कौरवान् प्रति॥ २२४॥

मद्रदेशके अधिपति राजा शल्य पाण्डवोंकी ओरसे युद्ध करने आ रहे थे, परंतु दुर्योधनने मार्गमें ही उपहारोंसे धोखेमें डालकर उन्हें प्रसन्न कर लिया और उन वरदायक नरेशसे यह वर माँगा कि 'मेरी सहायता कीजिये।' शल्यने दुर्योधनसे सहायताकी प्रतिज्ञा कर ली। इसके बाद वे पाण्डवोंके पास गये और बड़ी शान्तिके साथ सब कुछ समझा-बुझाकर सब बात कह दी। राजाने इसी प्रसंगमें इन्द्रकी विजयकी कथा भी सुनायी। पाण्डवोंने अपने पुरोहितको कौरवोंके पास भेजा॥ २२२—२२४॥

वैचित्रवीर्यस्य वचः समादाय पुरोधसः।
तथेन्द्रविजयं चापि यानं चैव पुरोधसः॥ २२५॥
संजयं प्रेषयामास शमार्थी पाण्डवान् प्रति।
यत्र दूतं महाराजो धृतराष्ट्रः प्रतापवान्॥ २२६॥

धृतराष्ट्रने पाण्डवोंके पुरोहितके इन्द्रविजयविषयक वचनको सादर श्रवण करते हुए उनके आगमनके औचित्यको स्वीकार किया। तत्पश्चात् परम प्रतापी महाराज धृतराष्ट्रने भी शान्तिकी इच्छासे दूतके रूपमें संजयको पाण्डवोंके पास भेजा॥ २२५-२२६॥

श्रुत्वा च पाण्डवान् यत्र वासुदेवपुरोगमान्।
प्रजागरः सम्प्रजज्ञे धृतराष्ट्रस्य चिन्तया॥ २२७॥
विदुरो यत्र वाक्यानि विचित्राणि हितानि च।
श्रावयामास राजानं धृतराष्ट्रं मनीषिणम्॥ २२८॥

जब धृतराष्ट्रने सुना कि पाण्डवोंने श्रीकृष्णको अपना नेता चुन लिया है और वे उन्हें आगे करके युद्धके लिये प्रस्थान कर रहे हैं, तब चिन्ताके कारण उनकी नींद भाग गयी—वे रातभर जागते रह गये। उस समय महात्मा विदुरने मनीषी राजा धृतराष्ट्रको विविध प्रकारसे अत्यन्त आश्चर्यजनक नीतिका उपदेश किया है (वही विदुरनीतिके नामसे प्रसिद्ध है)॥ २२७-२२८॥

तथा सनत्सुजातेन यत्राध्यात्ममनुत्तमम्।
मनस्तापान्वितो राजा श्रावितः शोकलालसः॥ २२९॥

उसी समय महर्षि सनत्सुजातने खिन्नचित्त एवं शोकविह्वल राजा धृतराष्ट्रको सर्वोत्तम अध्यात्मशास्त्रका श्रवण कराया॥ २२९॥

प्रभाते राजसमितौ संजयो यत्र वा विभोः।
ऐकात्म्यं वासुदेवस्य प्रोक्तवानर्जुनस्य च॥ २३०॥

प्रातःकाल राजसभामें संजयने राजा धृतराष्ट्रसे श्रीकृष्ण और अर्जुनके ऐकात्म्य अथवा मित्रताका भलीभाँति वर्णन किया॥ २३०॥

यत्र कृष्णो दयापन्नः संधिमिच्छन् महामतिः।
स्वयमागाच्छमं कर्तुं नगरं नागसाह्वयम्॥ २३१॥

इसी प्रसंगमें यह कथा भी है कि परम दयालु सर्वज्ञ भगवान् श्रीकृष्ण दया-भावसे युक्त हो शान्ति-स्थापनके लिये सन्धि करानेके उद्देश्यसे स्वयं हस्तिनापुर नामक नगरमें पधारे॥ २३१॥

प्रत्याख्यानं च कृष्णस्य राज्ञा दुर्योधनेन वै।
शमार्थे याचमानस्य पक्षयोरुभयोर्हितम्॥ २३२॥

यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण दोनों ही पक्षोंका हित चाहते थे और शान्तिके लिये प्रार्थना कर रहे थे, परंतु राजा दुर्योधनने उनका विरोध कर दिया॥ २३२॥

दम्भोद्भवस्य चाख्यानमत्रैव परिकीर्तितम्।
वरान्वेषणमत्रैव मातलेश्च महात्मनः॥ २३३॥

इसी पर्वमें दम्भोद्भवकी कथा कही गयी है और साथ ही महात्मा मातलिका अपनी कन्याके लिये वर ढूँढ़नेका प्रसंग भी है॥ २३३॥

महर्षेश्चापि चरितं कथितं गालवस्य वै।
विदुलायाश्च पुत्रस्य प्रोक्तं चाप्यनुशासनम्॥ २३४॥

इसके बाद महर्षि गालवके चरित्रका वर्णन है। साथ ही विदुलाने अपने पुत्रको जो शिक्षा दी है, वह भी कही गयी है॥ २३४॥

कर्णदुर्योधनादीनां दुष्टं विज्ञाय मन्त्रितम्।
योगेश्वरत्वं कृष्णेन यत्र राज्ञां प्रदर्शितम्॥ २३५॥

भगवान् श्रीकृष्णने कर्ण और दुर्योधन आदिकी दूषित मन्त्रणाको जानकर राजाओंकी भरी सभामें अपने योगैश्वर्यका प्रदर्शन किया॥ २३५॥

रथमारोप्य कृष्णेन यत्र कर्णोऽनुमन्त्रितः।
उपायपूर्वं शौटीर्यात् प्रत्याख्यातश्च तेन सः॥ २३६॥

भगवान् श्रीकृष्णने कर्णको अपने रथपर बैठाकर उसे (पाण्डवोंके पक्षमें आनेके लिये) अनेक युक्तियोंसे बहुत समझाया-बुझाया, परंतु कर्णने अहंकारवश उनकी बात अस्वीकार कर दी॥ २३६॥

आगम्य ह्यस्तिनपुरादुपप्लव्यमरिन्दमः।
पाण्डवानां यथावृत्तं सर्वमाख्यातवान् हरिः॥ २३७॥

शत्रुसूदन श्रीकृष्णने हस्तिनापुरसे उपप्लव्यनगर आकर जैसा कुछ वहाँ हुआ था, सब पाण्डवोंको कह सुनाया॥ २३७॥

ते तस्य वचनं श्रुत्वा मन्त्रयित्वा च यद्धितम्।
सांग्रामिकं ततः सर्वं सज्जं चक्रुः परंतपाः॥ २३८॥

शत्रुघाती पाण्डव उनके वचन सुनकर और क्या करनेमें हमारा हित है—यह परामर्श करके युद्ध-सम्बन्धी सब सामग्री जुटानेमें लग गये॥ २३८॥

ततो युद्धाय निर्याता नराश्वरथदन्तिनः।
नगराद्धास्तिनपुराद् बलसंख्यानमेव च॥ २३९॥

इसके पश्चात् हस्तिनापुर नामक नगरसे युद्धके लिये मनुष्य, घोड़े, रथ और हाथियोंकी चतुरंगिणी सेनाने कूच किया। इसी प्रसंगमें सेनाकी गिनती की गयी है॥ २३९॥

यत्र राज्ञा ह्युलूकस्य प्रेषणं पाण्डवान् प्रति।
श्वोभाविनि महायुद्धे दौत्येन कृतवान् प्रभुः॥ २४०॥

फिर यह कहा गया है कि शक्तिशाली राजा दुर्योधनने दूसरे दिन प्रातःकालसे होनेवाले महायुद्धके सम्बन्धमें उलूकको दूत बनाकर पाण्डवोंके पास भेजा॥ २४०॥

रथातिरथसंख्यानमम्बोपाख्यानमेव च।
एतत् सुबहुवृत्तान्तं पञ्चमं पर्व भारते॥ २४१॥

इसके अनन्तर इस पर्वमें रथी, अतिरथी आदिके स्वरूपका वर्णन तथा अम्बाका उपाख्यान आता है। इस प्रकार महाभारतमें उद्योगपर्व पाँचवाँ पर्व है और इसमें बहुत-से सुन्दर-सुन्दर वृत्तान्त हैं॥ २४१॥

उद्योगपर्व निर्दिष्टं संधिविग्रहमिश्रितम्।
अध्यायानां शतं प्रोक्तं षडशीतिर्महर्षिणा॥ २४२॥
श्लोकानां षट्सहस्राणि तावन्त्येव शतानि च।
श्लोकाश्च नवतिः प्रोक्तास्तथैवाष्टौ महात्मना॥ २४३॥
व्यासेनोदारमतिना पर्वण्यस्मिंस्तपोधनाः।

इस उद्योगपर्वमें श्रीकृष्णके द्वारा सन्धि-संदेश और उलूकके विग्रह-संदेशका महत्त्वपूर्ण वर्णन हुआ है। तपोधन महर्षियो! विशालबुद्धि महर्षि व्यासने इस पर्वमें एक सौ छियासी (१८६) अध्याय रखे हैं और श्लोकोंकी संख्या छः हजार छः सौ अट्ठानबे (६,६९८) बतायी है॥ २४२-२४३½॥

अतः परं विचित्रार्थं भीष्मपर्व प्रचक्षते॥ २४४॥
जम्बूखण्डविनिर्माणं यत्रोक्तं संजयेन ह।
यत्र यौधिष्ठिरं सैन्यं विषादमगमत् परम्॥ २४५॥
यत्र युद्धमभूद् घोरं दशाहानि सुदारुणम्।
कश्मलं यत्र पार्थस्य वासुदेवो महामतिः॥ २४६॥
मोहजं नाशयामास हेतुभिर्मोक्षदर्शिभिः।
समीक्ष्याधोक्षजः क्षिप्रं युधिष्ठिरहिते रतः॥ २४७॥
रथादाप्लुत्य वेगेन स्वयं कृष्ण उदारधीः।
प्रतोदपाणिराधावद् भीष्मं हन्तुं व्यपेतभीः॥ २४८॥

इसके बाद विचित्र अर्थोंसे भरे भीष्मपर्वकी विषय-सूची कही जाती है, जिसमें संजयने जम्बूद्वीपकी रचनासम्बन्धी कथा कही है। इस पर्वमें दस दिनोंतक अत्यन्त भयंकर घोर युद्ध होनेका वर्णन आता है, जिसमें धर्मराज युधिष्ठिरकी सेनाके अत्यन्त दुःखी होनेकी कथा है। इसी युद्धके प्रारम्भमें महातेजस्वी भगवान् वासुदेवने मोक्षतत्त्वका ज्ञान करानेवाली युक्तियोंद्वारा अर्जुनके मोहजनित शोक-संतापका नाश किया था (जो श्रीमद्भगवद्गीताके नामसे प्रसिद्ध है)। इसी पर्वमें यह कथा भी है कि युधिष्ठिरके हितमें संलग्न रहनेवाले विजय, उदारबुद्धि, अधोक्षज, भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनकी शिथिलता देख शीघ्र ही हाथमें चाबुक लेकर भीष्मको मारनेके लिये स्वयं रथसे कूद पड़े और बड़े वेगसे दौड़े॥ २४४—२४८॥

वाक्यप्रतोदाभिहतो यत्र कृष्णेन पाण्डवः।
गाण्डीवधन्वा समरे सर्वशस्त्रभृतां वरः॥ २४९॥

साथ ही सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ गाण्डीवधन्वा अर्जुनको युद्धभूमिमें भगवान् श्रीकृष्णने व्यंग्य-वाक्यके चाबुकसे मार्मिक चोट पहुँचायी॥ २४९॥

शिखण्डिनं पुरस्कृत्य यत्र पार्थो महाधनुः।
जघ्निवान् निशितैर्बाणै रथाद् भीष्ममपातयत्॥ २५०॥

तब महाधनुर्धर अर्जुनने शिखण्डीको सामने करके तीखे बाणोंसे घायल करते हुए भीष्मपितामहको रथसे गिरा दिया॥ २५०॥

शरतल्पगतश्चैव भीष्मो यत्र बभूव ह।
इदमेतत् समाख्यातं भारते पर्व विस्तृतम्॥ २५१॥

जबकि भीष्मपितामह शरशय्यापर शयन करने लगे। महाभारतमें यह छठा पर्व विस्तारपूर्वक कहा गया है॥ २५१॥

अध्यायानां शतं प्रोक्तं तथा सप्तदशापरे।
पर्व श्लोकसहस्राणि संख्ययाष्टौ शतानि च॥ २५२॥
श्लोकाश्च चतुराशीतिरस्मिन् पर्वणि कीर्तिताः।
कविना वेदविदुषा संख्याता भीष्मपर्वणि॥ २५३॥

वेदके मर्मज्ञ विद्वान् श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासने इस पर्वमें एक सौ सत्रह (११७) अध्याय रखे हैं। श्लोकोंकी संख्या पाँच हजार आठ सौ चौरासी (५,८८४) बतायी है॥ २५२-२५३॥

इदं पर्व ननश्चित्रं बहुवृत्तान्तमुच्यते।
अभिषिक्तोऽथ यत्राचार्यः प्रतापवान्॥ २५४॥

तदनन्तर अनेक वृत्तान्तोंसे पूर्ण अद्भुत द्रोणपर्वकी कथा आरम्भ होती है, जिसमें परम प्रतापी आचार्य द्रोणके सेनापतिपदपर अभिषिक्त होनेका वर्णन है॥ २५४॥

दुर्योधनस्य प्रीत्यर्थं प्रतिजज्ञे महास्त्रवित्।
ग्रहणं धर्मराजस्य पाण्डुपुत्रस्य धीमतः॥ २५५॥

वहीं यह भी कहा गया है कि अस्त्रविद्याके परमाचार्य द्रोणने दुर्योधनको प्रसन्न करनेके लिये बुद्धिमान् धर्मराज युधिष्ठिरको पकड़नेकी प्रतिज्ञा कर ली॥ २५५॥

यत्र संशप्तकाः पार्थमपनिन्यू रणाजिरात्।
भगदत्तो महाराजो यत्र शक्रसमो युधि॥ २५६॥
सुप्रतीकेन नागेन स हि शान्तः किरीटिना।

इसी पर्वमें यह बताया गया है कि संशप्तक योद्धा अर्जुनको रणांगणसे दूर हटा ले गये। वहीं यह कथा भी आयी है कि ऐरावतवंशीय सुप्रतीक नामक हाथीके साथ महाराज भगदत्त भी, जो युद्धमें इन्द्रके समान थे, किरीटधारी अर्जुनके द्वारा मौतके घाट उतार दिये गये॥ २५६½॥

यत्राभिमन्युं बहवो जघ्नुरेकं महारथाः॥ २५७॥
जयद्रथमुखा बालं शूरमप्राप्तयौवनम्।

इसी पर्वमें यह भी कहा गया है कि शूरवीर बालक अभिमन्युको, जो अभी जवान भी नहीं हुआ था और अकेला था, जयद्रथ आदि बहुत-से विश्वविख्यात महारथियोंने मार डाला॥ २५७½॥

हतेऽभिमन्यौ क्रुद्धेन यत्र पार्थेन संयुगे॥ २५८॥
अक्षौहिणीः सप्त हत्वा हतो राजा जयद्रथः।

अभिमन्युके वधसे कुपित होकर अर्जुनने रणभूमिमें सात अक्षौहिणी सेनाओंका संहार करके राजा जयद्रथको भी मार डाला॥ २५८½॥

यत्र भीमो महाबाहुः सात्यकिश्च महारथः॥ २५९॥
अन्वेषणार्थं पार्थस्य युधिष्ठिरनृपाज्ञया।
प्रविष्टौ भारतीं सेनामप्रधृष्यां सुरैरपि॥ २६०॥

उसी अवसरपर महाबाहु भीमसेन और महारथी सात्यकि धर्मराज युधिष्ठिरकी आज्ञासे अर्जुनको ढूँढ़नेके लिये कौरवोंकी उस सेनामें घुस गये, जिसकी मोर्चेबन्दी बड़े-बड़े देवता भी नहीं तोड़ सकते थे॥ २५९-२६०॥

संशप्तकावशेषं च कृतं निःशेषमाहवे।
संशप्तकानां वीराणां कोट्यो नव महात्मनाम्॥ २६१॥
किरीटिनाभिनिष्क्रम्य प्रापिता यमसादनम्।
धृतराष्ट्रस्य पुत्राश्च तथा पाषाणयोधिनः॥ २६२॥

नारायणाश्च गोपालाः समरे चित्रयोधिनः।
अलम्बुषः श्रुतायुश्च जलसन्धश्च वीर्यवान्॥ २६३॥
सौमदत्तिर्विराटश्च द्रुपदश्च महारथः।
घटोत्कचादयश्चान्ये निहता द्रोणपर्वणि॥ २६४॥

अर्जुनने संशप्तकोंमेंसे जो बच रहे थे, उन्हें भी युद्धभूमिमें निःशेष कर दिया। महामना संशप्तक वीरोंकी संख्या नौ करोड़ थी; परंतु किरीटधारी अर्जुनने आक्रमण करके अकेले ही उन सबको यमलोक भेज दिया। धृतराष्ट्रपुत्र, बड़े-बड़े पाषाणखण्ड लेकर युद्ध करनेवाले म्लेच्छ-सैनिक, समरांगणमें युद्धके विचित्र कला-कौशलका परिचय देनेवाले नारायण नामक गोप, अलम्बुष, श्रुतायु, पराक्रमी जलसन्ध, भूरिश्रवा, विराट, महारथी द्रुपद तथा घटोत्कच आदि जो बड़े-बड़े वीर मारे गये हैं, वह प्रसंग भी इसी पर्वमें है॥ २६१—२६४॥

अश्वत्थामापि चात्रैव द्रोणे युधि निपातिते।
अस्त्रं प्रादुश्चकारोग्रं नारायणममर्षितः॥ २६५॥

इसी पर्वमें यह बात भी आयी है कि युद्धमें जब पिता द्रोणाचार्य मार गिराये गये, तब अश्वत्थामाने भी शत्रुओंके प्रति अमर्षमें भरकर 'नारायण' नामक भयानक अस्त्रको प्रकट किया था॥ २६५॥

आग्नेयं कीर्त्यते यत्र रुद्रमाहात्म्यमुत्तमम्।
व्यासस्य चाप्यागमनं माहात्म्यं कृष्णपार्थयोः॥ २६६॥

इसीमें आग्नेयास्त्र तथा भगवान् रुद्रके उत्तम माहात्म्यका वर्णन किया गया है। व्यासजीके आगमन तथा श्रीकृष्ण और अर्जुनके माहात्म्यकी कथा भी इसीमें है॥ २६६॥

सप्तमं भारते पर्व महदेतदुदाहृतम्।
यत्र ते पृथिवीपालाः प्रायशो निधनं गताः॥ २६७॥
द्रोणपर्वणि ये शूरा निर्दिष्टाः पुरुषर्षभाः।
अत्राध्यायशतं प्रोक्तं तथाध्यायाश्च सप्ततिः॥ २६८॥
अष्टौ श्लोकसहस्राणि तथा नव शतानि च।
श्लोका नव तथैवात्र संख्यातास्तत्त्वदर्शिना॥ २६९॥
पाराशर्येण मुनिना संचिन्त्य द्रोणपर्वणि।

महाभारतमें यह सातवाँ महान् पर्व बताया गया है। कौरव-पाण्डवयुद्धमें जो नरश्रेष्ठ नरेश शूरवीर बताये गये हैं, उनमेंसे अधिकांशके मारे जानेका प्रसंग इस द्रोणपर्वमें ही आया है। तत्त्वदर्शी पराशरनन्दन मुनिवर व्यासने भलीभाँति सोच-विचारकर द्रोणपर्वमें एक सौ सत्तर (१७०) अध्यायों और आठ हजार नौ सौ नौ (८,९०९) श्लोकोंकी रचना एवं गणना की है॥ २६७—२६९½॥

अतः परं कर्णपर्व प्रोच्यते परमाद्भुतम्॥ २७०॥
सारथ्ये विनियोगश्च मद्रराजस्य धीमतः।
आख्यातं यत्र पौराणं त्रिपुरस्य निपातनम्॥ २७१॥

इसके बाद अत्यन्त अद्भुत कर्णपर्वका परिचय दिया गया है। इसीमें परम बुद्धिमान् मद्रराज शल्यको कर्णके सारथि बनानेका प्रसंग है, फिर त्रिपुरके संहारकी पुराणप्रसिद्ध कथा आयी है॥ २७०-२७१॥

प्रयाणे पुरुषश्चात्र संवादः कर्णशल्ययोः।
हंसकाकीयमाख्यानं तत्रैवाक्षेपसंहितम्॥ २७२॥

युद्धके लिये जाते समय कर्ण और शल्यमें जो कठोर संवाद हुआ है, उसका वर्णन भी इसी पर्वमें है। तदनन्तर हंस और कौएका आक्षेपपूर्ण उपाख्यान है॥ २७२॥

वधः पाण्ड्यस्य च तथा अश्वत्थाम्ना महात्मना।
दण्डसेनस्य च ततो दण्डस्य च वधस्तथा॥ २७३॥

उसके बाद महात्मा अश्वत्थामाके द्वारा राजा पाण्ड्यके वधकी कथा है। फिर दण्डसेन और दण्डके वधका प्रसंग है॥ २७३॥

द्वैरथे यत्र कर्णेन धर्मराजो युधिष्ठिरः।
संशयं गमितो युद्धे मिषतां सर्वधन्विनाम्॥ २७४॥

इसी पर्वमें कर्णके साथ युधिष्ठिरके द्वैरथ (द्वन्द्व) युद्धका वर्णन है, जिसमें कर्णने सब धनुर्धर वीरोंके देखते-देखते धर्मराज युधिष्ठिरके प्राणोंको संकटमें डाल दिया था॥ २७४॥

अन्योन्यं प्रति च क्रोधो युधिष्ठिरकिरीटिनोः।
यत्रैवानुनयः प्रोक्तो माधवेनार्जुनस्य हि॥ २७५॥

तत्पश्चात् युधिष्ठिर और अर्जुनके एक-दूसरेके प्रति क्रोधयुक्त उद्गार हैं, जहाँ भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको समझा-बुझाकर शान्त किया है॥ २७५॥

प्रतिज्ञापूर्वकं चापि वक्षो दुःशासनस्य च।
भित्त्वा वृकोदरो रक्तं पीतवान् यत्र संयुगे॥ २७६॥

इसी पर्वमें यह बात भी आयी है कि भीमसेनने पहलेकी की हुई प्रतिज्ञाके अनुसार दुःशासनका वक्षःस्थल विदीर्ण करके रक्त पीया था॥ २७६॥

द्वैरथे यत्र पार्थेन हतः कर्णो महारथः।
अष्टमं पर्व निर्दिष्टमेतद् भारतचिन्तकैः॥ २७७॥

तदनन्तर द्वन्द्वयुद्धमें अर्जुनने महारथी कर्णको जो मार गिराया, वह प्रसंग भी कर्णपर्वमें ही है। महाभारतका विचार करनेवाले विद्वानोंने इस कर्णपर्वको आठवाँ पर्व कहा है॥ २७७॥

एकोनसप्ततिः प्रोक्ता अध्यायाः कर्णपर्वणि।
चत्वार्येव सहस्राणि नव श्लोकशतानि च ॥ २७८ ॥
चतुःषष्टिस्तथा श्लोकाः पर्वण्यस्मिन् प्रकीर्तिताः।

कर्णपर्वमें उनहत्तर (६९) अध्याय कहे गये हैं और चार हजार नौ सौ चौंसठ (४,९६४) श्लोकोंका पाठ इस पर्वमें किया गया है॥ २७८ ½ ॥

अतः परं विचित्रार्थं शल्यपर्व प्रकीर्तितम्॥ २७९ ॥

तत्पश्चात् विचित्र अर्थयुक्त विषयोंसे भरा हुआ शल्यपर्व कहा गया है॥ २७९ ॥

हतप्रवीरे सैन्ये तु नेता मद्रेश्वरोऽभवत्।
यत्र कौमारमाख्यानमभिषेकस्य कर्म च॥ २८० ॥

इसीमें यह कथा आयी है कि जब कौरवसेनाके सभी प्रमुख वीर मार दिये गये, तब मद्रराज शल्य सेनापति हुए। वहीं कुमार कार्तिकेयका उपाख्यान और अभिषेककर्म कहा गया है॥ २८० ॥

वृत्तानि रथयुद्धानि कीर्त्यन्ते यत्र भागशः।
विनाशः कुरुमुख्यानां शल्यपर्वणि कीर्त्यते॥ २८१ ॥
शल्यस्य निधनं चात्र धर्मराजान्महात्मनः।
शकुनेश्च वधोऽत्रैव सहदेवेन संयुगे॥ २८२ ॥

साथ ही वहाँ रथियोंके युद्धका भी विभागपूर्वक वर्णन किया गया है। शल्यपर्वमें ही कुरुकुलके प्रमुख वीरोंके विनाशका तथा महात्मा धर्मराजद्वारा शल्यके वधका वर्णन किया गया है। इसीमें सहदेवके द्वारा युद्धमें शकुनिके मारे जानेका प्रसंग है॥ २८१-२८२ ॥

सैन्ये च हतभूयिष्ठे किंचिच्छिष्टे सुयोधनः।
ह्रदं प्रविश्य यत्रासौ संस्तभ्यापो व्यवस्थितः॥ २८३ ॥

जब अधिक-से-अधिक कौरवसेना नष्ट हो गयी और थोड़ी-सी बच रही, तब दुर्योधन सरोवरमें प्रवेश करके पानीको स्तम्भित कर वहीं विश्रामके लिये रुक गया॥ २८३ ॥

व्यावृत्तिस्तत्र चाख्याता यत्र भीमस्य लुब्धकैः।
क्षेपयुक्तैर्वचोभिश्च धर्मराजस्य धीमतः॥ २८४ ॥
ह्रदात् समुत्थितो यत्र धार्तराष्ट्रोऽत्यमर्षणः।
भीमेन गदया युद्धं यत्रासौ कृतवान् सह॥ २८५ ॥

किंतु व्याधोंने भीमसेनसे दुर्योधनकी यह चेष्टा बता दी। तब बुद्धिमान् धर्मराजके आक्षेपयुक्त वचनोंसे अत्यन्त अमर्षमें भरकर धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन सरोवरसे बाहर निकला और उसने भीमसेनके साथ गदायुद्ध किया—ये सब प्रसंग शल्यपर्वमें ही हैं॥ २८४-२८५ ॥

समवाये च युद्धस्य रामस्यागमनं स्मृतम्।
सरस्वत्याश्च तीर्थानां पुण्यता परिकीर्तिता॥ २८६ ॥
गदायुद्धं च तुमुलमत्रैव परिकीर्तितम्।

उसीमें युद्धके समय बलरामजीके आगमनकी बात कही गयी है। इसी प्रसंगमें सरस्वतीतटवर्ती तीर्थोंके पावन माहात्म्यका परिचय दिया गया है। शल्यपर्वमें ही भयंकर गदायुद्धका वर्णन किया गया है॥ २८६ ½ ॥

दुर्योधनस्य राज्ञोऽथ यत्र भीमेन संयुगे॥ २८७ ॥
ऊरू भग्नौ प्रसह्याजौ गदया भीमवेगया।
नवमं पर्व निर्दिष्टमेतदद्भुतमर्थवत्॥ २८८ ॥

जिसमें युद्ध करते समय भीमसेनने हठपूर्वक (युद्धके नियमको भंग करके) अपनी भयानक वेग-शालिनी गदासे राजा दुर्योधनकी दोनों जाँघें तोड़ डालीं, यह अद्भुत अर्थसे युक्त नवाँ पर्व बताया गया है॥ २८७-२८८ ॥

एकोनषष्टिरध्यायाः पर्वण्यत्र प्रकीर्तिताः।
संख्याता बहुवृत्तान्ताः श्लोकसंख्यात्र कथ्यते॥ २८९ ॥

इस पर्वमें उनसठ (५९) अध्याय कहे गये हैं, जिसमें बहुत-से वृत्तान्तोंका वर्णन आया है। अब इसकी श्लोक-संख्या कही जाती है॥ २८९ ॥

त्रीणि श्लोकसहस्राणि द्वे शते विंशतिस्तथा।
मुनिना सम्प्रणीतानि कौरवाणां यशोभृता॥ २९० ॥

कौरव-पाण्डवोंके यशका पोषण करनेवाले मुनिवर व्यासने इस पर्वमें तीन हजार दो सौ बीस (३,२२०) श्लोकोंकी रचना की है॥ २९० ॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि सौप्तिकं पर्व दारुणम्।
भग्नोरुं यत्र राजानं दुर्योधनममर्षणम्॥ २९१ ॥
अपयातेषु पार्थेषु त्रयस्तेऽभ्याययू रथाः।
कृतवर्मा कृपो द्रौणिः सायाह्ने रुधिरोक्षितम्॥ २९२ ॥

इसके पश्चात् मैं अत्यन्त दारुण सौप्तिकपर्वकी सूची बता रहा हूँ, जिसमें पाण्डवोंके चले जानेपर अत्यन्त अमर्षमें भरे हुए टूटी जाँघवाले राजा दुर्योधनके पास, जो खूनसे लथपथ हुआ पड़ा था, सायंकालके समय कृतवर्मा, कृपाचार्य और अश्वत्थामा—ये तीन महारथी आये॥ २९१-२९२ ॥

समेत्य ददृशुर्भूमौ पतितं रणमूर्धनि।
प्रतिजज्ञे दृढक्रोधो द्रौणिर्यत्र महारथः॥ २९३ ॥
अहत्वा सर्वपञ्चालान् धृष्टद्युम्नपुरोगमान्।
पाण्डवांश्च सहामात्यान् न विमोक्ष्यामि दंशनम्॥ २९४ ॥

निकट आकर उन्होंने देखा, राजा दुर्योधन युद्धके मुहानेपर इस दुर्दशामें पड़ा था। यह देखकर महारथी अश्वत्थामाको बड़ा क्रोध हुआ और उसने प्रतिज्ञा की कि 'मैं धृष्टद्युम्न आदि सम्पूर्ण पांचालों और मन्त्रियोंसहित समस्त पाण्डवोंका वध किये बिना अपना कवच नहीं उतारूँगा'॥ २९३-२९४॥

यत्रैवमुक्त्वा राजानमपक्रम्य त्रयो रथाः।
सूर्यास्तमनवेलायामासेदुस्ते महद् वनम्॥ २९५॥

सौप्तिकपर्वमें राजा दुर्योधनसे ऐसी बात कहकर वे तीनों महारथी वहाँसे चले गये और सूर्यास्त होते-होते एक बहुत बड़े वनमें जा पहुँचे॥ २९५॥

न्यग्रोधस्याथ महतो यत्राधस्ताद् व्यवस्थिताः।
ततः काकान् बहून् रात्रौ दृष्ट्वोलूकेन हिंसितान्॥ २९६॥
द्रौणिः क्रोधसमाविष्टः पितुर्वधमनुस्मरन्।
पञ्चालानां प्रसुप्तानां वधं प्रति मनो दधे॥ २९७॥

वहाँ तीनों एक बहुत बड़े बरगदके नीचे विश्रामके लिये बैठे। तदनन्तर वहाँ एक उल्लूने आकर रातमें बहुत-से कौओंको मार डाला। यह देखकर क्रोधमें भरे अश्वत्थामाने अपने पिताके अन्यायपूर्वक मारे जानेकी घटनाको स्मरण करके सोते समय ही पांचालोंके वधका निश्चय कर लिया॥ २९६-२९७॥

गत्वा च शिविरद्वारि दुर्दृशं तत्र राक्षसम्।
घोररूपमपश्यत् स दिवमावृत्य धिष्ठितम्॥ २९८॥

तत्पश्चात् पाण्डवोंके शिविरके द्वारपर पहुँचकर उसने देखा, एक बड़ा भयंकर राक्षस, जिसकी ओर देखना अत्यन्त कठिन है, वहाँ खड़ा है। उसने पृथ्वीसे लेकर आकाशतकके प्रदेशको घेर रखा था॥ २९८॥

तेन व्याघातमस्त्राणां क्रियमाणमवेक्ष्य च।
द्रौणिर्यत्र विरूपाक्षं रुद्रमाराध्य सत्वरः॥ २९९॥

अश्वत्थामा जितने भी अस्त्र चलाता, उन सबको वह राक्षस नष्ट कर देता था। यह देखकर द्रोणकुमारने तुरंत ही भयंकर नेत्रोंवाले भगवान् रुद्रकी आराधना करके उन्हें प्रसन्न किया॥ २९९॥

प्रसुप्तान् निशि विश्वस्तान् धृष्टद्युम्नपुरोगमान्।
पञ्चालान् सपरीवारान् द्रौपदेयांश्च सर्वशः॥ ३००॥
कृतवर्मणा च सहितः कृपेण च निजघ्निवान्।
यत्रामुच्यन्त ते पार्थाः पञ्च कृष्णबलाश्रयात्॥ ३०१॥
सात्यकिश्च महेष्वासः शेषाश्च निधनं गताः।
पञ्चालानां प्रसुप्तानां यत्र द्रोणसुताद् वधः॥ ३०२॥
धृष्टद्युम्नस्य सूतेन पाण्डवेषु निवेदितः।
द्रौपदी पुत्रशोकार्ता पितृभ्रातृवधार्दिता॥ ३०३॥

तत्पश्चात् अश्वत्थामाने रातमें निःशंक सोये हुए धृष्टद्युम्न आदि पांचालों तथा द्रौपदीपुत्रोंको कृतवर्मा और कृपाचार्यकी सहायतासे परिजनोंसहित मार डाला। भगवान् श्रीकृष्णकी शक्तिका आश्रय लेनेसे केवल पाँच पाण्डव और महान् धनुर्धर सात्यकि बच गये, शेष सभी वीर मारे गये। यह सब प्रसंग सौप्तिकपर्वमें वर्णित है। वहीं यह भी कहा गया है कि धृष्टद्युम्नके सारथिने जब पाण्डवोंको यह सूचित किया कि द्रोणपुत्रने सोये हुए पांचालोंका वध कर डाला है, तब द्रौपदी पुत्रशोकसे पीड़ित तथा पिता और भाईकी हत्यासे व्यथित हो उठी॥ ३००—३०३॥

कृतानशनसंकल्पा यत्र भर्तृनुपाविशत्।
द्रौपदीवचनाद् यत्र भीमो भीमपराक्रमः॥ ३०४॥
प्रियं तस्याश्चिकीर्षन् वै गदामादाय वीर्यवान्।
अन्वधावत् सुसंक्रुद्धो भारद्वाजं गुरोः सुतम्॥ ३०५॥

वह पतियोंको अश्वत्थामासे इसका बदला लेनेके लिये उत्तेजित करती हुई आमरण अनशनका संकल्प ले अन्न-जल छोड़कर बैठ गयी। द्रौपदीके कहनेसे भयंकर पराक्रमी महाबली भीमसेन उसका प्रिय करनेकी इच्छासे हाथमें गदा ले अत्यन्त क्रोधमें भरकर गुरुपुत्र अश्वत्थामाके पीछे दौड़े॥ ३०४-३०५॥

भीमसेनभयाद् यत्र दैवेनाभिप्रचोदितः।
अपाण्डवायेति रुषा द्रौणिरस्त्रमवासृजत्॥ ३०६॥

तब भीमसेनके भयसे घबराकर दैवकी प्रेरणासे पाण्डवोंके विनाशके लिये अश्वत्थामाने रोषपूर्वक दिव्यास्त्रका प्रयोग किया॥ ३०६॥

मैवमित्यब्रवीत् कृष्णः शमयंस्तस्य तद् वचः।
यत्रास्त्रमस्त्रेण च तच्छमयामास फाल्गुनः॥ ३०७॥

किंतु भगवान् श्रीकृष्णने अश्वत्थामाके रोषपूर्ण वचनको शान्त करते हुए कहा—'मैवम्'—'पाण्डवोंका विनाश न हो।' साथ ही अर्जुनने अपने दिव्यास्त्रद्वारा उसके अस्त्रको शान्त कर दिया॥ ३०७॥

द्रौणेश्च द्रोहबुद्धित्वं वीक्ष्य पापात्मनस्तदा।
द्रौणिद्वैपायनादीनां शापाश्चान्योन्यकारिताः॥ ३०८॥

उस समय पापात्मा द्रोणपुत्रके द्रोहपूर्ण विचारको देखकर द्वैपायन व्यास एवं श्रीकृष्णने अश्वत्थामाको और अश्वत्थामाने उन्हें शाप दिया। इस प्रकार दोनों ओरसे एक-दूसरेको शाप प्रदान किया गया॥ ३०८॥

मणिं तथा समादाय द्रोणपुत्रान्महारथात्।
पाण्डवाः प्रददुर्हृष्टा द्रौपद्यै जितकाशिनः॥ ३०९॥

महारथी अश्वत्थामासे मणि छीनकर विजयसे सुशोभित होनेवाले पाण्डवोंने प्रसन्नतापूर्वक द्रौपदीको दे दी॥ ३०९॥

एतद् वै दशमं पर्व सौप्तिकं समुदाहृतम्।
अष्टादशास्मिन्नध्यायाः पर्वण्युक्ता महात्मना॥ ३१०॥

इस सब वृत्तान्तोंसे युक्त सौप्तिकपर्व दसवाँ कहा गया है। महात्मा व्यासने इसमें अठारह (१८) अध्याय कहे हैं॥ ३१०॥

श्लोकानां कथितान्यत्र शतान्यष्टौ प्रसंख्यया।
श्लोकाश्च सप्ततिः प्रोक्ता मुनिना ब्रह्मवादिना॥ ३११॥

इसी प्रकार उन ब्रह्मवादी मुनिने इस पर्वमें श्लोकोंकी संख्या आठ सौ सत्तर (८७०) बतायी है॥ ३११॥

सौप्तिकैषीके सम्बद्धे पर्वण्युत्तमतेजसा।
अत ऊर्ध्वमिदं प्राहुः स्त्रीपर्व करुणोदयम्॥ ३१२॥

उत्तम तेजस्वी व्यासजीने इस पर्वमें सौप्तिक और ऐषीक दोनोंकी कथाएँ सम्बद्ध कर दी हैं। इसके बाद विद्वानोंने स्त्रीपर्व कहा है, जो करुणरसकी धारा बहानेवाला है॥ ३१२॥

पुत्रशोकाभिसंतप्तः प्रज्ञाचक्षुर्नराधिपः।
कृष्णोपनीतां यत्रासावायसीं प्रतिमां दृढाम्॥ ३१३॥
भीमसेनद्रोहबुद्धिर्धृतराष्ट्रो बभञ्ज ह।
यत्र शोकाभितप्तस्य धृतराष्ट्रस्य धीमतः॥ ३१४॥
संसारगहनं बुद्ध्या हेतुभिर्मोक्षदर्शनैः।
विदुरेण च यत्रास्य राज्ञ आश्वासनं कृतम्॥ ३१५॥

प्रज्ञाचक्षु राजा धृतराष्ट्रने पुत्रशोकसे संतप्त हो भीमसेनके प्रति द्रोहबुद्धि कर ली और श्रीकृष्णद्वारा अपने समीप लायी हुई लोहेकी मजबूत प्रतिमाको भीमसेन समझकर भुजाओंमें भर लिया तथा उसे दबाकर टूक-टूक कर डाला। उस समय पुत्रशोकसे पीड़ित बुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्रको विदुरजीने मोक्षका साक्षात्कार करानेवाली युक्तियों तथा विवेकपूर्ण बुद्धिके द्वारा संसारकी दुःखरूपताका प्रतिपादन करते हुए भलीभाँति समझा-बुझाकर शान्त किया॥ ३१३—३१५॥

धृतराष्ट्रस्य चात्रैव कौरवायोधनं तथा।
अन्तःपुरस्य गमनं शोकार्तस्य प्रकीर्तितम्॥ ३१६॥

इसी पर्वमें शोकाकुल धृतराष्ट्रका अन्तःपुरकी स्त्रियोंके साथ कौरवोंके युद्धस्थानमें जानेका वर्णन है॥ ३१६॥

विलापो वीरपत्नीनां यत्रातिकरुणः स्मृतः।
क्रोधावेशः प्रमोहश्च गान्धारीधृतराष्ट्रयोः॥ ३१७॥

वहीं वीरपत्नियोंके अत्यन्त करुणापूर्ण विलापका कथन है। वहीं गान्धारी और धृतराष्ट्रके क्रोधावेश तथा मूर्च्छित होनेका उल्लेख है॥ ३१७॥

यत्र तान् क्षत्रियाः शूरान् संग्रामेष्वनिवर्तिनः।
पुत्रान् भ्रातॄन् पितॄंश्चैव ददृशुर्निहतान् रणे॥ ३१८॥

उस समय उन क्षत्राणियोंने युद्धमें पीठ न दिखानेवाले अपने शूरवीर पुत्रों, भाइयों और पिताओंको रणभूमिमें मरा हुआ देखा॥ ३१८॥

पुत्रपौत्रवधार्तायास्तथात्रैव प्रकीर्तिता।
गान्धार्याश्चापि कृष्णेन क्रोधोपशमनक्रिया॥ ३१९॥

पुत्रों और पौत्रोंके वधसे पीड़ित गान्धारीके पास आकर भगवान् श्रीकृष्णने उनके क्रोधको शान्त किया। इस प्रसंगका भी इसी पर्वमें वर्णन किया गया है॥ ३१९॥

यत्र राजा महाप्राज्ञः सर्वधर्मभृतां वरः।
राज्ञां तानि शरीराणि दाहयामास शास्त्रतः॥ ३२०॥

वहीं यह भी कहा गया है कि परम बुद्धिमान् और सम्पूर्ण धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरने वहाँ मारे गये समस्त राजाओंके शरीरोंका शास्त्रविधिसे दाह-संस्कार किया और कराया॥ ३२०॥

तोयकर्मणि चारब्धे राज्ञामुदकदानिके।
गूढोत्पन्नस्य चाख्यानं कर्णस्य पृथयाऽऽत्मनः॥ ३२१॥
सुतस्यैतदिह प्रोक्तं व्यासेन परमर्षिणा।
एतदेकादशं पर्व शोकवैक्लव्यकारणम्॥ ३२२॥
प्रणीतं सज्जनमनोवैक्लव्याश्रुप्रवर्तकम्।
सप्तविंशतिरध्यायाः पर्वण्यस्मिन् प्रकीर्तिताः॥ ३२३॥
श्लोकसप्तशती चापि पञ्चसप्ततिसंयुता।
संख्यया भारताख्यानमुक्तं व्यासेन धीमता॥ ३२४॥

तदनन्तर राजाओंको जलांजलिदानके प्रसंगमें उन सबके लिये तर्पणका आरम्भ होते ही कुन्तीद्वारा गुप्तरूपसे उत्पन्न हुए अपने पुत्र कर्णका गूढ़ वृत्तान्त प्रकट किया गया, यह प्रसंग आता है। महर्षि व्यासने ये सब बातें स्त्रीपर्वमें कही हैं। शोक और विकलताका संचार करनेवाला यह ग्यारहवाँ पर्व श्रेष्ठ पुरुषोंके चित्तको भी विह्वल करके उनके नेत्रोंसे आँसूकी धारा प्रवाहित करा देता है। इस पर्वमें सत्ताईस (२७) अध्याय कहे

गये हैं। इसके श्लोकोंकी संख्या सात सौ पचहत्तर (७७५) कही गयी है। इस प्रकार परम बुद्धिमान् व्यासजीने महाभारतका यह उपाख्यान कहा है॥ ३२१—३२४॥

अतः परं शान्तिपर्व द्वादशं बुद्धिवर्धनम्।
यत्र निर्वेदमापन्नो धर्मराजो युधिष्ठिरः॥ ३२५॥
घातयित्वा पितॄन् भ्रातॄन् पुत्रान् सम्बन्धिमातुलान्।
शान्तिपर्वणि धर्माश्च व्याख्याताः शारतल्पिकाः॥ ३२६॥

स्त्रीपर्वके पश्चात् बारहवाँ पर्व शान्तिपर्वके नामसे विख्यात है। यह बुद्धि और विवेकको बढ़ानेवाला है। इस पर्वमें यह कहा गया है कि अपने पितृतुल्य गुरुजनों, भाइयों, पुत्रों, सगे-सम्बन्धी एवं मामा आदिको मरवाकर राजा युधिष्ठिरके मनमें बड़ा निर्वेद (दुःख एवं वैराग्य) हुआ। शान्तिपर्वमें बाणशय्यापर शयन करनेवाले भीष्मजीके द्वारा उपदेश किये हुए धर्मोंका वर्णन है॥ ३२५-३२६॥

राजभिर्वेदितव्यास्ते सम्यग्ज्ञानबुभुत्सुभिः।
आपद्धर्माश्च तत्रैव कालहेतुप्रदर्शिनः॥ ३२७॥
यान् बुद्ध्वा पुरुषः सम्यक् सर्वज्ञत्वमवाप्नुयात्।
मोक्षधर्माश्च कथिता विचित्रा बहुविस्तराः॥ ३२८॥

उत्तम ज्ञानकी इच्छा रखनेवाले राजाओंको उन्हें भलीभाँति जानना चाहिये। उसी पर्वमें काल और कारणकी अपेक्षा रखनेवाले देश और कालके अनुसार व्यवहारमें लानेयोग्य आपद्धर्मोंका भी निरूपण किया गया है, जिन्हें अच्छी तरह जान लेनेपर मनुष्य सर्वज्ञ हो जाता है। शान्तिपर्वमें विविध एवं अद्भुत मोक्ष-धर्मोंका भी बड़े विस्तारके साथ प्रतिपादन किया गया है॥ ३२७-३२८॥

द्वादशं पर्व निर्दिष्टमेतत् प्राज्ञजनप्रियम्।
अत्र पर्वणि विज्ञेयमध्यायानां शतत्रयम्॥ ३२९॥
त्रिंशच्चैव तथाध्याया नव चैव तपोधनाः।
चतुर्दश सहस्राणि तथा सप्त शतानि च॥ ३३०॥
सप्त श्लोकास्तथैवात्र पञ्चविंशतिसंख्यया।
अत ऊर्ध्वं च विज्ञेयमनुशासनमुत्तमम्॥ ३३१॥

इस प्रकार यह बारहवाँ पर्व कहा गया है, जो ज्ञानीजनोंको अत्यन्त प्रिय है। इस पर्वमें तीन सौ उन्तालीस (३३९) अध्याय हैं और तपोधनो! इसकी श्लोक-संख्या चौदह हजार सात सौ बत्तीस (१४,७३२) है। इसके बाद उत्तम अनुशासनपर्व है, यह जानना चाहिये॥ ३२९—३३१॥

यत्र प्रकृतिमापन्नः श्रुत्वा धर्मविनिश्चयम्।
भीष्माद् भागीरथीपुत्रात् कुरुराजो युधिष्ठिरः॥ ३३२॥

जिसमें कुरुराज युधिष्ठिर गंगानन्दन भीष्मजीसे धर्मका निश्चित सिद्धान्त सुनकर प्रकृतिस्थ हुए, यह बात कही गयी है॥ ३३२॥

व्यवहारोऽत्र कात्स्न्र्येन धर्मार्थी यः प्रकीर्तितः।
विविधानां च दानानां फलयोगाः प्रकीर्तिताः॥ ३३३॥

इसमें धर्म और अर्थसे सम्बन्ध रखनेवाले हितकारी आचार-व्यवहारका निरूपण किया गया है। साथ ही नाना प्रकारके दानोंके फल भी कहे गये हैं॥ ३३३॥

तथा पात्रविशेषाश्च दानानां च परो विधिः।
आचारविधियोगश्च सत्यस्य च परा गतिः॥ ३३४॥
महाभाग्यं गवां चैव ब्राह्मणानां तथैव च।
रहस्यं चैव धर्माणां देशकालोपसंहितम्॥ ३३५॥
एतत् सुबहुवृत्तान्तमुत्तमं चानुशासनम्।
भीष्मस्यात्रैव सम्प्राप्तिः स्वर्गस्य परिकीर्तिता॥ ३३६॥

दानके विशेष पात्र, दानकी उत्तम विधि, आचार और उसका विधान, सत्यभाषणकी पराकाष्ठा, गौओं और ब्राह्मणोंका माहात्म्य, धर्मोंका रहस्य तथा देश और काल (तीर्थ और पर्व)-की महिमा—ये सब अनेक वृत्तान्त जिसमें वर्णित हैं, वह उत्तम अनुशासन-पर्व है। इसीमें भीष्मको स्वर्गकी प्राप्ति कही गयी है॥ ३३४—३३६॥

एतत् त्रयोदशं पर्व धर्मनिश्चयकारकम्।
अध्यायानां शतं त्वत्र षट्चत्वारिंशदेव तु॥ ३३७॥

धर्मका निर्णय करनेवाला यह पर्व तेरहवाँ है। इसमें एक सौ छियालीस (१४६) अध्याय हैं॥ ३३७॥

श्लोकानां तु सहस्राणि प्रोक्तान्यष्टौ प्रसंख्यया।
ततोऽश्वमेधिकं नाम पर्व प्रोक्तं चतुर्दशम्॥ ३३८॥

और पूरे आठ हजार (८,०००) श्लोक कहे गये हैं। तदनन्तर चौदहवें आश्वमेधिक नामक पर्वकी कथा है॥ ३३८॥

तत् संवर्तमरुत्तीयं यत्राख्यानमनुत्तमम्।
सुवर्णकोषसम्प्राप्तिर्जन्म चोक्तं परीक्षितः॥ ३३९॥

जिसमें परम उत्तम योगी संवर्त तथा राजा मरुत्तका उपाख्यान है। युधिष्ठिरको सुवर्णके खजानेकी प्राप्ति और परीक्षित्‌के जन्मका वर्णन है॥ ३३९॥

दग्धस्यास्त्राग्निना पूर्वं कृष्णात् संजीवनं पुनः।
चर्यायां हयमुत्सृष्टं पाण्डवस्यानुगच्छतः॥ ३४०॥

[illegible] तत्र च युद्धानि राजपुत्रैरमर्षणैः।
चित्राङ्गदायाः पुत्रेण पुत्रिकाया धनंजयः॥ ३४१॥
[illegible]ग्रामे बभ्रुवाहेण संशयं चात्र दर्शितः।
अश्वमेधे महायज्ञे नकुलाख्यानमेव च॥ ३४२॥
इत्याश्वमेधिकं पर्व प्रोक्तमेतन्महाद्भुतम्।
अध्यायानां शतं चैव त्रयोऽध्यायाश्च कीर्तिताः॥ ३४३॥
त्रीणि श्लोकसहस्राणि तावन्त्येव शतानि च।
[illegible]निश्च तथा श्लोकाः संख्यातास्तत्त्वदर्शिना॥ ३४४॥

पहले अश्वत्थामाके अस्त्रकी अग्निसे दग्ध हुए [illegible] परीक्षित्‌का पुनः श्रीकृष्णके अनुग्रहसे जीवित [illegible] कहा गया है। सम्पूर्ण राष्ट्रोंमें घूमनेके लिये छोड़े [illegible] अश्वमेधसम्बन्धी अश्वके पीछे पाण्डुनन्दन अर्जुनके [illegible] और उन-उन देशोंमें कुपित राजकुमारोंके साथ [illegible] युद्ध करनेका वर्णन है। पुत्रिकाधर्मके अनुसार [illegible] हुए चित्रांगदाकुमार बभ्रुवाहनने युद्धमें अर्जुनको [illegible]-कटकी स्थितिमें डाल दिया था; यह कथा भी [illegible]-पर्वमें ही आयी है। वहीं अश्वमेध-महायज्ञमें [illegible]-ख्यान आया है। इस प्रकार यह परम अद्भुत [illegible]-धिकपर्व कहा गया है। इसमें एक सौ तीन [illegible] पढ़े गये हैं। तत्त्वदर्शी व्यासजीने इस पर्वमें [illegible] तीन सौ बीस (३,३२०) श्लोकोंकी रचना [illegible] ३४०—३४४॥

[illegible]श्रमवासाख्यं पर्व पञ्चदशं स्मृतम्।
[illegible]न्यं समुत्सृज्य गान्धार्या सहितो नृपः॥ ३४५॥
[illegible]ष्ट्वाऽऽश्रमपदं विदुरश्च जगाम ह।
दृष्ट्वा प्रस्थितं साध्वी पृथाप्यनुययौ तदा॥ ३४६॥
[illegible]न्यं परित्यज्य गुरुशुश्रूषणे रता।

तदनन्तर आश्रमवासिक नामक पंद्रहवें पर्वका [illegible] है जिसमें गान्धारीसहित राजा धृतराष्ट्र और [illegible] राज्य छोड़कर वनके आश्रममें जानेका उल्लेख [illegible] है उस समय धृतराष्ट्रको प्रस्थान करते देख [illegible] साध्वी कुन्ती भी गुरुजनोंकी सेवामें अनुरक्त [illegible] अपने पुत्रका राज्य छोड़कर उन्हींके पीछे-पीछे [illegible] गयी॥ ३४५-३४६½॥

[illegible] राजा हतान् पुत्रान् पौत्रानन्यांश्च पार्थिवान्॥ ३४७॥
[illegible]नगतान् वीरानपश्यत् पुनरागतान्।
[illegible]म्राटान् कृष्णस्य दृष्ट्वाश्चर्यमनुत्तमम्॥ ३४८॥
[illegible]कं मदाग्श्च सिद्धिं परमिकां गतः।
[illegible]म्माश्रित्य विदुरः सुगतिं गतः॥ ३४९॥
संजयश्च सहामात्यो विद्वान् गावल्गणिर्वशी।
ददर्श नारदं यत्र धर्मराजो युधिष्ठिरः॥ ३५०॥

जहाँ राजा धृतराष्ट्रने युद्धमें मरकर परलोकमें गये हुए अपने वीर पुत्रों, पौत्रों तथा अन्यान्य राजाओंको भी पुनः अपने पास आया हुआ देखा। महर्षि व्यासजीके प्रसादसे यह उत्तम आश्चर्य देखकर गान्धारीसहित धृतराष्ट्रने शोक त्याग दिया और उत्तम सिद्धि प्राप्त कर ली। इसी पर्वमें यह बात भी आयी है कि विदुरजीने धर्मका आश्रय लेकर उत्तम गति प्राप्त की। साथ ही मन्त्रियोंसहित जितेन्द्रिय विद्वान् गवल्गणपुत्र संजयने भी उत्तम पद प्राप्त कर लिया। इसी पर्वमें यह बात भी आयी है कि धर्मराज युधिष्ठिरको नारदजीका दर्शन हुआ॥ ३४७—३५०॥

नारदाच्चैव शुश्राव वृष्णीनां कदनं महत्।
एतदाश्रमवासाख्यं पर्वोक्तं महदद्भुतम्॥ ३५१॥

नारदजीसे ही उन्होंने यदुवंशियोंके महान् संहारका समाचार सुना। यह अत्यन्त अद्‌भुत आश्रमवासिकपर्व कहा गया है॥ ३५१॥

द्विचत्वारिंशदध्यायाः पर्वैतदभिसंख्यया।
सहस्रमेकं श्लोकानां पञ्च श्लोकशतानि च॥ ३५२॥
षडेव च तथा श्लोकाः संख्यातास्तत्त्वदर्शिना।
अतः परं निबोधेदं मौसलं पर्व दारुणम्॥ ३५३॥

इस पर्वमें अध्यायोंकी संख्या बयालीस (४२) है। तत्त्वदर्शी व्यासजीने इसमें एक हजार पाँच सौ छः (१,५०६) श्लोक रखे हैं। इसके बाद मौसलपर्वकी सूची सुनो—यह पर्व अत्यन्त दारुण है॥ ३५२-३५३॥

यत्र ते पुरुषव्याघ्राः शस्त्रस्पर्शहता युधि।
ब्रह्मदण्डविनिष्पिष्टाः समीपे लवणाम्भसः॥ ३५४॥

इसीमें यह बात आयी है कि वे श्रेष्ठ यदुवंशी वीर क्षारसमुद्रके तटपर आपसके युद्धमें अस्त्र-शस्त्रोंके स्पर्शमात्रसे मारे गये। ब्राह्मणोंके शापने उन्हें पहले ही पीस डाला था॥ ३५४॥

आपाने पानकलिता दैवेनाभिप्रचोदिताः।
एरकारूपिभिर्वज्रैर्निजघ्नुरितरेतरम्॥ ३५५॥

उन सबने मधुपानके स्थानमें जाकर खूब पीया और नशेसे होश-हवास खो बैठे। फिर दैवसे प्रेरित हो परस्पर संघर्ष करके उन्होंने एरकारूपी वज्रसे एक-दूसरेको मार डाला॥ ३५५॥

यत्र सर्वक्षयं कृत्वा तावुभौ रामकेशवौ।
नातिचक्रामतुः कालं प्राप्तं सर्वहरं महत्॥ ३५६॥

वहीं सबका संहार करके बलराम और श्रीकृष्ण दोनों भाइयोंने समर्थ होते हुए भी अपने ऊपर आये हुए सर्वसंहारकारी महान् कालका उल्लंघन नहीं किया (महर्षियोंकी वाणी सत्य करनेके लिये कालका आदेश स्वेच्छासे अंगीकार कर लिया)॥ ३५६॥

यत्रार्जुनो द्वारवतीमेत्य वृष्णिविनाकृताम्।
दृष्ट्वा विषादमगमत् परां चार्तिं नरर्षभः॥ ३५७॥

वहीं यह प्रसंग भी है कि नरश्रेष्ठ अर्जुन द्वारकामें आये और उसे वृष्णिवंशियोंसे सूनी देखकर विषादमें डूब गये। उस समय उनके मनमें बड़ी पीड़ा हुई॥ ३५७॥

स संस्कृत्य नरश्रेष्ठं मातुलं शौरिमात्मनः।
ददर्श यदुवीराणामापाने वैशसं महत्॥ ३५८॥

उन्होंने अपने मामा नरश्रेष्ठ वसुदेवजीका दाह-संस्कार करके आपानस्थानमें जाकर यदुवंशी वीरोंके विकट विनाशका रोमांचकारी दृश्य देखा॥ ३५८॥

शरीरं वासुदेवस्य रामस्य च महात्मनः।
संस्कारं लम्भयामास वृष्णीनां च प्रधानतः॥ ३५९॥

वहाँसे भगवान् श्रीकृष्ण, महात्मा बलराम तथा प्रधान-प्रधान वृष्णिवंशी वीरोंके शरीरोंको लेकर उन्होंने उनका संस्कार सम्पन्न किया॥ ३५९॥

स वृद्धबालमादाय द्वारवत्यास्ततो जनम्।
ददर्शापदि कष्टायां गाण्डीवस्य पराभवम्॥ ३६०॥

तदनन्तर अर्जुनने द्वारकाके बालक, वृद्ध तथा स्त्रियोंको साथ ले वहाँसे प्रस्थान किया; परंतु उस दुःखदायिनी विपत्तिमें उन्होंने अपने गाण्डीव धनुषकी अभूतपूर्व पराजय देखी॥ ३६०॥

सर्वेषां चैव दिव्यानामस्त्राणामप्रसन्नताम्।
नाशं वृष्णिकलत्राणां प्रभावाणामनित्यताम्॥ ३६१॥
दृष्ट्वा निर्वेदमापन्नो व्यासवाक्यप्रचोदितः।
धर्मराजं समासाद्य संन्यासं समरोचयत्॥ ३६२॥

उनके सभी दिव्यास्त्र उस समय अप्रसन्न-से होकर विस्मृत हो गये। वृष्णिकुलकी स्त्रियोंका देखते-देखते अपहरण हो जाना और अपने प्रभावोंका स्थिर न रहना—यह सब देखकर अर्जुनको बड़ा निर्वेद (दुःख) हुआ। फिर उन्होंने व्यासजीके वचनोंसे प्रेरित हो धर्मराज युधिष्ठिरसे मिलकर संन्यासमें अभिरुचि दिखायी॥ ३६१-३६२॥

इत्येतन्मौसलं पर्व षोडशं परिकीर्तितम्।
अध्यायाष्टौ समाख्याताः श्लोकानां च शतत्रयम्॥ ३६३॥
श्लोकानां विंशतिश्चैव संख्यातास्तत्त्वदर्शिना।
महाप्रस्थानिकं तस्मादूर्ध्वं सप्तदशं स्मृतम्॥ ३६४॥

इस प्रकार यह सोलहवाँ मौसलपर्व कहा गया है। इसमें तत्त्वज्ञानी व्यासने गिनकर आठ (८) अध्याय और तीन सौ बीस (३२०) श्लोक कहे हैं। इसके पश्चात् सत्रहवाँ महाप्रस्थानिकपर्व कहा गया है॥ ३६३-३६४॥

यत्र राज्यं परित्यज्य पाण्डवाः पुरुषर्षभाः।
द्रौपद्या सहिता देव्या महाप्रस्थानमास्थिताः॥ ३६५॥

जिसमें नरश्रेष्ठ पाण्डव अपना राज्य छोड़कर द्रौपदीके साथ महाप्रस्थानके* पथपर आ गये॥ ३६५॥

यत्र तेऽग्निं ददृशिरे लौहित्यं प्राप्य सागरम्।
यत्राग्निना चोदितश्च पार्थस्तस्मै महात्मने॥ ३६६॥
ददौ सम्पूज्य तद् दिव्यं गाण्डीवं धनुरुत्तमम्।
यत्र भ्रातॄन् निपतितान् द्रौपदीं च युधिष्ठिरः॥ ३६७॥
दृष्ट्वा हित्वा जगामैव सर्वाननवलोकयन्।
एतत् सप्तदशं पर्व महाप्रस्थानिकं स्मृतम्॥ ३६८॥

उस यात्रामें उन्होंने लाल सागरके पास पहुँचकर साक्षात् अग्निदेवको देखा और उन्हींकी प्रेरणासे पार्थने उन महात्माको आदरपूर्वक अपना उत्तम एवं दिव्य गाण्डीव धनुष अर्पण कर दिया। उसी पर्वमें यह भी कहा गया है कि राजा युधिष्ठिरने मार्गमें गिरे हुए अपने भाइयों और द्रौपदीको देखकर भी उनकी क्या दशा हुई यह जाननेके लिये पीछेकी ओर फिरकर नहीं देखा और उन सबको छोड़कर आगे बढ़ गये। यह सत्रहवाँ महाप्रस्थानिकपर्व कहा गया है॥ ३६६—३६८॥

यत्राध्यायास्त्रयः प्रोक्ताः श्लोकानां च शतत्रयम्।
विंशतिश्च तथा श्लोकाः संख्यातास्तत्त्वदर्शिना॥ ३६९॥

इसमें तत्त्वज्ञानी व्यासजीने तीन (३) अध्याय और एक सौ तेईस (१२३) श्लोक गिनकर कहे हैं॥ ३६९॥

स्वर्गपर्व ततो ज्ञेयं दिव्यं यत् तदमानुषम्।
प्राप्तं दैवरथं स्वर्गान्नेष्टवान् यत्र धर्मराट्॥ ३७०॥
आरोढुं सुमहाप्राज्ञ आनृशंस्याच्छुना विना।
तामस्याविचलां ज्ञात्वा स्थितिं धर्मे महात्मनः॥ ३७१॥
श्वरूपं यत्र तत् त्यक्त्वा धर्मेणासौ समन्वितः।
स्वर्गं प्राप्तः स च तथा यातना विपुला भृशम्॥ ३७२॥

* घर छोड़कर निराहार रहते हुए, स्वेच्छासे मृत्युका वरण करनेके लिये निकल जाना और विभिन्न दिशाओंमें भ्रमण करते हुए अन्तमें उत्तर दिशा—हिमालयकी ओर जाना—महाप्रस्थान कहलाता है—पाण्डवोंने ऐसा ही किया।

देवदूतेन नरकं यत्र व्याजेन दर्शितम्।
शुश्राव यत्र धर्मात्मा भ्रातॄणां करुणा गिरः॥ ३७३॥
निदेशे वर्तमानानां देशे तत्रैव वर्तताम्।
अनुदर्शितश्च धर्मेण देवराजेन पाण्डवः॥ ३७४॥

तदनन्तर स्वर्गारोहणपर्व जानना चाहिये। जो दिव्य वृत्तान्तोंसे युक्त और अलौकिक है। उसमें यह वर्णन आया है कि स्वर्गसे युधिष्ठिरको लेनेके लिये एक दिव्य रथ आया, किंतु महाज्ञानी धर्मराज युधिष्ठिरने दयावश अपने साथ आये हुए कुत्तेको छोड़कर अकेले उसपर चढ़ना स्वीकार नहीं किया। महात्मा युधिष्ठिरकी धर्ममें इस प्रकार अविचल स्थिति जानकर कुत्तेने अपने मायामय स्वरूपको त्याग दिया और वहाँ वह साक्षात् धर्मके रूपमें स्थित हो गया। उसके साथ युधिष्ठिर स्वर्गमें गये। वहाँ देवदूतने उन्हें रथसे नरककी विपुल यातनाओंका दर्शन कराया। वहीं धर्मात्मा युधिष्ठिरने अपने भाइयोंकी करुणाजनक पुकार सुनी थी। वे सब वहीं नरकप्रदेशमें यमराजकी आज्ञाके अधीन रहकर यातना भोगते थे। तत्पश्चात् धर्मराज तथा देवराजने पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरको स्वर्गमें उनके भाइयोंको जो सद्गति प्राप्त हुई थी, उसका दर्शन कराया॥ ३७०—३७४॥

आप्लुत्याकाशगङ्गायां देहं त्यक्त्वा स मानुषम्।
स्वधर्मनिर्जितं स्थानं स्वर्गे प्राप्य स धर्मराट्॥ ३७५॥
तत्रैते पूजितः सर्वैः सेन्द्रैः सुरगणैः सह।
तदष्टादशं पर्व प्रोक्तं व्यासेन धीमता॥ ३७६॥

इसके बाद धर्मराजने आकाशगंगामें गोता लगाकर मानवशरीरको त्याग दिया और स्वर्गलोकमें अपने द्वारा उपार्जित उत्तम स्थान पाकर वे इन्द्रादि देवताओंके साथ उनसे सम्मानित हो आनन्दपूर्वक रहने लगे। इस प्रकार बुद्धिमान् व्यासजीने यह अठारहवाँ पर्व कहा है। ३७५-३७६॥

अध्यायाः पञ्च संख्याताः पर्वण्यस्मिन् महात्मना।
श्लोकानां द्वे शते चैव प्रसंख्याते तपोधनाः॥ ३७७॥
नव श्लोकास्तथैवान्ये संख्याताः परमर्षिणा।
अष्टादशैवमेतानि पर्वाण्युक्तान्यशेषतः॥ ३७८॥

तपोधनो! परम ऋषि महात्मा व्यासजीने इस पर्वमें पाँच (५) अध्याय और दो सौ नौ (२०९) श्लोक कहे हैं। इस प्रकार ये कुल मिलाकर अठारह पर्व कहे गये हैं॥ ३७७-३७८॥

खिलेषु हरिवंशश्च भविष्यं च प्रकीर्तितम्।
दशश्लोकसहस्राणि विंशच्छ्लोकशतानि च॥ ३७९॥
खिलेषु हरिवंशे च संख्यातानि महर्षिणा।
एतत् सर्वं समाख्यातं भारते पर्वसंग्रहः॥ ३८०॥

खिलपर्वोंमें हरिवंश तथा भविष्यका वर्णन किया गया है। हरिवंशके खिलपर्वोंमें महर्षि व्यासने गणनापूर्वक बारह हजार (१२,०००) श्लोक रखे हैं। इस प्रकार महाभारतमें यह सब पर्वोंका संग्रह बताया गया है॥ ३७९-३८०॥

अष्टादश समाजग्मुरक्षौहिण्यो युयुत्सया।
तन्महादारुणं युद्धमहान्यष्टादशाभवत्॥ ३८१॥

कुरुक्षेत्रमें युद्धकी इच्छासे अठारह अक्षौहिणी सेनाएँ एकत्र हुई थीं और वह महाभयंकर युद्ध अठारह दिनोंतक चलता रहा॥ ३८१॥

यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः।
न चाख्यानमिदं विद्यान्नैव स स्याद् विचक्षणः॥ ३८२॥

जो द्विज अंगों और उपनिषदोंसहित चारों वेदोंको जानता है, परंतु इस महाभारत-इतिहासको नहीं जानता, वह विशिष्ट विद्वान् नहीं है॥ ३८२॥

अर्थशास्त्रमिदं प्रोक्तं धर्मशास्त्रमिदं महत्।
कामशास्त्रमिदं प्रोक्तं व्यासेनामितबुद्धिना॥ ३८३॥

असीम बुद्धिवाले महात्मा व्यासने यह अर्थशास्त्र कहा है। यह महान् धर्मशास्त्र भी है, इसे कामशास्त्र भी कहा गया है (और मोक्षशास्त्र तो यह है ही)॥ ३८३॥

श्रुत्वा त्विदमुपाख्यानं श्राव्यमन्यन्न रोचते।
पुंस्कोकिलरुतं श्रुत्वा रूक्षा ध्वाङ्क्षस्य वागिव॥ ३८४॥

इस उपाख्यानको सुन लेनेपर और कुछ सुनना अच्छा नहीं लगता। भला कोकिलका कलरव सुनकर कौओंकी कठोर 'काँय-काँय' किसे पसंद आयेगी?॥ ३८४॥

इतिहासोत्तमादस्माज्जायन्ते कविबुद्धयः।
पञ्चभ्य इव भूतेभ्यो लोकसंविधयस्त्रयः॥ ३८५॥

जैसे पाँच भूतोंसे त्रिविध (आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक) लोकसृष्टियाँ प्रकट होती हैं, उसी प्रकार इस उत्तम इतिहाससे कवियोंको काव्यरचना-विषयक बुद्धियाँ प्राप्त होती हैं॥ ३८५॥

अस्याख्यानस्य विषये पुराणं वर्तते द्विजाः।
अन्तरिक्षस्य विषये प्रजा इव चतुर्विधाः॥ ३८६॥

द्विजवरो! इस महाभारत-इतिहासके भीतर ही अठारह पुराण स्थित हैं, ठीक उसी तरह, जैसे आकाशमें

ही चारों प्रकारकी प्रजा (जरायुज, स्वेदज, अण्डज और उद्भिज्ज) विद्यमान हैं॥ ३८६॥

क्रियागुणानां सर्वेषामिदमाख्यानमाश्रयः।
इन्द्रियाणां समस्तानां चित्रा इव मनःक्रियाः॥ ३८७॥

जैसे विचित्र मानसिक क्रियाएँ ही समस्त इन्द्रियोंकी चेष्टाओंका आधार हैं उसी प्रकार सम्पूर्ण लौकिक-वैदिक कर्मोंके उत्कृष्ट फल-साधनोंका यह आख्यान ही आधार है॥ ३८७॥

अनाश्रित्यैतदाख्यानं कथा भुवि न विद्यते।
आहारमनपाश्रित्य शरीरस्येव धारणम्॥ ३८८॥

जैसे भोजन किये बिना शरीर नहीं रह सकता, वैसे ही इस पृथ्वीपर कोई भी ऐसी कथा नहीं है जो इस महाभारतका आश्रय लिये बिना प्रकट हुई हो॥ ३८८॥

इदं कविवरैः सर्वैराख्यानमुपजीव्यते।
उदयप्रेप्सुभिर्भृत्यैरभिजात इवेश्वरः॥ ३८९॥
अस्य काव्यस्य कवयो न समर्था विशेषणे।
साधोरिव गृहस्थस्य शेषास्त्रय इवाश्रमाः॥ ३९०॥

सभी श्रेष्ठ कवि इस महाभारतकी कथाका आश्रय लेते हैं और लेंगे। ठीक वैसे ही, जैसे उन्नति चाहनेवाले सेवक श्रेष्ठ स्वामीका सहारा लेते हैं। जैसे शेष तीन आश्रम उत्तम गृहस्थ आश्रमसे बढ़कर नहीं हो सकते, उसी प्रकार संसारके कवि इस महाभारत काव्यसे बढ़कर काव्य-रचना करनेमें समर्थ नहीं हो सकते॥ ३८९-३९०॥

धर्मे मतिर्भवतु वः सततोत्थितानां
स ह्येक एव परलोकगतस्य बन्धुः।
अर्थाः स्त्रियश्च निपुणैरपि सेव्यमाना
नैवाप्तभावमुपयान्ति न च स्थिरत्वम्॥ ३९१॥

तपस्वी महर्षियो! (तथा महाभारतके पाठको!) आप सब लोग सदा सांसारिक आसक्तियोंसे ऊँचे उठें और आपका मन सदा धर्ममें लगा रहे; क्योंकि परलोकमें गये हुए जीवका बन्धु या सहायक एकमात्र धर्म ही है। चतुर मनुष्य भी धन और स्त्रियोंका सेवन तो करते हैं, किंतु वे उनकी श्रेष्ठतापर विश्वास नहीं करते और न उन्हें स्थिर ही मानते हैं॥ ३९१॥

द्वैपायनोष्ठपुटनिःसृतमप्रमेयं
पुण्यं पवित्रमथ पापहरं शिवं च।
यो भारतं समधिगच्छति वाच्यमानं
किं तस्य पुष्करजलैरभिषेचनेन॥ ३९२॥

जो व्यासजीके मुखसे निकले हुए इस अप्रमेय (अतुलनीय) पुण्यदायक, पवित्र, पापहारी और कल्याणमय महाभारतको दूसरोंके मुखसे सुनता है, उसे पुष्करतीर्थके जलमें गोता लगानेकी क्या आवश्यकता है?॥ ३९२॥

यदह्ना कुरुते पापं ब्राह्मणस्त्विन्द्रियैश्चरन्।
महाभारतमाख्याय संध्यां मुच्यति पश्चिमाम्॥ ३९३॥

ब्राह्मण दिनमें अपनी इन्द्रियोंद्वारा जो पाप करता है, उससे सायंकाल महाभारतका पाठ करके मुक्त हो जाता है॥ ३९३॥

यद् रात्रौ कुरुते पापं कर्मणा मनसा गिरा।
महाभारतमाख्याय पूर्वां संध्यां प्रमुच्यते॥ ३९४॥

इसी प्रकार वह मन, वाणी और क्रियाद्वारा रातमें जो पाप करता है, उससे प्रातःकाल महाभारतका पाठ करके छूट जाता है॥ ३९४॥

यो गोशतं कनकशृङ्गमयं ददाति
विप्राय वेदविदुषे च बहुश्रुताय।
पुण्यां च भारतकथां शृणुयाच्च नित्यं
तुल्यं फलं भवति तस्य च तस्य चैव॥ ३९५॥

जो गौओंके सींगमें सोना मढ़ाकर वेदवेत्ता एवं बहुज्ञ ब्राह्मणको प्रतिदिन सौ गौएँ दान देता है और जो केवल महाभारत-कथाका श्रवणमात्र करता है, इन दोनोंमेंसे प्रत्येकको बराबर ही फल मिलता है॥ ३९५॥

आख्यानं तदिदमनुत्तमं महार्थं
विज्ञेयं महदिह पर्वसंग्रहेण।
श्रुत्वादौ भवति नृणां सुखावगाहं
विस्तीर्णं लवणजलं यथा प्लवेन॥ ३९६॥

यह महान् अर्थसे भरा हुआ परम उत्तम महाभारत-आख्यान यहाँ पर्वसंग्रहाध्यायके द्वारा समझना चाहिये। इस अध्यायको पहले सुन लेनेपर मनुष्योंके लिये महाभारत-जैसे महासमुद्रमें प्रवेश करना उसी प्रकार सुगम हो जाता है जैसे जहाजकी सहायतासे अनन्त जल-राशिवाले समुद्रमें प्रवेश सहज हो जाता है॥ ३९६॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि पर्वसंग्रहपर्वणि द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आदिपर्वके अन्तर्गत पर्वसंग्रहपर्वमें दूसरा अध्याय पूरा हुआ॥ २॥

(पौष्यपर्व)

तृतीयोऽध्यायः

जनमेजयको सरमाका शाप, जनमेजयद्वारा सोमश्रवाका पुरोहितके पदपर वरण, आरुणि, उपमन्यु, वेद और उत्तंककी गुरुभक्ति तथा उत्तंकका सर्पयज्ञके लिये जनमेजयको प्रोत्साहन देना

सौतिरुवाच

जनमेजयः पारीक्षितः सह भ्रातृभिः कुरुक्षेत्रे दीर्घसत्रमुपास्ते। तस्य भ्रातरस्त्रयः श्रुतसेन उग्रसेनो भीमसेन इति। तेषु तत्सत्रमुपासीनेष्वागच्छत् सारमेयः॥ १॥

उग्रश्रवाजी कहते हैं—परीक्षित्‌के पुत्र जनमेजय अपने भाइयोंके साथ कुरुक्षेत्रमें दीर्घकालतक चलनेवाले सत्रका अनुष्ठान करते थे। उनके तीन भाई थे—श्रुतसेन, उग्रसेन और भीमसेन। वे तीनों उस यज्ञमें बैठे थे। इसी समय देवताओंकी कुतिया सरमाका पुत्र सारमेय वहाँ आया॥ १॥

स जनमेजयस्य भ्रातृभिरभिहतो रोरूयमाणो जननीः समीपमुपागच्छत्॥ २॥

जनमेजयके भाइयोंने उस कुत्तेको मारा। तब वह रोता हुआ अपनी माँके पास गया॥ २॥

तं माता रोरूयमाणमुवाच। किं रोदिषि केनाभिहत इति॥ ३॥

बार-बार रोते हुए अपने उस पुत्रसे माताने पूछा—'बेटा! क्यों रोता है? किसने तुझे मारा है?'॥ ३॥

स एवमुक्तो मातरं प्रत्युवाच जनमेजयस्य भ्रातृभिरभिहतोऽस्मीति॥ ४॥

माताके इस प्रकार पूछनेपर उसने उत्तर दिया—'तुझे जनमेजयके भाइयोंने मारा है'॥ ४॥

तं माता प्रत्युवाच व्यक्तं त्वया तत्रापराद्धं येनाभिहत इति॥ ५॥

तब माता उससे बोली—'बेटा! अवश्य ही तूने वहाँ कोई प्रकटरूपमें अपराध किया होगा, जिसके कारण उन्होंने तुझे मारा है'॥ ५॥

स तां पुनरुवाच नापराध्यामि किंचिन्नावेक्षे हविर्नावलिह इति॥ ६॥

तब उसने मातासे पुनः इस प्रकार कहा—'मैंने कोई अपराध नहीं किया है। न तो उनके हविष्यकी ओर देखा और न उसे चाटा ही है'॥ ६॥

तच्छ्रुत्वा तस्य माता सरमा पुत्रदुःखार्ता तत् सत्रमुपागच्छद् यत्र स जनमेजयः सह भ्रातृभिर्दीर्घसत्रमुपास्ते॥ ७॥

यह सुनकर पुत्रके दुःखसे दुःखी हुई उसकी माता सरमा उस सत्रमें आयी, जहाँ जनमेजय अपने भाइयोंके साथ दीर्घकालीन सत्रका अनुष्ठान कर रहे थे॥ ७॥

स तया क्रुद्धया तत्रोक्तोऽयं मे पुत्रो न किंचिदपराध्यति नावेक्षते हवींषि नावलेढि किमर्थमभिहत इति॥ ८॥

वहाँ क्रोधमें भरी हुई सरमाने जनमेजयसे कहा—'मेरे इस पुत्रने तुम्हारा कोई अपराध नहीं किया था, न तो इसने हविष्यकी ओर देखा और न उसे चाटा ही था, तब तुमने इसे क्यों मारा?'॥ ८॥

न किञ्चिदुक्तवन्तस्ते सा तानुवाच यस्मादयमभिहतोऽनपकारी तस्माददुष्टं त्वां भयमागमिष्यतीति॥ ९॥

किंतु जनमेजय और उनके भाइयोंने इसका कुछ भी उत्तर नहीं दिया। तब सरमाने उनसे कहा, 'मेरा पुत्र निरपराध था, तो भी तुमने इसे मारा है; अतः तुम्हारे ऊपर अकस्मात् ऐसा भय उपस्थित होगा, जिसकी पहलेसे कोई सम्भावना न रही हो'॥ ९॥

जनमेजय एवमुक्तो देवशुन्या सरमया भृशं सम्भ्रान्तो विषण्णश्चासीत्॥ १०॥

देवताओंकी कुतिया सरमाके इस प्रकार शाप देनेपर जनमेजयको बड़ी घबराहट हुई और वे बहुत दुःखी हो गये॥ १०॥

स तस्मिन् सत्रे समाप्ते हास्तिनपुरं प्रत्येत्य पुरोहितमनुरूपमन्विच्छमानः परं यत्नमकरोद् यो मे पापकृत्यां शमयेदिति॥ ११॥

उस सत्रके समाप्त होनेपर वे हस्तिनापुरमें आये और अपनेयोग्य पुरोहितकी खोज करते हुए इसके लिये

बड़ा यत्न करने लगे। पुरोहितके ढूँढ़नेका उद्देश्य यह था कि वह मेरी इस शापरूप पापकृत्याको (जो बल, आयु और प्राणका नाश करनेवाली है) शान्त कर दे॥ ११॥

स कदाचिन्मृगयां गतः पारीक्षितो जनमेजयः कस्मिंश्चित् स्वविषय आश्रममपश्यत्॥ १२॥

एक दिन परीक्षित्पुत्र जनमेजय शिकार खेलनेके लिये वनमें गये। वहाँ उन्होंने एक आश्रम देखा, जो उन्हींके राज्यके किसी प्रदेशमें विद्यमान था॥ १२॥

तत्र कश्चिदृषिरासांचक्रे श्रुतश्रवा नाम। तस्य तपस्यभिरतः पुत्र आस्ते सोमश्रवा नाम॥ १३॥

उस आश्रममें श्रुतश्रवा नामसे प्रसिद्ध एक ऋषि रहते थे। उनके पुत्रका नाम था सोमश्रवा। सोमश्रवा सदा तपस्यामें ही लगे रहते थे॥ १३॥

तस्य तं पुत्रमभिगम्य जनमेजयः पारीक्षितः पौरोहित्याय वव्रे॥ १४॥

परीक्षित्कुमार जनमेजयने महर्षि श्रुतश्रवाके पास जाकर उनके पुत्र सोमश्रवाका पुरोहितपदके लिये वरण किया॥ १४॥

स नमस्कृत्य तमृषिमुवाच भगवन्नयं तव पुत्रो मम पुरोहितोऽस्त्विति॥ १५॥

राजाने पहले महर्षिको नमस्कार करके कहा—'भगवन्! आपके ये पुत्र सोमश्रवा मेरे पुरोहित हों'॥ १५॥

स एवमुक्तः प्रत्युवाच जनमेजयं भो जनमेजय पुत्रोऽयं मम सप्त्यां जातो महातपस्वी स्वाध्याय-सम्पन्नो मत्तपोवीर्यसम्भृतो मच्छुक्रं पीतवत्यास्तस्याः कुक्षौ जातः॥ १६॥

उनके ऐसा कहनेपर श्रुतश्रवाने जनमेजयको इस प्रकार उत्तर दिया—'महाराज जनमेजय! मेरा यह पुत्र सोमश्रवा सर्पिणीके गर्भसे पैदा हुआ है। यह बड़ा तपस्वी और स्वाध्यायशील है। मेरे तपोबलसे इसका भरण-पोषण हुआ है। एक समय एक सर्पिणीने मेरा वीर्यपान कर लिया था, अतः उसीके पेटसे इसका जन्म हुआ है॥ १६॥

समर्थोऽयं भवतः सर्वाः पापकृत्याः शमयितुमन्तरेण महादेवकृत्याम्॥ १७॥

यह तुम्हारी सम्पूर्ण पापकृत्याओं (शापजनित उपद्रवों)-का निवारण करनेमें समर्थ है। केवल भगवान् शंकरकी कृत्याको यह नहीं टाल सकता॥ १७॥

अस्य त्वेकमुपांशुव्रतं यदेनं कश्चिद् ब्राह्मणः कंचिदर्थमभियाचेत् तं तस्मै दद्यादयं यद्येतदुत्सहसे ततो नयस्वैनमिति॥ १८॥

किंतु इसका एक गुप्त नियम है। यदि कोई ब्राह्मण इसके पास आकर इससे किसी वस्तुकी याचना करेगा तो यह उसे उसकी अभीष्ट वस्तु अवश्य देगा। यदि तुम उदारतापूर्वक इसके इस व्यवहारको सहन कर सको अथवा इसकी इच्छापूर्तिका उत्साह दिखा सको तो इसे ले जाओ'॥ १८॥

तेनैवमुक्तो जनमेजयस्तं प्रत्युवाच भगवंस्तत् तथा भविष्यतीति॥ १९॥

श्रुतश्रवाके ऐसा कहनेपर जनमेजयने उत्तर दिया—'भगवन्! सब कुछ उनकी रुचिके अनुसार ही होगा'॥ १९॥

स तं पुरोहितमुपादायोपावृत्तो भ्रातॄनुवाच मयायं वृत उपाध्यायो यदयं ब्रूयात् तत् कार्यमविचारयद्भिर्भवद्भिरिति। तेनैवमुक्ता भ्रातरस्तस्य तथा चक्रुः। स तथा भ्रातॄन् संदिश्य तक्षशिलां प्रत्यभिप्रतस्थे तं च देशं वशे स्थापयामास॥ २०॥

फिर वे सोमश्रवा पुरोहितको साथ लेकर लौटे और अपने भाइयोंसे बोले—'इन्हें मैंने अपना उपाध्याय (पुरोहित) बनाया है। ये जो कुछ भी कहें, उसे तुम्हें बिना किसी सोच-विचारके पालन करना चाहिये।' जनमेजयके ऐसा कहनेपर उनके तीनों भाई पुरोहितकी प्रत्येक आज्ञाका ठीक-ठीक पालन करने लगे। इधर राजा जनमेजय अपने भाइयोंको पूर्वोक्त आदेश देकर स्वयं तक्षशिला जीतनेके लिये चले गये और उस प्रदेशको अपने अधिकारमें कर लिया॥ २०॥

एतस्मिन्नन्तरे कश्चिदृषिर्धौम्यो नामायोदस्तस्य शिष्यास्त्रयो बभूवुरुपमन्युरारुणिर्वेदश्चेति॥ २१॥

(गुरुकी आज्ञाका किस प्रकार पालन करना चाहिये, इस विषयमें आगेका प्रसंग कहा जाता है—) इन्हीं दिनों आयोदधौम्य नामसे प्रसिद्ध एक महर्षि थे। उनके तीन शिष्य हुए—उपमन्यु, आरुणि पांचाल तथा वेद॥ २१॥

स एकं शिष्यमारुणिं पाञ्चाल्यं प्रेषयामास गच्छ केदारखण्डं बधानेति॥ २२॥

एक दिन उपाध्यायने अपने एक शिष्य पांचालदेशवासी आरुणिको खेतपर भेजा और कहा—'वत्स! जाओ, क्यारियोंकी टूटी हुई मेड़ बाँध दो'॥ २२॥

स उपाध्यायेन संदिष्ट आरुणिः पाञ्चाल्यस्तत्र गत्वा तत् केदारखण्डं बद्धुं नाशकत्। स क्लिश्यमानोऽपश्यदुपायं भवत्वेवं करिष्यामि॥ २३॥

उपाध्यायके इस प्रकार आदेश देनेपर पांचालदेशवासी आरुणि वहाँ जाकर उस धानकी क्यारीकी मेड़ बाँधने लगा; परंतु बाँध न सका। मेड़ बाँधनेके प्रयत्नमें ही परिश्रम करते-करते उसे एक उपाय सूझ गया और वह मन-ही-मन बोल उठा—'अच्छा; ऐसा ही करूँ'॥ २३॥

स तत्र संविवेश केदारखण्डे शयाने च तथा तस्मिंस्तदुदकं तस्थौ॥ २४॥

वह क्यारीकी टूटी हुई मेड़की जगह स्वयं ही लेट गया। उसके लेट जानेपर वहाँका बहता हुआ जल रुक गया॥ २४॥

ततः कदाचिदुपाध्याय आयोदो धौम्यः शिष्यानपृच्छत् क्व आरुणिः पाञ्चाल्यो गत इति॥ २५॥

फिर कुछ कालके पश्चात् उपाध्याय आयोदधौम्यने अपने शिष्योंसे पूछा—'पांचालनिवासी आरुणि कहाँ चला गया?'॥ २५॥

ते तं प्रत्यूचुर्भगवंस्त्वयैव प्रेषितो गच्छ केदारखण्डं बधानेति। स एवमुक्तस्ताञ्छिष्यान् प्रत्युवाच तस्मात् तत्र सर्वे गच्छामो यत्र स गत इति॥ २६॥

शिष्योंने उत्तर दिया—'भगवन्! आपहीने तो उसे यह कहकर भेजा था कि 'जाओ, क्यारीकी टूटी हुई मेड़ बाँध दो।' शिष्योंके ऐसा कहनेपर उपाध्यायने उनसे कहा—'तो चलो, हम सब लोग वहीं चलें, जहाँ आरुणि गया है'॥ २६॥

स तत्र गत्वा तस्याह्वानाय शब्दं चकार। भो आरुणे पाञ्चाल्य क्वासि वत्सैहीति॥ २७॥

वहाँ जाकर उपाध्यायने उसे आनेके लिये आवाज दी—'पांचालनिवासी आरुणि! कहाँ हो वत्स! यहाँ आओ'॥ २७॥

स तच्छ्रुत्वा आरुणिरुपाध्यायवाक्यं तस्मात् केदारखण्डात् सहसोत्थाय तमुपाध्यायमुपतस्थे॥ २८॥

उपाध्यायका यह वचन सुनकर आरुणि पांचाल उस क्यारीकी मेड़से उठा और उपाध्यायके पास आकर खड़ा हो गया॥ २८॥

प्रोवाच चैनमयमस्म्यत्र केदारखण्डे निःसरणोदकमवारणीयं संरोद्धुं संविष्टो भगवच्छब्दं श्रुत्वैव सहसा विदार्य केदारखण्डं भवन्तमुपस्थितः॥ २९॥

फिर उनसे विनयपूर्वक बोला—'भगवन्! मैं यह हूँ क्यारीकी टूटी हुई मेड़से निकलते हुए अनिवार्य जलको रोकनेके लिये स्वयं ही यहाँ लेट गया था। इस समय आपकी आवाज सुनते ही सहसा उस मेड़को विदीर्ण करके आपके पास आ खड़ा हुआ॥ २९॥

तदभिवादये भगवन्तमाज्ञापयतु भवान् कमर्थं करवाणीति॥ ३०॥

'मैं आपके चरणोंमें प्रणाम करता हूँ, आप आज्ञा दीजिये, मैं कौन-सा कार्य करूँ?'॥ ३०॥

स एवमुक्त उपाध्यायः प्रत्युवाच यस्माद् भवान् केदारखण्डं विदार्योत्थितस्तस्मादुद्दालक एव नाम्ना भवान् भविष्यतीत्युपाध्यायेनानुगृहीतः॥ ३१॥

आरुणिके ऐसा कहनेपर उपाध्यायने उत्तर दिया—'तुम क्यारीके मेड़को विदीर्ण करके उठे हो, अतः इस उद्दलनकर्मके कारण उद्दालक नामसे ही प्रसिद्ध होओगे।' ऐसा कहकर उपाध्यायने आरुणिको अनुगृहीत किया॥ ३१॥

यस्माच्च त्वया मद्वचनमनुष्ठितं तस्माच्छ्रेयोऽवाप्स्यसि। सर्वे च ते वेदाः प्रतिभास्यन्ति सर्वाणि च धर्मशास्त्राणीति॥ ३२॥

साथ ही यह भी कहा कि, 'तुमने मेरी आज्ञाका पालन किया है, इसलिये तुम कल्याणके भागी होओगे। सम्पूर्ण वेद और समस्त धर्मशास्त्र तुम्हारी बुद्धिमें स्वयं प्रकाशित हो जायँगे'॥ ३२॥

स एवमुक्त उपाध्यायेनेष्टं देशं जगाम। अथापरः शिष्यस्तस्यैवायोदस्य धौम्यस्योपमन्युर्नाम॥ ३३॥

उपाध्यायके इस प्रकार आशीर्वाद देनेपर आरुणि कृतकृत्य हो अपने अभीष्ट देशको चला गया। उन्हीं आयोदधौम्य उपाध्यायका उपमन्यु नामक दूसरा शिष्य था॥ ३३॥

तं चोपाध्यायः प्रेषयामास वत्सोपमन्यो गा रक्षस्वेति॥ ३४॥

उसे उपाध्यायने आदेश दिया—'वत्स उपमन्यु! तुम गौओंकी रक्षा करो'॥ ३४॥

स उपाध्यायवचनादरक्षद् गाः; स चाहनि गा रक्षित्वा दिवसक्षये गुरुगृहमागम्योपाध्यायस्याग्रतः स्थित्वा नमश्चक्रे॥ ३५॥

उपाध्यायकी आज्ञासे उपमन्यु गौओंकी रक्षा करने लगा। वह दिनभर गौओंकी रक्षामें रहकर संध्याके समय गुरुजीके घरपर आता और उनके सामने खड़ा हो नमस्कार करता॥ ३५॥

तमुपाध्यायः पीवानमपश्यदुवाच चैनं वत्सोपमन्यो केन वृत्तिं कल्पयसि पीवानसि दृढमिति॥ ३६॥

उपाध्यायने देखा उपमन्यु खूब मोटा-ताजा हो रहा है, तब उन्होंने पूछा—'बेटा उपमन्यु! तुम कैसे जीविका चलाते हो, जिससे इतने अधिक हृष्ट-पुष्ट हो रहे हो?'॥ ३६॥

स उपाध्यायं प्रत्युवाच भो भैक्ष्येण वृत्तिं कल्पयामीति॥ ३७॥

उसने उपाध्यायसे कहा—'गुरुदेव! मैं भिक्षासे जीवन-निर्वाह करता हूँ'॥ ३७॥

तमुपाध्यायः प्रत्युवाच मय्यनिवेद्य भैक्ष्यं नोपयोक्तव्यमिति। स तथेत्युक्त्वा भैक्ष्यं चरित्वोपाध्यायाय न्यवेदयत्॥ ३८॥

यह सुनकर उपाध्याय उपमन्युसे बोले—'मुझे अर्पण किये बिना तुम्हें भिक्षाका अन्न अपने उपयोगमें नहीं लाना चाहिये।' उपमन्युने 'बहुत अच्छा' कहकर उनकी आज्ञा स्वीकार कर ली। अब वह भिक्षा लाकर उपाध्यायको अर्पण करने लगा॥ ३८॥

स तस्मादुपाध्यायः सर्वमेव भैक्ष्यमगृह्णात्। स तथेत्युक्त्वा पुनररक्षद् गाः। अहनि रक्षित्वा निशामुखे गुरुकुलमागम्य गुरोरग्रतः स्थित्वा नमश्चक्रे॥ ३९॥

उपाध्याय उपमन्युसे सारी भिक्षा ले लेते थे। उपमन्यु 'तथास्तु' कहकर पुनः पूर्ववत् गौओंकी रक्षा करता रहा। वह दिनभर गौओंकी रक्षामें रहता और (संध्याके समय) पुनः गुरुके घरपर आकर गुरुके सामने खड़ा हो नमस्कार करता था॥ ३९॥

तमुपाध्यायस्तथापि पीवानमेव दृष्ट्वोवाच वत्सोपमन्यो सर्वमशेषतस्ते भैक्ष्यं गृह्णामि केनेदानीं वृत्तिं कल्पयसीति॥ ४०॥

उस दशामें भी उपमन्युको पूर्ववत् हृष्ट-पुष्ट ही देखकर उपाध्यायने पूछा—'बेटा उपमन्यु! तुम्हारी सारी भिक्षा तो मैं ले लेता हूँ, फिर तुम इस समय कैसे जीवन-निर्वाह करते हो?'॥ ४०॥

स एवमुक्त उपाध्यायं प्रत्युवाच भगवते निवेद्य पूर्वमपरं चरामि तेन वृत्तिं कल्पयामीति॥ ४१॥

उपाध्यायके ऐसा कहनेपर उपमन्युने उन्हें उत्तर दिया—'भगवन्! पहलेकी लायी हुई भिक्षा आपको अर्पित करके अपने लिये दूसरी भिक्षा लाता हूँ और उसीसे अपनी जीविका चलाता हूँ'॥ ४१॥

तमुपाध्यायः प्रत्युवाच नैषा न्याय्या गुरुवृत्तिरन्येषामपि भैक्ष्योपजीविनां वृत्त्युपरोधं करोषि इत्येवं वर्तमानो लुब्धोऽसीति॥ ४२॥

यह सुनकर उपाध्यायने कहा—'यह न्याययुक्त एवं श्रेष्ठ वृत्ति नहीं है। तुम ऐसा करके दूसरे भिक्षाजीवी लोगोंकी जीविकामें बाधा डालते हो; अतः लोभी हो (तुम्हें दुबारा भिक्षा नहीं लानी चाहिये)'॥ ४२॥

स तथेत्युक्त्वा गा अरक्षत्। रक्षित्वा च पुनरुपाध्यायगृहमागम्योपाध्यायस्याग्रतः स्थित्वा नमश्चक्रे॥ ४३॥

उसने 'तथास्तु' कहकर गुरुकी आज्ञा मान ली और पूर्ववत् गौओंकी रक्षा करने लगा। एक दिन गायें चराकर वह फिर (सायंकालको) उपाध्यायके घर आया और उनके सामने खड़े होकर उसने नमस्कार किया॥ ४३॥

तमुपाध्यायस्तथापि पीवानमेव दृष्ट्वा पुनरुवाच वत्सोपमन्यो अहं ते सर्वं भैक्ष्यं गृह्णामि न चान्यच्चरसि पीवानसि भृशं केन वृत्तिं कल्पयसीति॥ ४४॥

उपाध्यायने उसे फिर भी मोटा-ताजा ही देखकर पूछा—'बेटा उपमन्यु! मैं तुम्हारी सारी भिक्षा ले लेता हूँ और अब तुम दुबारा भिक्षा नहीं माँगते, फिर भी बहुत मोटे हो। आजकल कैसे खाना-पीना चलाते हो?'॥ ४४॥

स एवमुक्तस्तमुपाध्यायं प्रत्युवाच भो एतासां गवां पयसा वृत्तिं कल्पयामीति। तमुवाचोपाध्यायो नैतन्न्याय्यं पय उपयोक्तुं भवतो मया नाभ्यनुज्ञातमिति॥ ४५॥

इस प्रकार पूछनेपर उपमन्युने उपाध्यायको उत्तर दिया—'भगवन्! मैं इन गौओंके दूधसे जीवन-निर्वाह करता हूँ।' (यह सुनकर) उपाध्यायने उससे कहा—'मैंने तुम्हें दूध पीनेकी आज्ञा नहीं दी है, अतः इन गौओंके दूधका उपयोग करना तुम्हारे लिये अनुचित है'॥ ४५॥

स तथेति प्रतिज्ञाय गा रक्षित्वा पुनरुपाध्यायगृहमेत्य गुरोरग्रतः स्थित्वा नमश्चक्रे॥ ४६॥

उपमन्युने 'बहुत अच्छा' कहकर दूध न पीनेकी भी प्रतिज्ञा कर ली और पूर्ववत् गोपालन करता रहा। एक दिन गोचारणके पश्चात् वह पुनः उपाध्यायके घर आया और उनके सामने खड़े होकर उसने नमस्कार किया॥ ४६॥

तमुपाध्यायः पीवानमेव दृष्ट्वोवाच वत्सोपमन्यो भैक्ष्यं नाश्नासि न चान्यच्चरसि पयो न पिबसि पीवानसि भृशं केनेदानीं वृत्तिं कल्पयसीति॥ ४७॥

उपाध्यायने अब भी उसे हृष्ट-पुष्ट ही देखकर पूछा—'बेटा उपमन्यु! तुम भिक्षाका अन्न नहीं खाते, दुबारा भिक्षा भी नहीं माँगते और गौओंका दूध भी नहीं पीते; फिर भी बहुत मोटे हो। इस समय कैसे निर्वाह करते हो?'॥ ४७॥

स एवमुक्त उपाध्यायं प्रत्युवाच भोः फेनं पिबामि यमिमे वत्सा मातृणां स्तनात् पिबन्त उद्गिरन्ति॥ ४८॥

इस प्रकार पूछनेपर उसने उपाध्यायको उत्तर दिया—'भगवन्! ये बछड़े अपनी माताओंके स्तनोंका दूध पीते समय जो फेन उगल देते हैं, उसीको पी लेता हूँ'॥ ४८॥

तमुपाध्यायः प्रत्युवाच—एते त्वदनुकम्पया गुणवन्तो वत्साः प्रभूततरं फेनमुद्गिरन्ति। तदेषामपि वत्सानां वृत्त्युपरोधं करोष्येवं वर्तमानः। फेनमपि भवान् न पातुमर्हतीति। स तथेति प्रतिश्रुत्य पुनररक्षद् गाः॥ ४९॥

यह सुनकर उपाध्यायने कहा—'ये बछड़े उत्तम गुणोंसे युक्त हैं, अतः तुमपर दया करके बहुत-सा फेन उगल देते होंगे। इसलिये तुम फेन पीकर तो इन सभी बछड़ोंकी जीविकामें बाधा उपस्थित करते हो, अतः तुमसे फेन भी न पिया करो।' उपमन्युने 'बहुत अच्छा' कहकर उसे न पीनेकी प्रतिज्ञा कर ली और पूर्ववत् गौओंकी रक्षा करने लगा॥ ४९॥

तथा प्रतिषिद्धो भैक्ष्यं नाश्नाति न चान्यच्चरति नान्यो न पिबति फेनं नोपयुङ्क्ते। स कदाचिदरण्ये बुभुक्षार्तोऽर्कपत्राण्यभक्षयत्॥ ५०॥

इस प्रकार मना करनेपर उपमन्यु न तो भिक्षाका अन्न खाता, न दुबारा भिक्षा लाता, न गौओंका दूध पीता और न बछड़ोंके फेनको ही उपयोगमें लाता था (अब वह भूखा रहने लगा)। एक दिन वनमें भूखसे पीड़ित होकर उसने आकके पत्ते चबा लिये॥ ५०॥

स तैरर्कपत्रैर्भक्षितैः क्षारतिक्तकटुरूक्षैर्ग्नीक्ष्णविपाकैश्चक्षुष्युपहतोऽन्धो बभूव। ततः सोऽन्धोऽपि चङ्क्रम्यमाणः कूपे पपात॥ ५१॥

आकके पत्ते खारे, तीखे, कड़वे और रूखे होते हैं उनका परिणाम तीक्ष्ण होता है (पाचनकालमें वे भीतर अंदर आगकी ज्वाला-सी उठा देते हैं); अतः उनके खानेसे उपमन्युकी आँखोंकी ज्योति नष्ट हो गयी वह अन्धा हो गया। अन्धा होनेपर भी वह इधर-उधर घूमता रहा; अतः कुएँमें गिर पड़ा॥ ५१॥

अथ तस्मिन्ननागच्छति सूर्ये चास्ताचलावलम्बिनि उपाध्यायः शिष्यानवोचत्—नायात्युपमन्युस्त ऊचुर्वनं गतो गा रक्षितुमिति॥ ५२॥

तदनन्तर जब सूर्यदेव अस्ताचलकी चोटीपर पहुँच गये, तब भी उपमन्यु गुरुके घरपर नहीं आया, तो उपाध्यायने शिष्योंसे पूछा—'उपमन्यु क्यों नहीं आया?' वे बोले—'वह तो गाय चरानेके लिये वनमें गया था'॥ ५२॥

तानाह उपाध्यायो मयोपमन्युः सर्वतः प्रतिषिद्धः स नियतं कुपितस्ततो नागच्छति चिरं ततोऽन्वेष्य इत्येवमुक्त्वा शिष्यैः सार्धमरण्यं गत्वा तस्याह्वानाय शब्दं चकार भो उपमन्यो क्वासि वत्सेहीति॥ ५३॥

तब उपाध्यायने कहा—'मैंने उपमन्युकी जीविकाके सभी मार्ग बंद कर दिये हैं, अतः निश्चय ही वह रूठ गया है; इसीलिये इतनी देर हो जानेपर भी वह नहीं आया, अतः हमें चलकर उसे खोजना चाहिये।' ऐसा कहकर शिष्योंके साथ वनमें जाकर उपाध्यायने उसे बुलानेके लिये आवाज दी—'ओ उपमन्यु! कहाँ हो बेटा! चले आओ'॥ ५३॥

स उपाध्यायवचनं श्रुत्वा प्रत्युवाचोच्चैरयमस्मिन् कूपे पतितोऽहमिति तमुपाध्यायः प्रत्युवाच कथं त्वमस्मिन् कूपे पतित इति॥ ५४॥

उसने उपाध्यायकी बात सुनकर उच्च स्वरसे उत्तर दिया—'गुरुजी! मैं कुएँमें गिर पड़ा हूँ।' तब उपाध्यायने उससे पूछा—'वत्स! तुम कुएँमें कैसे गिर गये?'॥ ५४॥

स उपाध्यायं प्रत्युवाच—अर्कपत्राणि भक्षयित्वान्धीभूतोऽस्म्यतः कूपे पतित इति॥ ५५॥

उसने उपाध्यायको उत्तर दिया—'भगवन्! मैं आकके पत्ते खाकर अन्धा हो गया हूँ; इसीलिये कुएँमें गिर गया'॥ ५५॥

तमुपाध्यायः प्रत्युवाच—अश्विनौ स्तुहि। तौ देवभिषजौ त्वां चक्षुष्मन्तं कर्तारौविति। स एवमुक्त उपाध्यायेनोपमन्युरश्विनौ स्तोतुमुपचक्रमे देवावश्विनौ वाग्भिर्ऋग्भिः॥ ५६॥

तब उपाध्यायने कहा—'वत्स! दोनों अश्विनीकुमार देवताओंके वैद्य हैं। तुम उन्हींकी स्तुति करो। वे तुम्हारी आँखें ठीक कर देंगे।' उपाध्यायके ऐसा कहनेपर उपमन्युने अश्विनीकुमार नामक दोनों देवताओंकी ऋग्वेदके मन्त्रोंद्वारा स्तुति प्रारम्भ की॥ ५६॥

प्रपूर्वगौ पूर्वजौ चित्रभानू
गिरा वाऽऽशंसामि तपसा ह्यनन्तौ।
दिव्यौ सुपर्णौ विरजौ विमाना-
वधिक्षिपन्तौ भुवनानि विश्वा॥ ५७॥

हे अश्विनीकुमारो! आप दोनों सृष्टिसे पहले विद्यमान थे। आप ही पूर्वज हैं। आप ही चित्रभानु हैं। मैं वाणी और तपके द्वारा आपकी स्तुति करता हूँ; क्योंकि आप अनन्त हैं। दिव्यस्वरूप हैं। सुन्दर पंखवाले दो पक्षीकी भाँति सदा साथ रहनेवाले हैं। रजोगुणशून्य तथा अभिमानसे रहित हैं। सम्पूर्ण विश्वमें आरोग्यका विस्तार करते हैं॥ ५७॥

हिरण्मयौ शकुनी साम्परायौ
नासत्यदस्रौ सुनसौ वै जयन्तौ।
शुक्लं वयन्तौ तरसा सुवेमा-
वधिव्ययन्तावसितं विवस्वतः॥ ५८॥

सुनहरे पंखवाले दो सुन्दर विहंगमोंकी भाँति आप दोनों बन्धु बड़े सुन्दर हैं। पारलौकिक उन्नतिके साधनोंसे सम्पन्न हैं। नासत्य तथा दस्र—ये दोनों आपके नाम हैं। आपकी नासिका बड़ी सुन्दर है। आप दोनों निश्चितरूपसे विजय प्राप्त करनेवाले हैं। आप ही विवस्वान् (सूर्यदेव)-के सुपुत्र हैं; अतः स्वयं ही सूर्यरूपमें स्थित हो दिन तथा रात्रिरूप काले तन्तुओंसे संवत्सररूप वस्त्र बुनते रहते हैं और उस वस्त्रद्वारा वेगपूर्वक देवयान और पितृयान नामक सुन्दर मार्गोंको प्राप्त कराते हैं॥ ५८॥

ग्रस्तां सुपर्णस्य बलेन वर्तिका-
ममुञ्चतामश्विनौ सौभगाय।
तावत् सुवृत्तावनमन्त मायया
वसत्तमा गा अरुणा उदावहन्॥ ५९॥

परमात्माकी कालशक्तिने जीवरूपी पक्षीको अपना ग्रास बना रखा है। आप दोनों अश्विनीकुमार नामक जीवन्मुक्त महापुरुषोंने ज्ञान देकर कैवल्यरूप महान् सौभाग्यकी प्राप्तिके लिये उस जीवको कालके बन्धनसे मुक्त किया है। मायाके सहवासी अत्यन्त अज्ञानी जीव जबतक राग आदि विषयोंसे आक्रान्त हो अपनी इन्द्रियोंके समक्ष नत-मस्तक रहते हैं, तबतक वे अपने-आपको शरीरसे आबद्ध ही मानते हैं॥ ५९॥

षष्टिश्च गावस्त्रिशताश्च धेनव
एकं वत्सं सुवते तं दुहन्ति।
नानागोष्ठा विहिता एकदोहना-
स्तावश्विनौ दुहतो घर्ममुक्थ्यम्॥ ६०॥

दिन एवं रात—ये मनोवांछित फल देनेवाली तीन सौ साठ दुधारू गौएँ हैं। वे सब एक ही संवत्सररूपी बछड़ेको जन्म देती और उसको पुष्ट करती हैं। वह बछड़ा सबका उत्पादक और संहारक है। जिज्ञासु पुरुष उक्त बछड़ेको निमित्त बनाकर उन गौओंसे विभिन्न फल देनेवाली शास्त्रविहित क्रियाएँ दुहते रहते हैं; उन सब क्रियाओंका एक (तत्त्वज्ञानकी इच्छा) ही दोहनीय फल है। पूर्वोक्त गौओंको आप दोनों अश्विनीकुमार ही दुहते हैं॥ ६०॥

एकां नाभिं सप्तशता अराः श्रिताः
प्रधिष्वन्या विंशतिरर्पिता अराः।
अनेमि चक्रं परिवर्ततेऽजरं
मायाश्विनौ समनक्ति चर्षणी॥ ६१॥

हे अश्विनीकुमारो! इस कालचक्रकी एकमात्र संवत्सर ही नाभि है, जिसपर रात और दिन मिलाकर सात सौ बीस अरे टिके हुए हैं। वे सब बारह मासरूपी प्रधियों (अरोंको थामनेवाले पुट्ठों)-में जुड़े हुए हैं। अश्विनीकुमारो! यह अविनाशी एवं मायामय कालचक्र बिना नेमिके ही अनियत गतिसे घूमता तथा इहलोक और परलोक दोनों लोकोंकी प्रजाओंका विनाश करता रहता है॥ ६१॥

एकं चक्रं वर्तते द्वादशारं
षण्णाभिमेकाक्षमृतस्य धारणम्।
यस्मिन् देवा अधि विश्वे विषक्ता-
स्तावश्विनौ मुञ्चतं मा विषीदतम्॥ ६२॥

अश्विनीकुमारो! मेष आदि बारह राशियाँ जिसके बारह अरे, छहों ऋतुएँ जिसकी छः नाभियाँ हैं और संवत्सर जिसकी एक धुरी है, वह एकमात्र कालचक्र सब ओर चल रहा है। यही कर्मफलको धारण करनेवाला आधार है। इसीमें सम्पूर्ण कालाभिमानी देवता स्थित हैं। आप दोनों मुझे इस कालचक्रसे मुक्त करें, क्योंकि मैं यहाँ जन्म आदिके दुःखसे अत्यन्त कष्ट पा रहा हूँ॥ ६२॥

अश्विनाविन्दुममृतं वृत्तभूयौ
तिरोधत्तामश्विनौ दासपत्नी।
हित्वा गिरिमश्विनौ गा मुदा चरन्तौ
तद्वृष्टिमह्ना प्रस्थितौ बलस्य॥ ६३॥

हे अश्विनीकुमारो! आप दोनोंमें सदाचारका बाहुल्य है। आप अपने सुयशसे चन्द्रमा, अमृत तथा जलकी उज्ज्वलताको भी तिरस्कृत कर देते हैं। इस समय मेरु पर्वतको छोड़कर आप पृथ्वीपर सानन्द विचर रहे हैं। आनन्द और बलकी वर्षा करनेके लिये ही आप दोनों भाई दिनमें प्रस्थान करते हैं॥ ६३॥

युवां दिशो जनयथो दशाग्रे
समानं मूर्ध्नि रथयानं वियन्ति।
तासां यातमृषयोऽनुप्रयान्ति
देवा मनुष्याः क्षितिमाचरन्ति॥ ६४॥

हे अश्विनीकुमारो! आप दोनों ही सृष्टिके प्रारम्भकालमें पूर्वादि दसों दिशाओंको प्रकट करते—उनका ज्ञान कराते हैं। उन दिशाओंके मस्तक अर्थात् अन्तरिक्ष-लोकमें रथसे यात्रा करनेवाले तथा सबको समानरूपसे प्रकाश देनेवाले सूर्यदेवका और आकाश आदि पाँच भूतोंका भी आप ही ज्ञान कराते हैं। उन-उन दिशाओंमें सूर्यका जाना देखकर ऋषिलोग भी उनका अनुसरण करते हैं तथा देवता और मनुष्य (अपने अधिकारके अनुसार) स्वर्ग या मर्त्यलोककी भूमिका उपयोग करते हैं॥ ६४॥

युवां वर्णान् विकुरुथो विश्वरूपां-
स्तेऽधिक्षियन्ते भुवनानि विश्वा।
ते भानवोऽप्यनुसृताश्चरन्ति
देवा मनुष्याः क्षितिमाचरन्ति॥ ६५॥

हे अश्विनीकुमारो! आप अनेक रंगकी वस्तुओंके सम्मिश्रणसे सब प्रकारकी ओषधियाँ तैयार करते हैं, जो सम्पूर्ण विश्वका पोषण करती हैं। वे प्रकाशमान ओषधियाँ सदा आपका अनुसरण करती हुई आपके साथ ही विचरती हैं। देवता और मनुष्य आदि प्राणी अपने अधिकारके अनुसार स्वर्ग और मर्त्यलोकको लक्ष्य करके रहकर उन ओषधियोंका सेवन करते हैं॥ ६५॥

वां नासत्यावश्विनौ वां महेऽहं
स्रजं च यां बिभृथः पुष्करस्य।
ते नासत्यावमृतावृतावृधा-
वृते देवास्तत्प्रपदे न सूते॥ ६६॥

अश्विनीकुमारो! आप ही दोनों 'नासत्य' नामसे प्रसिद्ध हैं। मैं आपकी तथा आपने जो कमलकी माला धारण कर रखी है, उसकी पूजा करता हूँ। आप अमर हैं और इसके साथ ही सत्यका पोषण और विस्तार करनेवाले हैं। आपके सहयोगके बिना देवता भी उस सनातन सत्यकी प्राप्तिमें समर्थ नहीं हैं॥ ६६॥

वृषणं गर्भं लभेतां युवानौ
गतासुरेतत् प्रपदेन सूते।
जातो मातरमत्ति गर्भ-
स्तावश्विनौ मुञ्चथो जीवसे गाः॥ ६७॥

माता-पिता संतानोत्पत्तिके लिये पहले मुखसे अन्नरूप गर्भ धारण करते हैं। तत्पश्चात् पुरुषोंमें वीर्यरूपमें और स्त्रीमें रजोरूपसे परिणत होकर वह अन्न जड शरीर बन जाता है। तत्पश्चात् जन्म लेनेवाला गर्भस्थ जीव उत्पन्न होते ही माताके स्तनोंका दूध पीने लगता है। हे अश्विनीकुमारो! पूर्वोक्त रूपसे संसार-बन्धनमें बँधे हुए जीवोंको आप तत्त्वज्ञान देकर मुक्त करते हैं। मेरे जीवन-निर्वाहके लिये मेरी नेत्रेन्द्रियको भी रोगसे मुक्त करें॥ ६७॥

स्तोतुं न शक्नोमि गुणैर्भवन्तौ
चक्षुर्विहीनः पथि सम्प्रमोहः।
दुर्गेऽहमस्मिन् पतितोऽस्मि कूपे
युवां शरण्यौ शरणं प्रपद्ये॥ ६८॥

अश्विनीकुमारो! मैं आपके गुणोंका बखान करके आप दोनोंकी स्तुति नहीं कर सकता। इस समय नेत्रहीन (अन्धा) हो गया हूँ। रास्ता पहचाननेमें भी भूल हो जाती है; इसीलिये इस दुर्गम कूपमें गिर पड़ा हूँ। आप दोनों शरणागतवत्सल देवता हैं; अतः मैं आपकी शरण लेता हूँ॥ ६८॥

इत्येवं तेनाभिष्टुतावश्विनावाजग्मतुराहतुश्चैनं प्रीतौ स्व एष तेऽपूपोऽशानैनमिति॥ ६९॥

इस प्रकार उपमन्युके स्तवन करनेपर दोनों अश्विनीकुमार वहाँ आये और उससे बोले—'उपमन्यु! हम तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हैं। यह तुम्हारे खानेके लिये पूआ है, इसे खा लो'॥ ६९॥

स एवमुक्तः प्रत्युवाच नानृतमूचतुर्भगवन्तौ न त्वहमेतमपूपमुपयोक्तुमुत्सहे गुरवेऽनिवेद्येति॥ ७०॥

उनके ऐसा कहनेपर उपमन्यु बोला—'भगवन्! आपने ठीक कहा है, तथापि मैं गुरुजीको निवेदन किये बिना इस पूएको अपने उपयोगमें नहीं ला सकता'॥ ७०॥

ततस्तमश्विनावूचतुः—आवाभ्यां पुरस्ताद् भवत उपाध्यायेनैवमेवाभिष्टुताभ्यामपूपो दत्त उपयुक्तः स तेनानिवेद्य गुरवे त्वमपि तथैव कुरुष्व यथा कृतमुपाध्यायेनेति॥ ७१॥

तब दोनों अश्विनीकुमार बोले—'वत्स! पहले तुम्हारे उपाध्यायने भी हमारी इसी प्रकार स्तुति की थी। उस समय हमने उन्हें जो पूआ दिया था, उसे उन्होंने अपने गुरुजीको निवेदन किये बिना ही काममें ले लिया था। तुम्हारे उपाध्यायने जैसा किया है, वैसा ही तुम भी करो'॥ ७१॥

स एवमुक्तः प्रत्युवाच—एतत् प्रत्यनुनये भवन्तावश्विनौ नोत्सहेऽहमनिवेद्य गुरवेऽपूपमुपयोक्तुमिति॥ ७२॥

उनके ऐसा कहनेपर उपमन्युने उत्तर दिया—'इसके लिये तो आप दोनों अश्विनीकुमारोंकी मैं बड़ी अनुनय-विनय करता हूँ। गुरुजीके निवेदन किये बिना मैं इस पूएको नहीं खा सकता'॥ ७२॥

तमश्विनावाहतुः प्रीतौ स्वस्तवानया गुरुभक्त्या उपाध्यायस्य ते काष्णायसा दन्ता भवतोऽपि हिरण्मया भविष्यन्ति चक्षुष्मांश्च भविष्यसीति श्रेयश्चावाप्स्यसीति॥ ७३॥

तब अश्विनीकुमार उससे बोले, 'तुम्हारी इस गुरु-भक्तिसे हम बड़े प्रसन्न हैं। तुम्हारे उपाध्यायके दाँत काले लोहेके समान हैं। तुम्हारे दाँत सुवर्णमय हो जायँगे। तुम्हारी आँखें भी ठीक हो जायँगी और तुम कल्याणके भागी भी होओगे'॥ ७३॥

स एवमुक्तोऽश्विभ्यां लब्धचक्षुरुपाध्यायसकाशमागम्याभ्यवादयत्॥ ७४॥

अश्विनीकुमारोंके ऐसा कहनेपर उपमन्युको आँखें मिल गयीं और उसने उपाध्यायके समीप आकर उन्हें प्रणाम किया॥ ७४॥

आचचक्षे च स चास्य प्रीतिमान् बभूव॥ ७५॥

तथा सब बातें गुरुजीसे कह सुनायीं। उपाध्याय उसके ऊपर बड़े प्रसन्न हुए॥ ७५॥

आह चैनं यथाश्विनावाहतुस्तथा त्वं श्रेयोऽवाप्स्यसि॥ ७६॥

और उससे बोले—'जैसा अश्विनीकुमारोंने कहा है, उसी प्रकार तुम कल्याणके भागी होओगे॥ ७६॥

सर्वे च ते वेदाः प्रतिभास्यन्ति सर्वाणि च धर्मशास्त्राणीति। एषा तस्यापि परीक्षोपमन्योः॥ ७७॥

'तुम्हारी बुद्धिमें सम्पूर्ण वेद और सभी धर्मशास्त्र स्वतः स्फुरित हो जायँगे।' इस प्रकार यह उपमन्युकी परीक्षा बतायी गयी॥ ७७॥

अथापरः शिष्यस्तस्यैवायोदस्य धौम्यस्य वेदो नाम तमुपाध्यायः समादिदेश वत्स वेद इहास्यतां तावन्मम गृहे कंचित् कालं शुश्रूषुणा च भवितव्यं श्रेयस्ते भविष्यतीति॥ ७८॥

उन्हीं आयोदधौम्यके तीसरे शिष्य थे वेद। उन्हें उपाध्यायने आज्ञा दी, 'वत्स वेद! तुम कुछ कालतक यहाँ मेरे घरमें निवास करो। सदा शुश्रूषामें लगे रहना, इससे तुम्हारा कल्याण होगा'॥ ७८॥

स तथेत्युक्त्वा गुरुकुले दीर्घकालं गुरुशुश्रूषणपरोऽवसद् गौरिव नित्यं गुरुणा धूर्षु नियोज्यमानः शीतोष्णक्षुत्तृष्णादुःखसहः सर्वत्राप्रतिकूलस्तस्य महता कालेन गुरुः परितोषं जगाम॥ ७९॥

वेद 'बहुत अच्छा' कहकर गुरुके घरमें रहने लगे। उन्होंने दीर्घकालतक गुरुकी सेवा की। गुरुजी उन्हें बैलकी तरह सदा भारी बोझ ढोनेमें लगाये रखते थे और वेद सरदी-गरमी तथा भूख-प्यासका कष्ट सहन करते हुए सभी अवस्थाओंमें गुरुके अनुकूल ही रहते थे। इस प्रकार जब बहुत समय बीत गया, तब गुरुजी उनपर पूर्णतः संतुष्ट हुए॥ ७९॥

तत्परितोषाच्च श्रेयः सर्वज्ञतां चावाप। एषा तस्यापि परीक्षा वेदस्य॥ ८०॥

गुरुके संतोषसे वेदने श्रेय तथा सर्वज्ञता प्राप्त कर ली। इस प्रकार यह वेदकी परीक्षाका वृत्तान्त कहा गया॥ ८०॥

स उपाध्यायेनानुज्ञातः समावृतस्तस्माद् गुरुकुलवासाद् गृहाश्रमं प्रत्यपद्यत। तस्यापि स्वगृहे वसतस्त्रयः शिष्या बभूवुः स शिष्यान् न किंचिदुवाच कर्म वा क्रियतां गुरुशुश्रूषा चेति। दुःखाभिज्ञो हि गुरुकुलवासस्य शिष्यान् परिक्लेशेन योजयितुं नेयेष॥ ८१॥

तदनन्तर उपाध्यायकी आज्ञा होनेपर वेद समावर्तन-संस्कारके पश्चात् स्नातक होकर गुरुगृहसे लौटे। घर आकर उन्होंने गृहस्थाश्रममें प्रवेश किया। अपने घरमें निवास करते समय आचार्य वेदके पास तीन शिष्य रहते थे, किंतु वे 'काम करो अथवा गुरुसेवामें लगे रहो' इत्यादि रूपसे किसी प्रकारका आदेश अपने शिष्योंको नहीं देते थे; क्योंकि गुरुके घरमें रहनेपर छात्रोंको जो कष्ट सहन करना पड़ता है, उससे वे परिचित थे। इसलिये उनके मनमें अपने शिष्योंको क्लेशदायक कार्यमें लगानेकी कभी इच्छा नहीं होती थी॥ ८१॥

अथ कस्मिंश्चित् काले वेदं ब्राह्मणं जनमेजयः पौष्यश्च क्षत्रियावुपेत्य वरयित्वोपाध्यायं चक्रतुः॥ ८२॥ स कदाचिद् याज्यकार्येणाभिप्रस्थित उत्तङ्कनामानं शिष्यं नियोजयामास॥ ८३॥ भो वत् किंचिदस्मद्गृहे

परिहीयते तदिच्छाम्यहमपरिहीयमानं भवता क्रियमाणमिति स एवं प्रतिसंदिश्योत्तङ्कं वेदः प्रवासं जगाम॥ ८४॥

एक समयकी बात है—ब्रह्मवेत्ता आचार्य वेदके पास आकर 'जनमेजय और पौष्य' नामवाले दो क्षत्रियोंने उनका वरण किया और उन्हें अपना उपाध्याय बना लिया। तदनन्तर एक दिन उपाध्याय वेदने यजमानके कार्यसे बाहर जानेके लिये उद्यत हो उत्तंक नामवाले शिष्यको अग्निहोत्र आदिके कार्यमें नियुक्त किया और कहा—'वत्स उत्तंक! मेरे घरमें मेरे बिना जिस किसी वस्तुकी कमी हो जाय, उसकी पूर्ति तुम कर देना, ऐसी मेरी इच्छा है।' उत्तंकको ऐसा आदेश देकर आचार्य वेद बाहर चले गये॥ ८२—८४॥

अथोत्तङ्कः शुश्रूषुर्गुरुनियोगमनुतिष्ठमानो गुरुकुले वसति स्म। स तत्र वसमान उपाध्यायस्त्रीभिः सहिताभिराहूयोक्तः॥ ८५॥

उत्तंक गुरुकी आज्ञाका पालन करते हुए सेवापरायण हो गुरुके घरमें रहने लगे। वहाँ रहते समय उन्हें उपाध्यायके आश्रयमें रहनेवाली सब स्त्रियोंने मिलकर बुलाया और कहा—॥ ८५॥

उपाध्यायानी ते ऋतुमती, उपाध्यायश्च प्रोषितोऽस्या यथायमृतुर्वन्ध्यो न भवति तथा क्रियतामेषा विषीदतीति॥ ८६॥

तुम्हारी गुरुपत्नी रजस्वला हुई हैं और उपाध्याय परदेश गये हैं। उनका यह ऋतुकाल जिस प्रकार निष्फल न हो, वैसा करो; इसके लिये गुरुपत्नी बड़ी चिन्तामें पड़ी हैं॥ ८६॥

एवमुक्तस्ताः स्त्रियः प्रत्युवाच न मया स्त्रीणां उञ्छनादिदमकार्यं करणीयम्। न ह्यहमुपाध्यायेन संदिष्टोऽकार्यमपि त्वया कार्यमिति॥ ८७॥

यह सुनकर उत्तंकने उत्तर दिया—'मैं स्त्रियोंके उञ्छनसे यह न करनेयोग्य निन्द्य कर्म नहीं कर सकता। उपाध्यायने मुझे ऐसी आज्ञा नहीं दी है कि 'तुम न करनेयोग्य कार्य भी कर डालना'॥ ८७॥

तस्य पुनरुपाध्यायः कालान्तरेण गृहमाजगाम तान् प्रवासात्। स तु तद् वृत्तं तस्याशेषमुपलभ्य तेनमानभूत्॥ ८८॥

इसके बाद कुछ काल बीतनेपर उपाध्याय उस परदेशसे अपने घर लौट आये। आनेपर उन्हें उत्तंकका सारा वृत्तान्त मालूम हुआ, इससे वे बड़े प्रसन्न हुए॥ ८८॥

उवाच चैनं वत्सोत्तङ्क किं ते प्रियं करवाणीति। धर्मतो हि शुश्रूषितोऽस्मि भवता तेन प्रीतिः परस्परेण नौ संवृद्धा तदनुजाने भवन्तं सर्वानेव कामानवाप्स्यसि गम्यतामिति॥ ८९॥

और बोले—'बेटा उत्तंक! तुम्हारा कौन-सा प्रिय कार्य करूँ? तुमने धर्मपूर्वक मेरी सेवा की है। इससे हम दोनोंकी एक-दूसरेके प्रति प्रीति बहुत बढ़ गयी है। अब मैं तुम्हें घर लौटनेकी आज्ञा देता हूँ—जाओ, तुम्हारी सभी कामनाएँ पूर्ण होंगी'॥ ८९॥

स एवमुक्तः प्रत्युवाच किं ते प्रियं करवाणीति, एवमाहुः॥ ९०॥

गुरुके ऐसा कहनेपर उत्तंक बोले—'भगवन्! मैं आपका कौन-सा प्रिय कार्य करूँ? वृद्ध पुरुष कहते भी हैं॥ ९०॥

यश्चाधर्मेण वै ब्रूयाद् यश्चाधर्मेण पृच्छति। तयोरन्यतरः प्रैति विद्वेषं चाधिगच्छति॥ ९१॥

जो अधर्मपूर्वक अध्यापन या उपदेश करता है अथवा जो अधर्मपूर्वक प्रश्न या अध्ययन करता है, उन दोनोंमेंसे एक (गुरु अथवा शिष्य) मृत्यु एवं विद्वेषको प्राप्त होता है॥ ९१॥

सोऽहमनुज्ञातो भवतेच्छामीष्टं गुर्वर्थमुपहर्तुमिति। तेनैवमुक्त उपाध्यायः प्रत्युवाच वत्सोत्तङ्क उष्यतां तावदिति॥ ९२॥

अतः आपकी आज्ञा मिलनेपर मैं अभीष्ट गुरु-दक्षिणा भेंट करना चाहता हूँ।' उत्तंकके ऐसा कहनेपर उपाध्याय बोले—'बेटा उत्तंक! तब कुछ दिन और यहीं ठहरो'॥ ९२॥

स कदाचिदुपाध्यायमाहोत्तङ्क आज्ञापयतु भवान् किं ते प्रियमुपाहरामि गुर्वर्थमिति॥ ९३॥

तदनन्तर किसी दिन उत्तंकने फिर उपाध्यायसे कहा—'भगवन्! आज्ञा दीजिये, मैं आपको कौन-सी प्रिय वस्तु गुरुदक्षिणाके रूपमें भेंट करूँ?'॥ ९३॥

तमुपाध्यायः प्रत्युवाच वत्सोत्तङ्क बहुशो मां चोदयसि गुर्वर्थमुपाहरामीति तद् गच्छैनां प्रविश्योपाध्यायानीं पृच्छ किमुपाहरामीति॥ ९४॥ एषा यद् ब्रवीति तदुपाहरस्वेति।

यह सुनकर उपाध्यायने उनसे कहा—'वत्स उत्तंक!

तुम बार-बार मुझसे कहते हो कि 'मैं क्या गुरुदक्षिणा भेंट करूँ?' अतः जाओ, घरके भीतर प्रवेश करके अपनी गुरुपत्नीसे पूछ लो कि 'मैं क्या गुरुदक्षिणा भेंट करूँ?'॥ ९४॥ 'वे जो बतावें वही वस्तु उन्हें भेंट करो।'

स एवमुक्त उपाध्यायेनोपाध्यायानीमपृच्छद् भगवत्युपाध्यायेनास्म्यनुज्ञातो गृहं गन्तुमिच्छामीष्टं ते गुर्वर्थमुपहृत्यानृणो गन्तुमिति॥ ९५॥ तदाज्ञापयतु भवती किमुपाहरामि गुर्वर्थमिति।

उपाध्यायके ऐसा कहनेपर उत्तंकने गुरुपत्नीसे पूछा—'देवि! उपाध्यायने मुझे घर जानेकी आज्ञा दी है, अतः मैं आपको कोई अभीष्ट वस्तु गुरुदक्षिणाके रूपमें भेंट करके गुरुके ऋणसे उऋण होकर जाना चाहता हूँ॥ ९५॥ अतः आप आज्ञा दें; मैं गुरुदक्षिणाके रूपमें कौन-सी वस्तु ला दूँ।'

सैवमुक्तोपाध्यायानी तमुत्तङ्कं प्रत्युवाच गच्छ पौष्यं प्रति राजानं कुण्डले भिक्षितुं तस्य क्षत्रियया पिनद्धे॥ ९६॥

उत्तंकके ऐसा कहनेपर गुरुपत्नी उनसे बोलीं—'वत्स! तुम राजा पौष्यके यहाँ, उनकी क्षत्राणी पत्नीने जो दोनों कुण्डल पहन रखे हैं, उन्हें माँग लानेके लिये जाओ॥ ९६॥

ते आनयस्व चतुर्थेऽहनि पुण्यकं भविता ताभ्यामाबद्धाभ्यां शोभमाना ब्राह्मणान् परिवेष्टुमिच्छामि। तत् सम्पादयस्व, एवं हि कुर्वतः श्रेयो भवितान्यथा कुतः श्रेय इति॥ ९७॥

'और उन कुण्डलोंको शीघ्र ले आओ। आजके चौथे दिन पुण्यक व्रत होनेवाला है, मैं उस दिन कानोंमें उन कुण्डलोंको पहनकर सुशोभित हो ब्राह्मणोंको भोजन परोसना चाहती हूँ; अतः तुम मेरा यह मनोरथ पूर्ण करो। तुम्हारा कल्याण होगा। अन्यथा कल्याणकी प्राप्ति कैसे सम्भव है?'॥ ९७॥

स एवमुक्तस्तया प्रातिष्ठतोत्तङ्कः स पथि गच्छन्नपश्यदृषभमतिप्रमाणं तमधिरूढं च पुरुषमतिप्रमाणमेव स पुरुष उत्तङ्कमभ्यभाषत॥ ९८॥

गुरुपत्नीके ऐसा कहनेपर उत्तंक वहाँसे चल दिये। मार्गमें जाते समय उन्होंने एक बहुत बड़े बैलको और उसपर चढ़े हुए एक विशालकाय पुरुषको भी देखा। उस पुरुषने उत्तंकसे कहा—॥ ९८॥

भो उत्तङ्कैतत् पुरीषमस्य ऋषभस्य भक्षयस्वेति स एवमुक्तो नैच्छत्॥ ९९॥

'उत्तंक! तुम इस बैलका गोबर खा लो।' किंतु उसके ऐसा कहनेपर भी उत्तंकको वह गोबर खानेकी इच्छा नहीं हुई॥ ९९॥

तमाह पुरुषो भूयो भक्षयस्वोत्तङ्क मा विचारयोपाध्यायेनापि ते भक्षितं पूर्वमिति॥ १००॥

तब वह पुरुष फिर उनसे बोला—'उत्तंक! खा लो, विचार न करो। तुम्हारे उपाध्यायने भी पहले इसे खाया था'॥ १००॥

स एवमुक्तो बाढमित्युक्त्वा तदा तद् वृषभस्य मूत्रं पुरीषं च भक्षयित्वोत्तङ्कः सम्भ्रमादुत्थित एवाप उपस्पृश्य प्रतस्थे॥ १०१॥

उसके पुनः ऐसा कहनेपर उत्तंकने 'बहुत अच्छा' कहकर उसकी बात मान ली और उस बैलके गोबर तथा मूत्रको खा-पीकर उतावलीके कारण खड़े-खड़े ही आचमन किया। फिर वे चल दिये॥ १०१॥

यत्र स क्षत्रियः पौष्यस्तमुपेत्यासीनमपश्यदुत्तङ्कः। स उत्तङ्कस्तमुपेत्याशीर्भिरभिनन्द्योवाच॥ १०२॥

जहाँ वे क्षत्रिय राजा पौष्य रहते थे, वहाँ पहुँचकर उत्तंकने देखा—वे आसनपर बैठे हुए हैं, तब उत्तंकने उनके समीप जाकर आशीर्वादसे उन्हें प्रसन्न करते हुए कहा—॥ १०२॥

अर्थी भवन्तमुपागतोऽस्मीति स एनमभिवाद्योवाच भगवन् पौष्यः खल्वहं किं करवाणीति॥ १०३॥

'राजन्! मैं याचक होकर आपके पास आया हूँ।' राजाने उन्हें प्रणाम करके कहा—'भगवन्! मैं आपका सेवक पौष्य हूँ; कहिये, किस आज्ञाका पालन करूँ?'॥ १०३॥

तमुवाच गुर्वर्थं कुण्डलयोरर्थेनाभ्यागतोऽस्मीति। ये वै ते क्षत्रियया पिनद्धे कुण्डले ते भवान् दातुमर्हतीति॥ १०४॥

उत्तंकने पौष्यसे कहा—'राजन्! मैं गुरुदक्षिणाके निमित्त दो कुण्डलोंके लिये आपके यहाँ आया हूँ। आपकी क्षत्राणीने जिन्हें पहन रखा है, उन्हीं दोनों कुण्डलोंको आप मुझे दे दें। यह आपके योग्य कार्य है'॥ १०४॥

तं प्रत्युवाच पौष्यः प्रविश्यान्तःपुरं क्षत्रिया याच्यतामिति। स तेनैवमुक्तः प्रविश्यान्तःपुरं क्षत्रियां नापश्यत्॥ १०५॥

यह सुनकर पौष्यने उत्तंकसे कहा—'ब्रह्मन्! आप अन्तःपुरमें जाकर क्षत्राणीसे वे कुण्डल माँग लें।' राजाके ऐसा कहनेपर उत्तंकने अन्तःपुरमें प्रवेश किया, किंतु वहाँ उन्हें क्षत्राणी नहीं दिखायी दी॥ १०५॥

स पौष्यं पुनरुवाच न युक्तं भवताहमनृतेनोपचरितुं न हि तेऽन्तःपुरे क्षत्रिया सन्निहिता नैनां पश्यामि॥ १०६॥

तब वे पुनः राजा पौष्यके पास आकर बोले—'राजन्! आप मुझे संतुष्ट करनेके लिये झूठी बात कहकर मेरे साथ छल करें, यह आपको शोभा नहीं देता है। आपके अन्तःपुरमें क्षत्राणी नहीं हैं, क्योंकि वहाँ वे मुझे नहीं दिखायी देती हैं'॥ १०६॥

स एवमुक्तः पौष्यः क्षणमात्रं विमृश्योत्तङ्कं प्रत्युवाच नियतं भवानुच्छिष्टः स्मर तावन्न हि सा क्षत्रिया उच्छिष्टेनाशुचिना शक्या द्रष्टुं पतिव्रतात्वात् सैषा नाशुचेर्दर्शनमुपैतीति॥ १०७॥

उत्तंकके ऐसा कहनेपर पौष्यने एक क्षणतक विचार करके उन्हें उत्तर दिया—'निश्चय ही आप जूँठे मुँह हैं, स्मरण तो कीजिये, क्योंकि मेरी क्षत्राणी पतिव्रता होनेके कारण उच्छिष्ट—अपवित्र मनुष्यके द्वारा नहीं देखी जा सकती हैं। आप उच्छिष्ट होनेके कारण अपवित्र हैं, इसलिये वे आपकी दृष्टिमें नहीं आ रही हैं'॥ १०७॥

अथैवमुक्त उत्तङ्कः स्मृत्वोवाचास्ति खलु मयोत्थितेनोपस्पृष्टं गच्छतां चेति। तं पौष्यः प्रत्युवाच—एष ते व्यतिक्रमो नोत्थितेनोपस्पृष्टं भवतीति शीघ्रं गच्छता चेति॥ १०८॥

उनके ऐसा कहनेपर उत्तंकने स्मरण करके कहा—'हाँ, अवश्य ही मुझमें अशुद्धि रह गयी है। यहाँकी यात्रा करते समय मैंने खड़े होकर चलते-चलते आचमन किया है।' तब पौष्यने उनसे कहा—'ब्रह्मन्! यही आपके द्वारा विधिका उल्लंघन हुआ है। खड़े होकर नहीं शीघ्रतापूर्वक चलते-चलते किया हुआ आचमन नहींके बराबर है'॥ १०८॥

अथोत्तङ्कस्तं तथेत्युक्त्वा प्राङ्मुख उपविश्य सुप्रक्षालितपाणिपादवदनो निःशब्दाभिरफेनाभिस्त्रिभिरात्मगताभिरद्भिस्त्रिः पीत्वा द्विः परिमृज्य खान्यद्भिरुपस्पृश्य चान्तःपुरं प्रविवेश॥ १०९॥

तत्पश्चात् उत्तंक राजासे 'ठीक है' ऐसा कहकर हाथ-पैर और मुँह भलीभाँति धोकर पूर्वाभिमुख हो आसनपर बैठे और हृदयतक पहुँचनेयोग्य शब्द तथा फेनसे रहित शीतल जलके द्वारा तीन बार आचमन करके उन्होंने दो बार अँगूठेके मूल भागसे मुख पोंछा और नेत्र, नासिका आदि इन्द्रिय-गोलकोंका जलसहित अंगुलियोंद्वारा स्पर्श करके अन्तःपुरमें प्रवेश किया॥ १०९॥

ततस्तां क्षत्रियामपश्यत्, सा च दृष्ट्वैवोत्तङ्कं प्रत्युत्थायाभिवाद्योवाच स्वागतं ते भगवन्नाज्ञापय किं करवाणीति॥ ११०॥

तब उन्हें क्षत्राणीका दर्शन हुआ। महारानी उत्तंकको देखते ही उठकर खड़ी हो गयीं और प्रणाम करके बोलीं—'भगवन्! आपका स्वागत है, आज्ञा दीजिये, मैं क्या सेवा करूँ?'॥ ११०॥

स तामुवाचैते कुण्डले गुर्वर्थं मे भिक्षिते दातुमर्हसीति। सा प्रीता तेन तस्य सद्भावेन पात्रमयमनतिक्रमणीयश्चेति मत्वा ते कुण्डलेऽवमुच्यास्मै प्रायच्छदाह तक्षको नागराजः सुभृशं प्रार्थयत्यप्रमत्तो नेतुमर्हसीति॥ १११॥

उत्तंकने महारानीसे कहा—'देवि! मैंने गुरुके लिये आपके दोनों कुण्डलोंकी याचना की है। वे ही मुझे दे दें।' महारानी उत्तंकके उस सद्भाव (गुरुभक्ति)-से बहुत प्रसन्न हुईं। उन्होंने यह सोचकर कि 'ये सुपात्र ब्राह्मण हैं, इन्हें निराश नहीं लौटाना चाहिये'—अपने दोनों कुण्डल स्वयं उतारकर उन्हें दे दिये और उनसे कहा—'ब्रह्मन्! नागराज तक्षक इन कुण्डलोंको पानेके लिये बहुत प्रयत्नशील हैं। अतः आपको सावधान होकर इन्हें ले जाना चाहिये'॥ १११॥

स एवमुक्तस्तां क्षत्रियां प्रत्युवाच भगवति सुनिर्वृता भव। न मां शक्तस्तक्षको नागराजो धर्षयितुमिति॥ ११२॥

रानीके ऐसा कहनेपर उत्तंकने उन क्षत्राणीसे कहा—'देवि! आप निश्चिन्त रहें। नागराज तक्षक मुझसे भिड़नेका साहस नहीं कर सकता'॥ ११२॥

स एवमुक्त्वा तां क्षत्रियामामन्त्र्य पौष्यसकाशमागच्छत्। आह चैनं भोः पौष्य प्रीतोऽस्मीति तमुत्तङ्कं पौष्यः प्रत्युवाच॥ ११३॥

महारानीसे ऐसा कहकर उनसे आज्ञा ले उत्तंक राजा पौष्यके निकट आये और बोले—'महाराज पौष्य! मैं बहुत प्रसन्न हूँ (और आपसे विदा लेना चाहता हूँ)।' यह सुनकर पौष्यने उत्तंकसे कहा—॥ ११३॥

भगवंश्चिरेण पात्रमासाद्यते भवांश्च गुणवानतिथिस्तदिच्छे श्राद्धं कर्तुं क्रियतां क्षण इति॥ ११४॥

'भगवन्! बहुत दिनोंपर कोई सुपात्र ब्राह्मण मिलता है। आप गुणवान् अतिथि पधारे हैं, अतः मैं श्राद्ध करना चाहता हूँ। आप इसमें समय दीजिये'॥ ११४॥

तमुत्तङ्कः प्रत्युवाच कृतक्षण एवास्मि शीघ्रमिच्छामि यथोपपन्नमन्नमुपस्कृतं भवतेति स तथेत्युक्त्वा यथोपपन्नेनान्नेनैनं भोजयामास॥ ११५॥

तब उत्तंकने राजासे कहा—'मेरा समय तो दिया ही हुआ है, किंतु शीघ्रता चाहता हूँ। आपके यहाँ जो शुद्ध एवं सुसंस्कृत भोजन तैयार हो उसे मँगाइये।' राजाने 'बहुत अच्छा' कहकर जो भोजन-सामग्री प्रस्तुत थी, उसके द्वारा उन्हें भोजन कराया॥ ११५॥

अथोत्तङ्कः सकेशं शीतमन्नं दृष्ट्वा अशुच्येतदिति मत्वा तं पौष्यमुवाच यस्मान्मेऽशुच्यन्नं ददासि तस्मादन्धो भविष्यसीति॥ ११६॥

परंतु जब भोजन सामने आया, तब उत्तंकने देखा, उसमें बाल पड़ा है और वह ठण्डा हो चुका है। फिर तो 'यह अपवित्र अन्न है' ऐसा निश्चय करके वे राजा पौष्यसे बोले—'आप मुझे अपवित्र अन्न दे रहे हैं, अतः अन्धे हो जायँगे'॥ ११६॥

तं पौष्यः प्रत्युवाच यस्मात्त्वमप्यदुष्टमन्नं दूषयसि तस्मात्त्वमनपत्यो भविष्यसीति तमुत्तङ्कः प्रत्युवाच॥ ११७॥

तब पौष्यने भी उन्हें शापके बदले शाप देते हुए कहा—'आप शुद्ध अन्नको भी दूषित बता रहे हैं, अतः आप भी संतानहीन हो जायँगे।' तब उत्तंक राजा पौष्यसे बोले—॥ ११७॥

न युक्तं भवतान्नमशुचि दत्त्वा प्रतिशापं दातुं तस्मादन्नमेव प्रत्यक्षीकुरु। ततः पौष्यस्तदन्नमशुचि दृष्ट्वा तस्याशुचिभावमपरोक्षयामास॥ ११८॥

'महाराज! अपवित्र अन्न देकर फिर बदलेमें शाप देना आपके लिये कदापि उचित नहीं है। अतः पहले अन्नको ही प्रत्यक्ष देख लीजिये।' तब पौष्यने उस अन्नको अपवित्र देखकर उसकी अपवित्रताके कारणका पता लगाया॥ ११८॥

अथ तदन्नं मुक्तकेश्या स्त्रिया यत् कृतमनुष्णं सकेशं चाशुच्येतदिति मत्वा तमृषिमुत्तङ्कं प्रसादयामास॥ ११९॥

वह भोजन खुले केशवाली स्त्रीने तैयार किया था। अतः उसमें केश पड़ गया था। देरका बना होनेसे वह ठण्डा भी हो गया था। इसलिये वह अपवित्र है, इस निश्चयपर पहुँचकर राजाने उत्तंक ऋषिको प्रसन्न करते हुए कहा—॥ ११९॥

भगवन्नेतदज्ञानादन्नं सकेशमुपाहृतं शीतं तत् क्षामये भवन्तं न भवेयमन्ध इति तमुत्तङ्कः प्रत्युवाच॥ १२०॥

'भगवन्! यह केशयुक्त और शीतल अन्न अनजानमें आपके पास लाया गया है। अतः इस अपराधके लिये मैं आपसे क्षमा माँगता हूँ। आप ऐसी कृपा कीजिये, जिससे मैं अन्धा न होऊँ।' तब उत्तंकने राजासे कहा—॥ १२०॥

न मृषा ब्रवीमि भूत्वा त्वमन्धो न चिरादनन्धो भविष्यसीति। ममापि शापो भवता दत्तो न भवेदिति॥ १२१॥

'राजन्! मैं झूठ नहीं बोलता। आप पहले अन्धे होकर फिर थोड़े ही दिनोंमें इस दोषसे रहित हो जायँगे। अब आप भी ऐसी चेष्टा करें, जिससे आपका दिया हुआ शाप मुझपर लागू न हो'॥ १२१॥

तं पौष्यः प्रत्युवाच न चाहं शक्तः शापं प्रत्यादातुं न हि मे मन्युरद्याप्युपशमं गच्छति किं चैतद् भवता न ज्ञायते यथा—॥ १२२॥

नवनीतं हृदयं ब्राह्मणस्य
वाचि क्षुरो निहितस्तीक्ष्णधारः।
तदुभयमेतद् विपरीतं क्षत्रियस्य
वाङ्नवनीतं हृदयं तीक्ष्णधारम्। इति॥ १२३॥

यह सुनकर पौष्यने उत्तंकसे कहा—'मैं शापको लौटानेमें असमर्थ हूँ, मेरा क्रोध अभीतक शान्त नहीं हो रहा है। क्या आप यह नहीं जानते कि ब्राह्मणका हृदय मक्खनके समान मुलायम और जल्दी पिघलनेवाला होता है? केवल उसकी वाणीमें ही तीखी धारवाले छुरेका-सा प्रभाव होता है। किंतु ये दोनों ही बातें क्षत्रियके लिये विपरीत हैं। उसकी वाणी तो नवनीतके समान कोमल होती है, लेकिन हृदय पैनी धारवाले छुरेके समान तीखा होता है॥ १२२-१२३॥

तदेवं गते न शक्तोऽहं तीक्ष्णहृदयत्वात् तं शापमन्यथा कर्तुं गम्यतामिति। तमुत्तङ्कः प्रत्युवाच भवताहमन्नस्याशुचिभावमालक्ष्य प्रत्यनुनीतः प्राक् च तेऽभिहितम्॥ १२४॥ यस्माददुष्टमन्नं दूषयसि तस्मादनपत्यो भविष्यसीति। दुष्टे चान्ने नैष मम शापो भविष्यतीति॥ १२५॥

'अतः ऐसी दशामें कठोरहृदय होनेके कारण मैं उस शापको बदलनेमें असमर्थ हूँ। इसलिये आप जाइये।' तब उत्तंक बोले—'राजन्! आपने अन्नकी अपवित्रता देखकर मुझसे क्षमाके लिये अनुनय-विनय की है, किंतु पहले आपने कहा था कि 'तुम शुद्ध अन्नको दूषित बता रहे हो, इसलिये संतानहीन हो जाओगे।' इसके बाद अन्नका दोषयुक्त होना प्रमाणित हो गया, अतः आपका यह शाप मुझपर लागू नहीं होगा'॥ १२४-१२५॥

साधयामस्तावदित्युक्त्वा प्रातिष्ठतोत्तङ्कस्ते कुण्डले गृहीत्वा सोऽपश्यदथ पथि नग्नं क्षपणकमागच्छन्तं मुहुर्मुहुर्दृश्यमानमदृश्यमानं च॥ १२६॥

'अब हम अपना कार्यसाधन कर रहे हैं।' ऐसा कहकर उत्तंक दोनों कुण्डलोंको लेकर वहाँसे चल दिये। मार्गमें उन्होंने अपने पीछे आते हुए एक नग्न क्षपणकको देखा जो बार-बार दिखायी देता और छिप जाता था॥ १२६॥

अथोत्तङ्कस्ते कुण्डले संन्यस्य भूमावुदकार्थं प्रचक्रमे। एतस्मिन्नन्तरे स क्षपणकस्त्वरमाण उपसृत्य ते कुण्डले गृहीत्वा प्राद्रवत्॥ १२७॥

कुछ दूर जानेके बाद उत्तंकने उन कुण्डलोंको एक जलाशयके किनारे भूमिपर रख दिया और स्वयं जलसम्बन्धी कृत्य (शौच, स्नान, आचमन, संध्या-तर्पण आदि) करने लगे। इतनेमें ही वह क्षपणक बड़ी शीघ्रतासे साथ वहाँ आया और दोनों कुण्डलोंको लेकर चंपत हो गया॥ १२७॥

तमुत्तङ्कोऽभिसृत्य कृतोदककार्यः शुचिः प्रयतो नमो देवेभ्यो गुरुभ्यश्च कृत्वा महता जवेन समन्वयात्॥ १२८॥

उत्तंकने स्नान-तर्पण आदि जलसम्बन्धी कार्य पूर्ण करके शुद्ध एवं पवित्र होकर देवताओं तथा गुरुओंको नमस्कार किया और जलसे बाहर निकलकर बड़े वेगसे उस क्षपणकका पीछा किया॥ १२८॥

तस्य तक्षको दृढमासन्नः स तं जग्राह गृहीतमात्रः स्वं रूपं विहाय तक्षकस्वरूपं कृत्वा सहसा धरण्यां विवृतं महाबिलं प्रविवेश॥ १२९॥

वस्तवमें वह नागराज तक्षक ही था। दौड़नेसे उसके अत्यन्त समीपवर्ती हो गया। उत्तंकने उसे पकड़ लिया। पकड़में आते ही उसने क्षपणकका रूप त्याग दिया और अपने नागका रूप धारण करके वह सहसा प्रकट हुए पृथ्वीके एक बहुत बड़े विवरमें घुस गया॥ १२९॥

प्रविश्य च नागलोकं स्वभवनमगच्छत्। अथोत्तङ्कस्तस्याः क्षत्रियाया वचः स्मृत्वा तं तक्षकमन्वगच्छत्॥ १३०॥

बिलमें प्रवेश करके वह नागलोकमें अपने घर चला गया। तदनन्तर उस क्षत्राणीकी बातका स्मरण करके उत्तंकने नागलोकतक उस तक्षकका पीछा किया॥ १३०॥

स तद् बिलं दण्डकाष्ठेन चखान न चाशकत्। तं क्लिश्यमानमिन्द्रोऽपश्यत् स वज्रं प्रेषयामास॥ १३१॥

पहले तो उन्होंने उस विवरको अपने डंडेकी लकड़ीसे खोदना आरम्भ किया, किंतु इसमें उन्हें सफलता न मिली। उस समय इन्द्रने उन्हें क्लेश उठाते देखा तो उनकी सहायताके लिये अपना वज्र भेज दिया॥ १३१॥

गच्छास्य ब्राह्मणस्य साहाय्यं कुरुष्वेति। अथ वज्रं दण्डकाष्ठमनुप्रविश्य तद् बिलमदारयत्॥ १३२॥

उन्होंने वज्रसे कहा—'जाओ, इस ब्राह्मणकी सहायता करो।' तब वज्रने डंडेकी लकड़ीमें प्रवेश करके उस बिलको विदीर्ण कर दिया (इससे पाताललोकमें जानेके लिये मार्ग बन गया)॥ १३२॥

तमुत्तङ्कोऽनुविवेश तेनैव बिलेन प्रविश्य च तं नागलोकमपर्यन्तमनेकविधप्रासादहर्म्यवलभीनिर्यूहशतसंकुलमुच्चावचक्रीडाश्चर्यस्थानावकीर्णमपश्यत्॥ १३३॥ स तत्र नागांस्तानस्तुवदेभिः श्लोकैः—

य ऐरावतराजानः सर्पाः समितिशोभनाः।
क्षरन्त इव जीमूताः सविद्युत्पवनेरिताः॥ १३४॥

तब उत्तंक उस बिलमें घुस गये और उसी मार्गसे भीतर प्रवेश करके उन्होंने नागलोकका दर्शन किया, जिसकी कहीं सीमा नहीं थी। जो अनेक प्रकारके मन्दिरों, महलों, झुके हुए छज्जोंवाले ऊँचे-ऊँचे मण्डपों तथा सैकड़ों दरवाजोंसे सुशोभित और छोटे-बड़े अद्भुत क्रीडास्थानोंसे व्याप्त था। वहाँ उन्होंने इन श्लोकोंद्वारा उन नागोंका स्तवन किया—ऐरावत जिनके राजा हैं, जो समरांगणमें विशेष शोभा पाते हैं, बिजली और वायुसे प्रेरित हो जलकी वर्षा करनेवाले बादलोंकी भाँति बाणोंकी धारावाहिक वृष्टि करते हैं, उन सर्पोंकी जय हो॥ १३३-१३४॥

सुरूपा बहुरूपाश्च तथा कल्माषकुण्डलाः।
आदित्यवन्नाकपृष्ठे रेजुरैरावतोद्भवाः॥ १३५॥

ऐरावतकुलमें उत्पन्न नागगणोंमेंसे कितने ही सुन्दर रूपवाले हैं, उनके अनेक रूप हैं, वे विचित्र कुण्डल धारण करते हैं तथा आकाशमें सूर्यदेवकी भाँति स्वर्गलोकमें प्रकाशित होते हैं॥ १३५॥

बहूनि नागवेश्मानि गङ्गायास्तीर उत्तरे।
तत्रस्थानपि संस्तौमि महतः पन्नगानहम्॥ १३६॥

गंगाजीके उत्तर तटपर बहुत-से नागोंके घर हैं, वहाँ रहनेवाले बड़े-बड़े सर्पोंकी भी मैं स्तुति करता हूँ॥ १३६॥

इच्छेत् कोऽर्कांशुसेनायां चर्तुमैरावतं विना।
शतान्यशीतिरष्टौ च सहस्राणि च विंशतिः॥ १३७॥
सर्पाणां प्रग्रहा यान्ति धृतराष्ट्रो यदैजति।
ये चैनमुपसर्पन्ति ये च दूरपथं गताः॥ १३८॥
अहमैरावतज्येष्ठभ्रातृभ्योऽकरवं नमः।
यस्य वासः कुरुक्षेत्रे खाण्डवे चाभवत् पुरा॥ १३९॥
तं नागराजमस्तौषं कुण्डलार्थाय तक्षकम्।
तक्षकश्चाश्वसेनश्च नित्यं सहचरावुभौ॥ १४०॥
कुरुक्षेत्रं च वसतां नदीमिक्षुमतीमनु।
जघन्यजस्तक्षकस्य श्रुतसेनेति यः श्रुतः॥ १४१॥
अवसद् यो महद्युम्नि प्रार्थयन् नागमुख्यताम्।
करवाणि सदा चाहं नमस्तस्मै महात्मने॥ १४२॥

ऐरावत नागके सिवा दूसरा कौन है, जो सूर्यदेवकी प्रचण्ड किरणोंके सैन्यमें विचरनेकी इच्छा कर सकता है? ऐरावतके भाई धृतराष्ट्र जब सूर्यदेवके साथ प्रकाशित होते और चलते हैं, उस समय अट्ठाईस हजार आठ सर्प सूर्यके घोड़ोंकी बागडोर बनकर जाते हैं। जो इनके साथ जाते हैं और जो दूरके मार्गपर जा पहुँचे हैं, ऐरावतके उन सभी छोटे बन्धुओंको मैंने नमस्कार किया है। जिनका निवास सदा कुरुक्षेत्र और खाण्डववनमें रहा है, उन नागराज तक्षककी मैं कुण्डलोंके लिये स्तुति करता हूँ। तक्षक और अश्वसेन—ये दोनों नाग सदा साथ विचरनेवाले हैं। ये दोनों कुरुक्षेत्रमें इक्षुमती नदीके तटपर रहा करते थे। जो तक्षकके छोटे भाई हैं, श्रुतसेन नामसे जिनकी ख्याति है तथा जो पाताललोकमें नागराजकी पदवी पानेके लिये सूर्यदेवकी उपासना करते हुए कुरुक्षेत्रमें रहे हैं, उन महात्माको मैं सदा नमस्कार करता हूँ॥ १३७—१४२॥

एवं स्तुत्वा स विप्रर्षिरुत्तङ्को भुजगोत्तमान्।
नैव ते कुण्डले लेभे ततश्चिन्तामुपागमत्॥ १४३॥

इस प्रकार उन श्रेष्ठ नागोंकी स्तुति करनेपर भी जब ब्रह्मर्षि उत्तंक उन कुण्डलोंको न पा सके तो उन्हें बड़ी चिन्ता हुई॥ १४३॥

एवं स्तुवन्नपि नागान् यदा ते कुण्डले नालभत तदापश्यत् स्त्रियौ तन्त्रे अधिरोप्य सुवेमे पटं वयन्त्यौ। तस्मिंस्तन्त्रे कृष्णाः सिताश्च तन्तवश्चक्रं चापश्यद् द्वादशारं षड्भिः कुमारैः परिवर्त्यमानं पुरुषं चापश्यदश्वं च दर्शनीयम्॥ १४४॥ स तान् सर्वांस्तुष्टाव एभिर्मन्त्रवदेव श्लोकैः॥ १४५॥

इस प्रकार नागोंकी स्तुति करते रहनेपर भी जब वे उन दोनों कुण्डलोंको प्राप्त न कर सके, तब उन्हें वहाँ दो स्त्रियाँ दिखायी दीं, जो सुन्दर करघेपर रखकर सूतके तानेमें वस्त्र बुन रही थीं, उस तानेमें उत्तंक मुनिने काले और सफेद दो प्रकारके सूत और बारह अरोंका एक चक्र भी देखा, जिसे छः कुमार घुमा रहे थे। वहीं एक श्रेष्ठ पुरुष भी दिखायी दिये। जिनके साथ एक दर्शनीय अश्व भी था। उत्तंकने इन मन्त्रतुल्य श्लोकोंद्वारा उनकी स्तुति की—॥ १४४-१४५॥

त्रीण्यर्पितान्यत्र शतानि मध्ये
षष्टिश्च नित्यं चरति ध्रुवेऽस्मिन्।
चक्रे चतुर्विंशतिपर्वयोगे
षड् वै कुमाराः परिवर्तयन्ति॥ १४६॥

यह जो अविनाशी कालचक्र निरन्तर चल रहा है, इसके भीतर तीन सौ साठ अरे हैं, चौबीस पर्व हैं और इस चक्रको छः कुमार घुमा रहे हैं॥ १४६॥

तन्त्रं चेदं विश्वरूपे युवत्यौ
वयतस्तन्तून् सततं वर्तयन्त्यौ।
कृष्णान् सितांश्चैव विवर्तयन्त्यौ
भूतान्यजस्रं भुवनानि चैव॥ १४७॥

यह सम्पूर्ण विश्व जिनका स्वरूप है, ऐसी दो युवतियाँ सदा काले और सफेद तन्तुओंको इधर-उधर चलाती हुई इस वासना-जालरूपी वस्त्रको बुन रही हैं तथा वे ही सम्पूर्ण भूतों और समस्त भुवनोंका निरन्तर संचालन करती हैं॥ १४७॥

वज्रस्य भर्ता भुवनस्य गोप्ता
वृत्रस्य हन्ता नमुचेर्निहन्ता।
कृष्णे वसानो वसने महात्मा
सत्यानृते यो विविनक्ति लोके॥ १४८॥

यो वाजिनं गर्भमपां पुराणं
वैश्वानरं वाहनमभ्युपैति।
नमोऽस्तु तस्मै जगदीश्वराय
लोकत्रयेशाय पुरन्दराय॥ १४९॥

जो महात्मा वज्र धारण करके तीनों लोकोंकी रक्षा करते हैं, जिन्होंने वृत्रासुरका वध तथा नमुचि दानवका संहार किया है, जो काले रंगके दो वस्त्र पहनते और लोकमें सत्य एवं असत्यका विवेचन करते हैं; जलसे प्रकट हुए प्राचीन वैश्वानररूप अश्वको वाहन बनाकर उसपर चढ़ते हैं तथा जो तीनों लोकोंके शासक हैं, उन जगदीश्वर पुरन्दरको मेरा नमस्कार है॥ १४८-१४९॥

ततः स एनं पुरुषः प्राह प्रीतोऽस्मि तेऽहमनेन स्तोत्रेण किं ते प्रियं करवाणीति स तमुवाच॥ १५०॥

तब वह पुरुष उत्तंकसे बोला—'ब्रह्मन्! मैं तुम्हारे इस स्तोत्रसे बहुत प्रसन्न हूँ। कहो, तुम्हारा कौन-सा प्रिय कार्य करूँ?' यह सुनकर उत्तंकने कहा—॥ १५०॥

नागा मे वशमीयुरिति स चैनं पुरुषः पुनरुवाच एतमश्वमपाने धमस्वेति॥ १५१॥

'सब नाग मेरे अधीन हो जायँ'—उनके ऐसा कहनेपर वह पुरुष पुनः उत्तंकसे बोला—'इस घोड़ेकी गुदामें फूँक मारो'॥ १५१॥

ततोऽश्वस्यापानमधमत् ततोऽश्वाद्धम्यमानात् सर्वस्रोतोभ्यः पावकार्चिषः सधूमा निष्पेतुः॥ १५२॥

यह सुनकर उत्तंकने घोड़ेकी गुदामें फूँक मारी। फूँकनेसे घोड़ेके शरीरके समस्त छिद्रोंसे धूएँसहित आगकी लपटें निकलने लगीं॥ १५२॥

ताभिर्नागलोक उपधूपितेऽथ सम्भ्रान्तस्तक्षकोऽग्नेस्तेजोभयाद् विषण्णः कुण्डले गृहीत्वा सहसा भवनान्निष्क्रम्योत्तङ्कमुवाच॥ १५३॥

उस समय सारा नागलोक धूएँसे भर गया। फिर तो तक्षक घबरा गया और आगकी ज्वालाके भयसे दुःखी हो दोनों कुण्डल लिये सहसा घरसे निकल आया और उत्तंकसे बोला—॥ १५३॥

इमे कुण्डले गृह्णातु भवानिति स ते प्रतिजग्राहोत्तङ्कः प्रतिगृह्य च कुण्डलेऽचिन्तयत्॥ १५४॥

'ब्रह्मन्! आप ये दोनों कुण्डल ग्रहण कीजिये।' उत्तंकने उन कुण्डलोंको ले लिया। कुण्डल लेकर वे सोचने लगे—॥ १५४॥

अद्य तत् पुण्यकमुपाध्यायान्या दूरं चाहमभ्यागतः स कथं सम्भावयेयमिति तत एनं चिन्तयानमेव स पुरुष उवाच॥ १५५॥

'अहो! आज ही गुरुपत्नीका वह पुण्यकव्रत है और मैं बहुत दूर चला आया हूँ। ऐसी दशामें किस प्रकार इन कुण्डलोंद्वारा उनका सत्कार कर सकूँगा?' तब इस प्रकार चिन्तामें पड़े हुए उत्तंकसे उस पुरुषने कहा—॥ १५५॥

उत्तङ्क एनमेवाश्वमधिरोह त्वां क्षणेनैवोपाध्यायकुलं प्रापयिष्यतीति॥ १५६॥

'उत्तंक! इसी घोड़ेपर चढ़ जाओ। यह तुम्हें क्षणभरमें उपाध्यायके घर पहुँचा देगा'॥ १५६॥

स तथेत्युक्त्वा तमश्वमधिरुह्य प्रत्याजगामोपाध्यायकुलमुपाध्यायानी च स्नाता केशानावापयन्त्युपविष्टोत्तङ्को नागच्छतीति शापायास्य मनो दधे॥ १५७॥

'बहुत अच्छा' कहकर उत्तंक उस घोड़ेपर चढ़े और तुरंत उपाध्यायके घर आ पहुँचे। इधर गुरुपत्नी स्नान करके बैठी हुई अपने केश सँवार रही थीं। 'उत्तंक अबतक नहीं आया'—यह सोचकर उन्होंने शिष्यको शाप देनेका विचार कर लिया॥ १५७॥

अथ तस्मिन्नन्तरे स उत्तङ्कः प्रविश्य उपाध्यायकुलमुपाध्यायानीमभ्यवादयत् ते चास्यै कुण्डले प्रायच्छत् सा चैनं प्रत्युवाच॥ १५८॥

इसी बीचमें उत्तंकने उपाध्यायके घरमें प्रवेश करके गुरुपत्नीको प्रणाम किया और उन्हें वे दोनों कुण्डल दे दिये। तब गुरुपत्नीने उत्तंकसे कहा—॥ १५८॥

उत्तङ्क देशे कालेऽभ्यागतः स्वागतं ते वत्स त्वमनागसि मया न शप्तः श्रेयस्तवोपस्थितं सिद्धिमाप्नुहीति॥ १५९॥

'उत्तंक! तू ठीक समयपर उचित स्थानमें आ पहुँचा। वत्स! तेरा स्वागत है। अच्छा हुआ जो बिना अपराधके ही तुझे शाप नहीं दिया। तेरा कल्याण उपस्थित है, तुझे सिद्धि प्राप्त हो'॥ १५९॥

अथोत्तङ्क उपाध्यायमभ्यवादयत्। तमुपाध्यायः प्रत्युवाच वत्सोत्तङ्क स्वागतं ते किं चिरं कृतमिति॥ १६०॥

तदनन्तर उत्तंकने उपाध्यायके चरणोंमें प्रणाम किया। उपाध्यायने उससे कहा—'वत्स उत्तंक! तुम्हारा स्वागत है। लौटनेमें देर क्यों लगायी?'॥ १६०॥

तमुत्तङ्क उपाध्यायं प्रत्युवाच भोस्तक्षकेण मे नागराजेन विघ्नः कृतोऽस्मिन् कर्मणि तेनास्मि नागलोकं गतः॥ १६१॥

तब उत्तंकने उपाध्यायको उत्तर दिया—'भगवन्! नागराज तक्षकने इस कार्यमें विघ्न डाल दिया था। इसलिये मैं नागलोकमें चला गया था॥ १६१॥

तत्र च मया दृष्टे स्त्रियौ तन्त्रेऽधिरोप्य पटं वयन्त्यौ तस्मिंश्च कृष्णाः सिताश्च तन्तवः किं तत्॥ १६२॥

'वहीं मैंने दो स्त्रियाँ देखीं, जो करघेपर सूत रखकर कपड़ा बुन रही थीं। उस करघेमें काले और सफेद रंगके सूत लगे थे। वह सब क्या था?॥ १६२॥

तत्र च मया चक्रं दृष्टं द्वादशारं षट् चैनं कुमाराः परिवर्तयन्ति तदपि किम्। पुरुषश्चापि मया दृष्टः स चापि कः। अश्वश्चातिप्रमाणो दृष्टः स चापि कः॥ १६३॥

'वहीं मैंने एक चक्र भी देखा, जिसमें बारह अरे थे। छः कुमार उस चक्रको घुमा रहे थे। वह भी क्या था? वहाँ एक पुरुष भी मेरे देखनेमें आया था। वह कौन था? तथा एक बहुत बड़ा अश्व भी दिखायी दिया था। वह कौन था?॥ १६३॥

पथि गच्छता च मया ऋषभो दृष्टस्तं च पुरुषोऽधिरूढस्तेनास्मि सोपचारमुक्त उत्तङ्कास्य ऋषभस्य पुरीषं भक्षय उपाध्यायेनापि ते भक्षितमिति॥ १६४॥

इधरसे जाते समय मार्गमें मैंने एक बैल देखा, उसपर एक पुरुष सवार था। उस पुरुषने मुझसे आग्रहपूर्वक कहा—'उत्तंक! इस बैलका गोबर खा लो। तुम्हारे उपाध्यायने भी पहले इसे खाया है'॥ १६४॥

ततस्तस्य वचनान्मया तदृषभस्य पुरीषमुपयुक्तं स चापि कः। तदेतद् भवतोपदिष्टमिच्छेयं श्रोतुं किं तदिति। स तेनैवमुक्त उपाध्यायः प्रत्युवाच॥ १६५॥

'तब उस पुरुषके कहनेसे मैंने उस बैलका गोबर खा लिया। अतः वह बैल और पुरुष कौन थे? मैं आपके मुखसे सुनना चाहता हूँ, वह सब क्या था?' उत्तंकके इस प्रकार पूछनेपर उपाध्यायने उत्तर दिया—॥ १६५॥

ये ते स्त्रियौ धाता विधाता च ये च ते कृष्णाः सितास्तन्तवस्ते रात्र्यहनी। यदपि तच्चक्रं द्वादशारं षड् वै कुमाराः परिवर्तयन्ति तेऽपि षड् ऋतवः द्वादशारा द्वादश मासाः संवत्सरश्चक्रम्॥ १६६॥

'वे जो दोनों स्त्रियाँ थीं, वे धाता और विधाता हैं। जो काले और सफेद तन्तु थे, वे रात और दिन हैं। बारह अरोंसे युक्त चक्रको जो छः कुमार घुमा रहे थे, वे छः ऋतुएँ हैं। बारह महीने ही बारह अरे हैं। संवत्सर ही वह चक्र है॥ १६६॥

यः पुरुषः स पर्जन्यो योऽश्वः सोऽग्निर्यं ऋषभस्त्वया पथि गच्छता दृष्टः स ऐरावतो नागराट्॥ १६७॥

'जो पुरुष था, वह पर्जन्य (इन्द्र) है। जो अश्व था वह अग्नि है। इधरसे जाते समय मार्गमें तुमने जिस बैलको देखा था, वह नागराज ऐरावत हैं॥ १६७॥

यश्चैनमधिरूढः पुरुषः स चेन्द्रो यदपि ते भक्षितं तस्य ऋषभस्य पुरीषं तदमृतं तेन खल्वसि तस्मिन् नागभवने न व्यापन्नस्त्वम्॥ १६८॥

'और जो उसपर चढ़ा हुआ पुरुष था, वह इन्द्र है। तुमने बैलके जिस गोबरको खाया है, वह अमृत था। इसीलिये तुम नागलोकमें जाकर भी मरे नहीं॥ १६८॥

स हि भगवानिन्द्रो मम सखा त्वदनुक्रोशादिममनुग्रहं कृतवान्। तस्मात् कुण्डले गृहीत्वा पुनरागतोऽसि॥ १६९॥

'वे भगवान् इन्द्र मेरे सखा हैं। तुमपर कृपा करके ही उन्होंने यह अनुग्रह किया है। यही कारण है कि तुम दोनों कुण्डल लेकर फिर यहाँ लौट आये हो॥ १६९॥

तत् सौम्य गम्यतामनुजाने भवन्तं श्रेयोऽवाप्स्यसीति। स उपाध्यायेनानुज्ञातो भगवानुत्तङ्कः क्रुद्धस्तक्षकं प्रतिचिकीर्षमाणो हास्तिनपुरं प्रतस्थे॥ १७०॥

'अतः सौम्य! अब तुम जाओ, मैं तुम्हें जानेकी आज्ञा देता हूँ। तुम कल्याणके भागी होओगे।' उपाध्यायकी आज्ञा पाकर उत्तंक तक्षकके प्रति कुपित हो उससे बदला लेनेकी इच्छासे हस्तिनापुरकी ओर चल दिये॥ १७०॥

स हास्तिनपुरं प्राप्य न चिराद् विप्रसत्तमः।
समागच्छत राजानमुत्तङ्को जनमेजयम्॥ १७१॥

हस्तिनापुरमें शीघ्र पहुँचकर विप्रवर उत्तंक राजा जनमेजयसे मिले॥ १७१॥

पुरा तक्षशिलासंस्थं निवृत्तमपराजितम्।
सम्यग्विजयिनं दृष्ट्वा समन्तान्मन्त्रिभिर्वृतम्॥ १७२॥
तस्मै जयाशिषः पूर्वं यथान्यायं प्रयुज्य सः।
उवाचैनं वचः काले शब्दसम्पन्नया गिरा॥ १७३॥

जनमेजय पहले तक्षशिला गये थे। वे वहाँ जाकर पूर्ण विजय पा चुके थे। उत्तंकने मन्त्रियोंसे घिरे हुए

उत्तम विजयसे सम्पन्न राजा जनमेजयको देखकर पहले उन्हें न्यायपूर्वक जयसम्बन्धी आशीर्वाद दिया। तत्पश्चात् उचित समयपर उपयुक्त शब्दोंसे विभूषित वाणीद्वारा उनसे इस प्रकार कहा— ॥ १७२-१७३ ॥

उत्तङ्क उवाच

अन्यस्मिन् करणीये तु कार्ये पार्थिवसत्तम।
बाल्यादिवान्यदेव त्वं कुरुषे नृपसत्तम॥ १७४॥

उत्तंक बोले—नृपश्रेष्ठ! जहाँ तुम्हारे लिये करनेयोग्य दूसरा कार्य उपस्थित हो, वहाँ अज्ञानवश तुम कोई और ही कार्य कर रहे हो॥ १७४॥

सौतिरुवाच

एवमुक्तस्तु विप्रेण स राजा जनमेजयः।
अर्चयित्वा यथान्यायं प्रत्युवाच द्विजोत्तमम्॥ १७५॥

उग्रश्रवाजी कहते हैं—विप्रवर उत्तंकके ऐसा कहनेपर राजा जनमेजयने उन द्विजश्रेष्ठका विधिपूर्वक पूजन किया और इस प्रकार कहा॥ १७५॥

जनमेजय उवाच

आसां प्रजानां परिपालनेन
स्वं क्षत्रधर्मं परिपालयामि।
प्रब्रूहि मे किं करणीयमद्य
येनासि कार्येण समागतस्त्वम्॥ १७६॥

जनमेजय बोले—ब्रह्मन्! मैं इन प्रजाओंकी रक्षाद्वारा अपने क्षत्रियधर्मका पालन करता हूँ। बताइये, आज मेरे करनेयोग्य कौन-सा कार्य उपस्थित है? जिसके कारण आप यहाँ पधारे हैं॥ १७६॥

सौतिरुवाच

म एवमुक्तस्तु नृपोत्तमेन
द्विजोत्तमः पुण्यकृतां वरिष्ठः।
उवाच राजानमदीनसत्त्वं
स्वमेव कार्यं नृपते कुरुष्व॥ १७७॥

उग्रश्रवाजी कहते हैं—राजाओंमें श्रेष्ठ जनमेजयके इस प्रकार कहनेपर पुण्यात्माओंमें अग्रगण्य विप्रवर उत्तंकने उन उदार हृदयवाले नरेशसे कहा—'महाराज! यह कार्य मेरा नहीं, आपका ही है, आप उसे अवश्य करें'॥ १७७॥

उत्तङ्क उवाच

[illegible]कर्ण महीन्द्रेन्द्र येन ते हिंसितः पिता।
[illegible] प्रतिकुरुष्व त्वं पन्नगाय दुरात्मने॥ १७८॥

इतना कहकर उत्तंक फिर बोले—भूपालशिरोमणे! नागराज तक्षकने आपके पिताकी हत्या की है; अतः आप उस दुरात्मा सर्पसे इसका बदला लीजिये॥ १७८॥

कार्यकालं हि मन्येऽहं विधिदृष्टस्य कर्मणः।
तद्गच्छापचितिं राजन् पितुस्तस्य महात्मनः॥ १७९॥

मैं समझता हूँ, शत्रुनाशन-कार्यकी सिद्धिके लिये जो सर्पयज्ञरूप कर्म शास्त्रमें देखा गया है, उसके अनुष्ठानका यह उचित अवसर प्राप्त हुआ है। अतः राजन्! अपने महात्मा पिताकी मृत्युका बदला आप अवश्य लें॥ १७९॥

तेन ह्यनपराधी स दष्टो दुष्टान्तरात्मना।
पञ्चत्वमगमद् राजा वज्राहत इव द्रुमः॥ १८०॥

यद्यपि आपके पिता महाराज परीक्षित्‌ने कोई अपराध नहीं किया था तो भी उस दुष्टात्मा सर्पने उन्हें डँस लिया और वे वज्रके मारे हुए वृक्षकी भाँति तुरंत ही गिरकर कालके गालमें चले गये॥ १८०॥

बलदर्पसमुत्सिक्तस्तक्षकः पन्नगाधमः।
अकार्यं कृतवान् पापो योऽदशत् पितरं तव॥ १८१॥

सर्पोंमें अधम तक्षक अपने बलके घमण्डसे उन्मत्त रहता है। उस पापीने यह बड़ा भारी अनुचित कर्म किया जो आपके पिताको डँस लिया॥ १८१॥

राजर्षिवंशगोप्तारममरप्रतिमं नृपम्।
वियासुं काश्यपं चैव न्यवर्तयत पापकृत्॥ १८२॥

वे महाराज परीक्षित् राजर्षियोंके वंशकी रक्षा करनेवाले और देवताओंके समान तेजस्वी थे, काश्यप नामक एक ब्राह्मण आपके पिताकी रक्षा करनेके लिये उनके पास आना चाहते थे, किंतु उस पापाचारीने उन्हें लौटा दिया॥ १८२॥

होतुमर्हसि तं पापं ज्वलिते हव्यवाहने।
सर्पसत्रे महाराज त्वरितं तद् विधीयताम्॥ १८३॥

अतः महाराज! आप सर्पयज्ञका अनुष्ठान करके उसकी प्रज्वलित अग्निमें उस पापीको होम दीजिये; और जल्दी-से-जल्दी यह कार्य कर डालिये॥ १८३॥

एवं पितुश्चापचितिं कृतवांस्त्वं भविष्यसि।
मम प्रियं च सुमहत् कृतं राजन् भविष्यति॥ १८४॥
कर्मणः पृथिवीपाल मम येन दुरात्मना।
विघ्नः कृतो महाराज गुर्वर्थं चरतोऽनघ॥ १८५॥

ऐसा करके आप अपने पिताकी मृत्युका बदला चुका सकेंगे एवं मेरा भी अत्यन्त प्रिय कार्य सम्पन्न हो जायगा। समूची पृथ्वीका पालन करनेवाले नरेश! तक्षक

बड़ा दुरात्मा है। पापरहित महाराज! मैं गुरुजीके लिये एक कार्य करने जा रहा था, जिसमें उस दुष्टने बहुत बड़ा विघ्न डाल दिया था॥ १८४-१८५॥

सौतिरुवाच

एतच्छ्रुत्वा तु नृपतिस्तक्षकाय चुकोप ह।
उत्तङ्कवाक्यहविषा दीप्तोऽग्निर्हविषा यथा॥ १८६॥

उग्रश्रवाजी कहते हैं—महर्षियो! यह समाचार सुनकर राजा जनमेजय तक्षकपर कुपित हो उठे। उत्तंकके वाक्यने उनकी क्रोधाग्निमें घीका काम किया। जैसे घीकी आहुति पड़नेसे अग्नि प्रज्वलित हो उठती है, उसी प्रकार वे क्रोधसे अत्यन्त कुपित हो गये॥ १८६॥

अपृच्छत् स तदा राजा मन्त्रिणस्तान् सुदुःखितः।
उत्तङ्कस्यैव सांनिध्ये पितुः स्वर्गगतिं प्रति॥ १८७॥

उस समय राजा जनमेजयने अत्यन्त दुःखी होकर उत्तंकके निकट ही मन्त्रियोंसे पिताके स्वर्गगमनका समाचार पूछा॥ १८७॥

तदैव हि स राजेन्द्रो दुःखशोकाप्लुतोऽभवत्।
यदैव वृत्तं पितरमुत्तङ्कादशृणोत् तदा॥ १८८॥

उत्तंकके मुखसे जिस समय उन्होंने पिताके मरनेकी बात सुनी, उसी समय वे महाराज दुःख और शोकमें डूब गये॥ १८८॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि पौष्यपर्वणि तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आदिपर्वके अन्तर्गत पौष्यपर्वमें (पौष्याख्यानविषयक) तीसरा अध्याय पूरा हुआ॥ ३॥

~~○~~

(पौलोमपर्व)

चतुर्थोऽध्यायः

कथा-प्रवेश

लोमहर्षणपुत्र उग्रश्रवाः सौतिः पौराणिको नैमिषारण्ये शौनकस्य कुलपतेर्द्वादशवार्षिके सत्रे ऋषीनभ्यागतानुपतस्थे॥ १॥

नैमिषारण्यमें कुलपति शौनकके बारह वर्षोंतक चालू रहनेवाले सत्रमें उपस्थित महर्षियोंके समीप एक दिन लोमहर्षणपुत्र सूतनन्दन उग्रश्रवा आये। वे पुराणोंकी कथा कहनेमें कुशल थे॥ १॥

पौराणिकः पुराणे कृतश्रमः स कृताञ्जलिस्तानुवाच। किं भवन्तः श्रोतुमिच्छन्ति किमहं ब्रवाणीति॥ २॥

वे पुराणोंके ज्ञाता थे। उन्होंने पुराणविद्यामें बहुत परिश्रम किया था। वे नैमिषारण्यवासी महर्षियोंसे हाथ जोड़कर बोले—'पूज्यपाद महर्षिगण! आपलोग क्या सुनना चाहते हैं? मैं किस प्रसंगपर बोलूँ?'॥ २॥

तमृषय ऊचुः परमं लौमहर्षणे वक्ष्यामस्त्वां नः प्रतिवक्ष्यसि वचः शुश्रूषतां कथायोगं नः कथायोगे॥ ३॥

तब ऋषियोंने उनसे कहा—लोमहर्षणकुमार! हम आपको उत्तम प्रसंग बतलायेंगे और कथा-प्रसंग प्रारम्भ होनेपर सुननेकी इच्छा रखनेवाले हमलोगोंके समक्ष आप बहुत-सी कथाएँ कहेंगे॥ ३॥

तत्र भगवान् कुलपतिस्तु शौनकोऽग्निशरणमध्यास्ते॥ ४॥

किंतु पूज्यपाद कुलपति भगवान् शौनक अभी अग्निकी उपासनामें संलग्न हैं॥ ४॥

योऽसौ दिव्याः कथा वेद देवतासुरसंश्रिताः।
मनुष्योरगगन्धर्वकथा वेद च सर्वशः॥ ५॥

वे देवताओं और असुरोंसे सम्बन्ध रखनेवाली बहुत-सी दिव्य कथाएँ जानते हैं। मनुष्यों, नागों तथा गन्धर्वोंकी कथाओंसे भी वे सर्वथा परिचित हैं॥ ५॥

स चाप्यस्मिन् मखे सौते विद्वान् कुलपतिर्द्विजः।
दक्षो धृतव्रतो धीमाञ्छास्त्रे चारण्यके गुरुः॥ ६॥

सूतनन्दन! वे विद्वान् कुलपति विप्रवर शौनकजी भी इस यज्ञमें उपस्थित हैं। वे चतुर, उत्तम व्रतधारी तथा बुद्धिमान् हैं। शास्त्र (श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराण) तथा आरण्यक (बृहदारण्यक आदि)-के तो वे आचार्य ही हैं॥ ६॥

सत्यवादी शमपरस्तपस्वी नियतव्रतः।
सर्वेषामेव नो मान्यः स तावत् प्रतिपाल्यताम्॥ ७॥

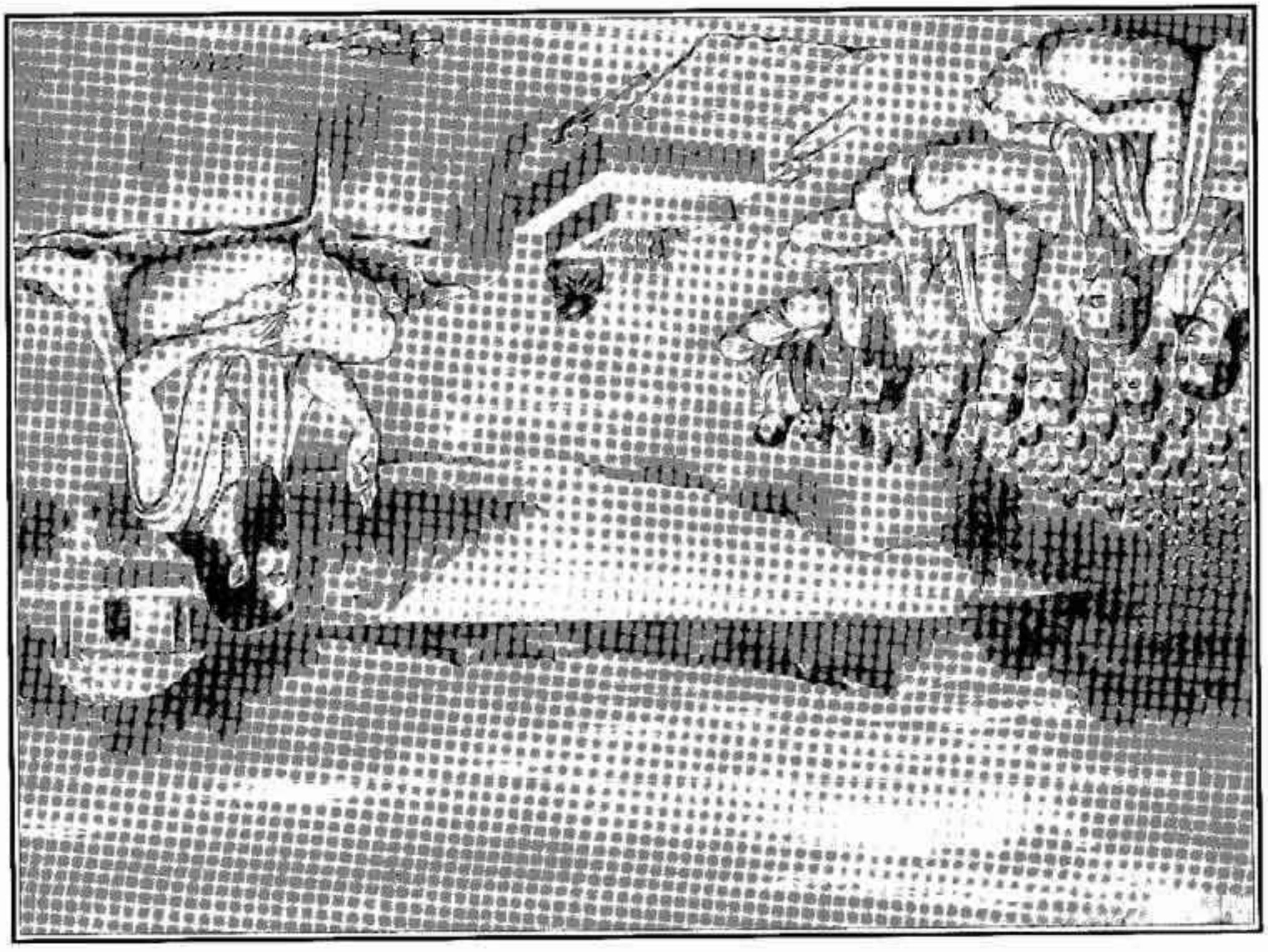

उपजातीके द्वारा महाभारतकी कथा

वे सदा सत्य बोलनेवाले, मन और इन्द्रियोंके संयममें तत्पर, तपस्वी और नियमपूर्वक व्रतको निबाहनेवाले हैं। वे हम सभी लोगोंके लिये सम्माननीय हैं; अतः जबतक उनका आना न हो, तबतक प्रतीक्षा कीजिये॥ ७॥

तस्मिन्नध्यासति गुरावासनं परमार्चितम्।
ततो वक्ष्यसि यत्त्वां स प्रक्ष्यति द्विजसत्तमः॥ ८॥

गुरुदेव शौनक जब यहाँ उत्तम आसनपर विराजमान हो जायँ, उस समय वे द्विजश्रेष्ठ आपसे जो कुछ पूछें, उसी प्रसंगको लेकर आप बोलियेगा॥ ८॥

सौतिरुवाच

एवमस्तु गुरौ तस्मिन्नुपविष्टे महात्मनि।
तेन पृष्टः कथाः पुण्या वक्ष्यामि विविधाश्रयाः॥ ९॥

उग्रश्रवाजीने कहा—एवमस्तु (ऐसा ही होगा), गुरुदेव महात्मा शौनकजीके बैठ जानेपर उन्हींके पूछनेके अनुसार मैं नाना प्रकारकी पुण्यदायिनी कथाएँ कहूँगा॥ ९॥

सोऽथ विप्रर्षभः सर्वं कृत्वा कार्यं यथाविधि।
देवान् वाग्भिः पितॄनद्भिस्तर्पयित्वाऽऽजगाम ह॥ १०॥
यत्र ब्रह्मर्षयः सिद्धाः सुखासीना धृतव्रताः।
यज्ञायतनमाश्रित्य सूतपुत्रपुरःसराः॥ ११॥

तदनन्तर विप्रशिरोमणि शौनकजी क्रमशः सब कार्योंका विधिपूर्वक सम्पादन करके वैदिक स्तुतियोंद्वारा देवताओंको और जलकी अंजलिद्वारा पितरोंको तृप्त करनेके पश्चात् उस स्थानपर आये, जहाँ उत्तम व्रतधारी सिद्ध-ब्रह्मर्षिगण यज्ञमण्डपमें सूतजीको आगे विराजमान करके सुखपूर्वक बैठे थे॥ १०-११॥

ऋत्विक्ष्वथ सदस्येषु स वै गृहपतिस्तदा।
उपविष्टेषूपविष्टः शौनकोऽथाब्रवीदिदम्॥ १२॥

ऋत्विजों और सदस्योंके बैठ जानेपर कुलपति शौनकजी भी वहाँ बैठे और इस प्रकार बोले॥ १२॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि पौलोमपर्वणि कथाप्रवेशो नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आदिपर्वके अन्तर्गत पौलोमपर्वमें कथा-प्रवेश नामक चौथा अध्याय पूरा हुआ॥ ४॥

पञ्चमोऽध्यायः

भृगुके आश्रमपर पुलोमा दानवका आगमन और उसकी अग्निदेवके साथ बातचीत

शौनक उवाच

पुराणमखिलं तात पिता तेऽधीतवान् पुरा।
कच्चित् त्वमपि तत् सर्वमधीषे लौमहर्षणे॥ १॥

शौनकजीने कहा—तात लोमहर्षणकुमार! पूर्वकालमें आपके पिताने सब पुराणोंका अध्ययन किया था। क्या आपने भी उन सबका अध्ययन किया है?॥ १॥

पुराणे हि कथा दिव्या आदिवंशाश्च धीमताम्।
कथ्यन्ते ये पुरास्माभिः श्रुतपूर्वाः पितुस्तव॥ २॥

पुराणमें दिव्य कथाएँ वर्णित हैं। परम बुद्धिमान् राजर्षियों और ब्रह्मर्षियोंके आदिवंश भी बताये गये हैं। जिनको पहले हमने आपके पिताके मुखसे सुना है॥ २॥

तत्र वंशमहं पूर्वं श्रोतुमिच्छामि भार्गवम्।
कथयस्व कथामेतां कल्याः स्म श्रवणे तव॥ ३॥

उनमेंसे प्रथम तो मैं भृगुवंशका ही वर्णन सुनना चाहता हूँ। अतः आप इसीसे सम्बन्ध रखनेवाली कथा कहिये। हम सब लोग आपकी कथा सुननेके लिये सर्वथा उद्यत हैं॥ ३॥

सौतिरुवाच

यदधीतं पुरा सम्यग् द्विजश्रेष्ठैर्महात्मभिः।
वैशम्पायनविप्राग्र्यैस्तैश्चापि कथितं यथा॥ ४॥

सूतपुत्र उग्रश्रवाने कहा—भृगुनन्दन! वैशम्पायन आदि श्रेष्ठ ब्राह्मणों और महात्मा द्विजवरोंने पूर्वकालमें जो पुराण भलीभाँति पढ़ा था और उन विद्वानोंने जिस प्रकार पुराणका वर्णन किया है, वह सब मुझे ज्ञात है॥ ४॥

यदधीतं च पित्रा मे सम्यक् चैव ततो मया।
तावच्छृणुष्व यो देवैः सेन्द्रैः सर्षिमरुद्गणैः॥ ५॥
पूजितः प्रवरो वंशो भार्गवो भृगुनन्दन।
इमं वंशमहं पूर्वं भार्गवं ते महामुने॥ ६॥
निगदामि यथा युक्तं पुराणाश्रयसंयुतम्।
भृगुर्महर्षिर्भगवान् ब्रह्मणा वै स्वयम्भुवा॥ ७॥
वरुणस्य क्रतौ जातः पावकादिति नः श्रुतम्।
भृगोः सुदयितः पुत्रश्च्यवनो नाम भार्गवः॥ ८॥

मेरे पिताने जिस पुराणविद्याका भलीभाँति अध्ययन किया था, वह सब मैंने उन्हींके मुखसे पढ़ी और सुनी

है। भृगुनन्दन! आप पहले उस सर्वश्रेष्ठ भृगुवंशका वर्णन सुनिये, जो देवता, इन्द्र, ऋषि और मरुद्गणोंसे पूजित है। महामुने! आपके इस अत्यन्त दिव्य भार्गववंशका परिचय देता हूँ। यह परिचय अद्भुत एवं युक्तियुक्त तो होगा ही, पुराणोंके आश्रयसे भी संयुक्त होगा। हमने सुना है कि स्वयम्भू ब्रह्माजीने वरुणके यज्ञमें महर्षि भगवान् भृगुको अग्निसे उत्पन्न किया था। भृगुके अत्यन्त प्रिय पुत्र च्यवन हुए, जिन्हें भार्गव भी कहते हैं॥ ५—८॥

च्यवनस्य च दायादः प्रमतिर्नाम धार्मिकः।
प्रमतेरप्यभूत् पुत्रो घृताच्यां रुरुरित्युत॥ ९॥

च्यवनके पुत्रका नाम प्रमति था, जो बड़े धर्मात्मा हुए। प्रमतिके घृताची नामक अप्सराके गर्भसे रुरु नामक पुत्रका जन्म हुआ॥ ९॥

रुरोरपि सुतो जज्ञे शुनको वेदपारगः।
प्रमद्वरायां धर्मात्मा तव पूर्वपितामहः॥ १०॥

रुरुके पुत्र शुनक थे, जिनका जन्म प्रमद्वराके गर्भसे हुआ था। शुनक वेदोंके पारंगत विद्वान् और धर्मात्मा थे। वे आपके पूर्व पितामह थे॥ १०॥

तपस्वी च यशस्वी च श्रुतवान् ब्रह्मवित्तमः।
धार्मिकः सत्यवादी च नियतो नियताशनः॥ ११॥

वे तपस्वी, यशस्वी, शास्त्रज्ञ तथा ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ थे। धर्मात्मा, सत्यवादी और मन-इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले थे। उनका आहार-विहार नियमित एवं परिमित था॥ ११॥

शौनक उवाच

सूतपुत्र यथा तस्य भार्गवस्य महात्मनः।
च्यवनत्वं परिख्यातं तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः॥ १२॥

शौनकजी बोले—सूतपुत्र! मैं पूछता हूँ कि महात्मा भार्गवका नाम च्यवन कैसे प्रसिद्ध हुआ? यह मुझे बताइये॥ १२॥

सौतिरुवाच

भृगोः सुदयिता भार्या पुलोमेत्यभिविश्रुता।
तस्यां समभवद् गर्भो भृगुवीर्यसमुद्भवः॥ १३॥

उग्रश्रवाजीने कहा—महामुने! भृगुकी पत्नीका नाम पुलोमा था। वह अपने पतिको बहुत ही प्यारी थी। उसके उदरमें भृगुजीके वीर्यसे उत्पन्न गर्भ पल रहा था॥ १३॥

तस्मिन् गर्भेऽथ सम्भूते पुलोमायां भृगूद्वह।
समये समशीलिन्यां धर्मपत्न्यां यशस्विनः॥ १४॥
अभिषेकाय निष्क्रान्ते भृगौ धर्मभृतां वरे।
आश्रमं तस्य रक्षोऽथ पुलोमाभ्याजगाम ह॥ १५॥

भृगुवंशशिरोमणे! पुलोमा यशस्वी भृगुकी अनुकूल शील-स्वभाववाली धर्मपत्नी थी। उसकी कुक्षिमें उस गर्भके प्रकट होनेपर एक समय धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ भृगुजी स्नान करनेके लिये आश्रमसे बाहर निकले। उस समय एक राक्षस, जिसका नाम भी पुलोमा ही था, उनके आश्रमपर आया॥ १४-१५॥

तं प्रविश्याश्रमं दृष्ट्वा भृगोर्भार्यामनिन्दिताम्।
हृच्छयेन समाविष्टो विचेताः समपद्यत॥ १६॥

आश्रममें प्रवेश करते ही उसकी दृष्टि महर्षि भृगुकी पतिव्रता पत्नीपर पड़ी और वह कामदेवके वशीभूत हो अपनी सुध-बुध खो बैठा॥ १६॥

अभ्यागतं तु तद्रक्षः पुलोमा चारुदर्शना।
न्यमन्त्रयत वन्येन फलमूलादिना तदा॥ १७॥

सुन्दरी पुलोमाने उस राक्षसको अभ्यागत अतिथि मानकर वनके फल-मूल आदिसे उसका सत्कार करनेके लिये उसे न्योता दिया॥ १७॥

तां तु रक्षस्तदा ब्रह्मन् हृच्छयेनाभिपीडितम्।
दृष्ट्वा हृष्टमभूद् राजन् जिहीर्षुस्तामनिन्दिताम्॥ १८॥

ब्रह्मन्! वह राक्षस कामसे पीड़ित हो रहा था। उस समय उसने वहाँ पुलोमाको अकेली देख बड़े हर्षका अनुभव किया, क्योंकि वह सती-साध्वी पुलोमाको हर ले जाना चाहता था॥ १८॥

जातमित्यब्रवीत् कार्यं जिहीर्षुर्मुदितः शुभाम्।
सा हि पूर्वं वृता तेन पुलोम्ना तु शुचिस्मिता॥ १९॥

मनमें उस शुभलक्षणा सतीके अपहरणकी इच्छा रखकर वह प्रसन्नतासे फूल उठा और मन-ही-मन बोला, 'मेरा तो काम बन गया।' पवित्र मुसकानवाली पुलोमाको पहले उस पुलोमा नामक राक्षसने वरण* किया था॥ १९॥

---

* बाल्यावस्थामें पुलोमा रो रही थी। उसके रोदनकी निवृत्तिके लिये पिताने डराते हुए कहा—'रे राक्षस! तू इसे ले जा।' घरमें पुलोमा राक्षस पहलेसे ही छिपा हुआ था। उसने मन-ही-मन वरण कर लिया—'यह मेरी पत्नी है।' बस इतनी ही थी। इसका अभिप्राय यह है कि हँसी-खेलमें भी या डाँटने-डपटनेके लिये भी बालकोंसे ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये और राक्षसका नाम भी नहीं रखना चाहिये।

तां तु प्रादात् पिता पश्चाद् भृगवे शास्त्रवत्तदा।
तस्य तत् किल्बिषं नित्यं हृदि वर्तति भार्गव॥ २०॥

किंतु पीछे उसके पिताने शास्त्रविधिके अनुसार महर्षि भृगुके साथ उसका विवाह कर दिया। भृगुनन्दन! उसके पिताका वह अपराध राक्षसके हृदयमें सदा काँटे-सा कसकता रहता था॥ २०॥

इदमन्तरमित्येवं हर्तुं चक्रे मनस्तदा।
अथाग्निशरणेऽपश्यज्ज्वलन्तं जातवेदसम्॥ २१॥

यही अच्छा मौका है, ऐसा विचारकर उसने उस समय पुलोमाको हर ले जानेका पक्का निश्चय कर लिया। इतनेहीमें राक्षसने देखा, अग्निहोत्र-गृहमें अग्निदेव प्रज्वलित हो रहे हैं॥ २१॥

तमपृच्छत् ततो रक्षः पावकं ज्वलितं तदा।
शंस मे कस्य भार्येयमग्ने पृच्छे ऋतेन वै॥ २२॥

तब पुलोमाने उस समय उस प्रज्वलित पावकसे पूछा—'अग्निदेव! मैं सत्यकी शपथ देकर पूछता हूँ, बताओ, यह किसकी पत्नी है?'॥ २२॥

मुखं त्वमसि देवानां वद पावक पृच्छते।
मया हीयं वृता पूर्वं भार्यार्थे वरवर्णिनी॥ २३॥

'पावक! तुम देवताओंके मुख हो। अतः मेरे पूछनेपर ठीक-ठीक बताओ। पहले तो मैंने ही इस सुन्दरीको अपनी पत्नी बनानेके लिये वरण किया था॥ २३॥

पश्चादिमां पिता प्रादाद् भृगवेऽनृतकारकः।
सेयं यदि वरारोहा भृगोर्भार्या रहोगता॥ २४॥
तथा सत्यं समाख्याहि जिहीर्षाम्याश्रमादिमाम्।
स मन्युस्तत्र हृदयं प्रदहन्निव तिष्ठति।
मत्पूर्वभार्यां यदिमां भृगुराप सुमध्यमाम्॥ २५॥

'किंतु बादमें असत्य व्यवहार करनेवाले इसके पिताने भृगुके साथ इसका विवाह कर दिया। यदि यह एकान्तमें मिली हुई सुन्दरी भृगुकी भार्या है तो वैसी बात सच-सच बता दो; क्योंकि मैं इसे इस आश्रमसे हर ले जाना चाहता हूँ। वह क्रोध आज मेरे हृदयको दग्ध-सा कर रहा है; इस सुमध्यमाको, जो पहले मेरी भार्या थी, भृगुने अन्यायपूर्वक हड़प लिया है'॥ २४-२५॥

सौतिरुवाच

एवं रक्षस्तमामन्त्र्य ज्वलितं जातवेदसम्।
शङ्कमानं भृगोर्भार्यां पुनः पुनरपृच्छत॥ २६॥

उग्रश्रवाजी कहते हैं—इस प्रकार वह राक्षस भृगुकी पत्नीके प्रति, यह मेरी है या भृगुकी—ऐसा संशय रखते हुए, प्रज्वलित अग्निको सम्बोधित करके बार-बार पूछने लगा—॥ २६॥

त्वमग्ने सर्वभूतानामन्तश्चरसि नित्यदा।
साक्षिवत् पुण्यपापेषु सत्यं ब्रूहि कवे वचः॥ २७॥

'अग्निदेव! तुम सदा सब प्राणियोंके भीतर निवास करते हो। सर्वज्ञ अग्ने! तुम पुण्य और पापके विषयमें साक्षीकी भाँति स्थित रहते हो; अतः सच्ची बात बताओ॥ २७॥

मत्पूर्वापहृता भार्या भृगुणानृतकारिणा।
सेयं यदि तथा मे त्वं सत्यमाख्यातुमर्हसि॥ २८॥

'असत्य बर्ताव करनेवाले भृगुने, जो पहले मेरी ही थी, उस भार्याका अपहरण किया है। यदि यह वही है, तो वैसी बात ठीक-ठीक बता दो॥ २८॥

श्रुत्वा त्वत्तो भृगोर्भार्यां हरिष्याम्याश्रमादिमाम्।
जातवेदः पश्यतस्ते वद सत्यां गिरं मम॥ २९॥

'सर्वज्ञ अग्निदेव! तुम्हारे मुखसे सब बातें सुनकर मैं भृगुकी इस भार्याको तुम्हारे देखते-देखते इस आश्रमसे हर ले जाऊँगा; इसलिये मुझसे सच्ची बात कहो'॥ २९॥

सौतिरुवाच

तस्यैतद् वचनं श्रुत्वा सप्तार्चिर्दुःखितोऽभवत्।
भीतोऽनृताच्च शापाच्च भृगोरित्यब्रवीच्छनैः॥ ३०॥

उग्रश्रवाजी कहते हैं—राक्षसकी यह बात सुनकर ज्वालामयी सात जिह्वाओंवाले अग्निदेव बहुत दुःखी हुए। एक ओर वे झूठसे डरते थे तो दूसरी ओर भृगुके शापसे; अतः धीरेसे इस प्रकार बोले॥ ३०॥

अग्निरुवाच

त्वया वृता पुलोमेयं पूर्वं दानवनन्दन।
किन्त्वियं विधिना पूर्वं मन्त्रवन्न वृता त्वया॥ ३१॥

अग्निदेव बोले—दानवनन्दन! इसमें संदेह नहीं कि पहले तुम्हींने इस पुलोमाका वरण किया था, किंतु विधिपूर्वक मन्त्रोच्चारण करते हुए इसके साथ तुमने विवाह नहीं किया था॥ ३१॥

पित्रा तु भृगवे दत्ता पुलोमेयं यशस्विनी।
ददाति न पिता तुभ्यं वरलोभान्महायशाः॥ ३२॥

पिताने तो यह यशस्विनी पुलोमा भृगुको ही दी है। तुम्हारे वरण करनेपर भी इसके महायशस्वी पिता तुम्हारे हाथमें इसे इसलिये नहीं देते थे कि उनके मनमें तुमसे श्रेष्ठ वर मिल जानेका लोभ था॥ ३२॥

अर्थेमां वेददृष्टेन कर्मणा विधिपूर्वकम्।
भार्यामृषिर्भृगुः प्राप मां पुरस्कृत्य दानव॥ ३३॥

दानव! तदनन्तर महर्षि भृगुने मुझे साक्षी बनाकर वेदोक्त क्रियाद्वारा विधिपूर्वक इसका पाणिग्रहण किया था॥ ३३॥

सेयमित्यवगच्छामि नानृतं वक्तुमुत्सहे।
नानृतं हि सदा लोके पूज्यते दानवोत्तम॥ ३४॥

यह वही है, ऐसा मैं जानता हूँ। इस विषयमें मैं झूठ नहीं बोल सकता। दानवश्रेष्ठ! लोकमें असत्यकी कभी पूजा नहीं होती है॥ ३४॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि पौलोमपर्वणि पुलोमाग्निसंवादे पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आदिपर्वके अन्तर्गत पौलोमपर्वमें पुलोमा-अग्निसंवादविषयक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५॥

≈≈○≈≈

षष्ठोऽध्यायः

महर्षि च्यवनका जन्म, उनके तेजसे पुलोमा राक्षसका भस्म होना तथा भृगुका अग्निदेवको शाप देना

सौतिरुवाच

अग्नेरथ वचः श्रुत्वा तद् रक्षः प्रजहार ताम्।
ब्रह्मन् वराहरूपेण मनोमारुतरंहसा॥ १॥

उग्रश्रवाजी कहते हैं—ब्रह्मन्! अग्निका यह वचन सुनकर उस राक्षसने वराहका रूप धारण करके मन और वायुके समान वेगसे उसका अपहरण किया॥ १॥

तस्याः स गर्भो निवसन् कुक्षौ भृगुकुलोद्वह।
रोषान्मातुश्च्युतः कुक्षेश्च्यवनस्तेन सोऽभवत्॥ २॥

भृगुवंशशिरोमणे! उस समय वह गर्भ जो अपनी माताकी कुक्षिमें निवास कर रहा था, अत्यन्त रोषके कारण योगबलसे माताके उदरसे च्युत होकर बाहर निकल आया। च्युत होनेके कारण ही उसका नाम च्यवन हुआ॥ २॥

तं दृष्ट्वा मातुरुदराच्च्युतमादित्यवर्चसम्।
रक्षो भस्मसाद्भूतं पपात परिमुच्य ताम्॥ ३॥

माताके उदरसे च्युत होकर गिरे हुए उस सूर्यके समान तेजस्वी गर्भको देखते ही वह राक्षस पुलोमाको छोड़कर गिर पड़ा और तत्काल जलकर भस्म हो गया॥ ३॥

स गृहीत्वा सुश्रोणी ससार भृगुनन्दनम्।
तं भार्गवं पुत्रं पुलोमा दुःखमूर्च्छिता॥ ४॥

कटिप्रदेशवाली पुलोमा दुःखसे मूर्च्छित हो किसी तरह सँभलकर भृगुकुलको आनन्दित करनेवाले अपने पुत्र भार्गव च्यवनको गोदमें लेकर चली॥ ४॥

तां ददर्श स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः।
रुदतीं बाष्पपूर्णाक्षीं भृगोर्भार्यामनिन्दिताम्॥ ५॥
सान्त्वयामास भगवान् वधूं ब्रह्मा पितामहः।
अश्रुबिन्दूद्भवा तस्याः प्रावर्तत महानदी॥ ६॥

सम्पूर्ण लोकोंके पितामह ब्रह्माजीने स्वयं भृगुकी उस पतिव्रता पत्नीको रोती और नेत्रोंसे आँसू बहाती देखा। तब पितामह भगवान् ब्रह्माने अपनी पुत्रवधूको सान्त्वना दी—उसे धीरज बँधाया। उसके आँसुओंकी बूँदोंसे एक बहुत बड़ी नदी प्रकट हो गयी॥ ५-६॥

आवर्तन्ती सृतिं तस्या भृगोः पत्न्यास्तपस्विनः।
तस्या मार्गं सृतवतीं दृष्ट्वा तु सरितं तदा॥ ७॥
नाम तस्यास्तदा नद्याश्चक्रे लोकपितामहः।
वधूसरेति भगवांश्च्यवनस्याश्रमं प्रति॥ ८॥

वह नदी तपस्वी भृगुकी उस पत्नीके मार्गको आप्लावित किये हुए थी। उस समय लोकपितामह भगवान् ब्रह्माने पुलोमाके मार्गका अनुसरण करनेवाली उस नदीको देखकर उसका नाम वधूसरा रख दिया, जो च्यवनके आश्रमके पास प्रवाहित होती है॥ ७-८॥

स एव च्यवनो जज्ञे भृगोः पुत्रः प्रतापवान्।
तं ददर्श पिता तत्र च्यवनं तां च भामिनीम्।
स पुलोमां ततो भार्यां पप्रच्छ कुपितो भृगुः॥ ९॥

इस प्रकार भृगुपुत्र प्रतापी च्यवनका जन्म हुआ। तदनन्तर पिता भृगुने वहाँ अपने पुत्र च्यवन तथा पत्नी पुलोमाको देखा और सब बातें जानकर उन्होंने अपनी भार्या पुलोमासे कुपित होकर पूछा—॥ ९॥

भृगुरुवाच

केनासि रक्षसे तस्मै कथिता त्वं जिहीर्षते।
न हि त्वां वेद तद् रक्षो मद्भार्यां चारुहासिनीम्॥ १०॥

भृगु बोले—कल्याणी! तुम्हें हर लेनेकी इच्छासे आये हुए उस राक्षसको किसने तुम्हारा परिचय दे दिया? मनोहर मुसकानवाली मेरी पत्नी तुझ पुलोमाको वह राक्षस नहीं जानता था॥ १०॥

तत्त्वमाख्याहि तं ह्यद्य शप्तुमिच्छाम्यहं रुषा।
बिभेति को न शापान्मे कस्य चायं व्यतिक्रमः॥ ११॥

प्रिये! ठीक-ठीक बताओ। आज मैं कुपित होकर अपने उस अपराधीको शाप देना चाहता हूँ। कौन मेरे शापसे नहीं डरता है? किसके द्वारा यह अपराध हुआ है?॥ ११॥

पुलोमोवाच

अग्निना भगवंस्तस्मै रक्षसेऽहं निवेदिता।
ततो मामनयद् रक्षः क्रोशन्तीं कुररीमिव॥ १२॥

पुलोमा बोली—भगवन्! अग्निदेवने उस राक्षसको मेरा परिचय दे दिया। इससे कुररीकी भाँति विलाप करती हुई मुझ अबलाको वह राक्षस उठा ले गया॥ १२॥

साहं तव सुतस्यास्य तेजसा परिमोक्षिता।
भस्मीभूतं च तद् रक्षो मामुत्सृज्य पपात वै॥ १३॥

आपके इस पुत्रके तेजसे मैं उस राक्षसके चंगुलसे छूट सकी हूँ। राक्षस मुझे छोड़कर गिरा और जलकर भस्म हो गया॥ १३॥

सौतिरुवाच

इति श्रुत्वा पुलोमाया भृगुः परममन्युमान्।
शशापाग्निमतिक्रुद्धः सर्वभक्षो भविष्यसि॥ १४॥

उग्रश्रवाजी कहते हैं—पुलोमाका यह वचन सुनकर परम क्रोधी महर्षि भृगुका क्रोध और भी बढ़ गया। उन्होंने अग्निदेवको शाप दिया—'तुम सर्वभक्षी हो जाओगे'॥ १४॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि पौलोमपर्वणि अग्निशापे षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आदिपर्वके अन्तर्गत पौलोमपर्वमें अग्निशापविषयक छठा अध्याय पूरा हुआ॥ ६॥

सप्तमोऽध्यायः

शापसे कुपित हुए अग्निदेवका अदृश्य होना और ब्रह्माजीका उनके शापको संकुचित करके उन्हें प्रसन्न करना

सौतिरुवाच

शप्तस्तु भृगुणा वह्निः क्रुद्धो वाक्यमथाब्रवीत्।
किमिदं साहसं ब्रह्मन् कृतवानसि मां प्रति॥ १॥

उग्रश्रवाजी कहते हैं—महर्षि भृगुके शाप देनेपर अग्निदेवने कुपित होकर यह बात कही—'ब्रह्मन्! तुमने मुझे शाप देनेका यह दुस्साहसपूर्ण कार्य क्यों किया है?'॥ १॥

धर्मे प्रयतमानस्य सत्यं च वदतः समम्।
पृष्टो यदब्रवं सत्यं व्यभिचारोऽत्र को मम॥ २॥

'मैं सदा धर्मके लिये प्रयत्नशील रहता और सत्य एवं पक्षपातशून्य वचन बोलता हूँ; अतः उस राक्षसके पूछनेपर यदि मैंने सच्ची बात कह दी तो इसमें मेरा क्या अपराध है?॥ २॥

पृष्टो हि साक्षी यः साक्ष्यं जानानोऽप्यन्यथा वदेत्।
स पूर्वानात्मनः सप्त कुले हन्यात् तथा परान्॥ ३॥

'जो साक्षी किसी बातको ठीक-ठीक जानते हुए भी पूछनेपर कुछ-का-कुछ कह देता—झूठ बोलता है, वह अपने कुलमें पहले और पीछेकी सात-सात पीढ़ियोंका नाश करता—उन्हें नरकमें ढकेलता है॥ ३॥

यश्च कार्यार्थतत्त्वज्ञो जानानोऽपि न भाषते।
सोऽपि तेनैव पापेन लिप्यते नात्र संशयः॥ ४॥

'इसी प्रकार जो किसी कार्यके वास्तविक रहस्यका ज्ञाता है, वह उसके पूछनेपर यदि जानते हुए भी नहीं बतलाता—मौन रह जाता है तो वह भी उसी पापसे लिप्त होता है; इसमें संशय नहीं है॥ ४॥

शक्तोऽहमपि शप्तुं त्वां मान्यास्तु ब्राह्मणा मम।
जानतोऽपि च ते ब्रह्मन् कथयिष्ये निबोध तत्॥ ५॥

'मैं भी तुम्हें शाप देनेकी शक्ति रखता हूँ तो भी नहीं देता हूँ; क्योंकि ब्राह्मण मेरे मान्य हैं। ब्रह्मन्! यद्यपि तुम सब कुछ जानते हो, तथापि मैं तुम्हें जो बता रहा हूँ, उसे ध्यान देकर सुनो—॥ ५॥

योगेन बहुधात्मानं कृत्वा तिष्ठामि मूर्तिषु।
अग्निहोत्रेषु सत्रेषु क्रियासु च मखेषु च॥ ६॥

'मैं योगसिद्धिके बलसे अपने-आपको अनेक

रूपोंमें प्रकट करके गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि आदि मूर्तियोंमें, नित्य किये जानेवाले अग्निहोत्रोंमें, अनेक व्यक्तियोंद्वारा संचालित सत्रोंमें, गर्भाधान आदि क्रियाओंमें तथा ज्योतिष्टोम आदि मखों (यज्ञों)-में सदा निवास करता हूँ॥ ६॥

वेदोक्तेन विधानेन मयि यद् हूयते हविः।
देवताः पितरश्चैव तेन तृप्ता भवन्ति वै॥ ७॥

'मुझमें वेदोक्त विधिसे जिस हविष्यकी आहुति दी जाती है, उसके द्वारा निश्चय ही देवता तथा पितृगण तृप्त होते हैं॥ ७॥

आपो देवगणाः सर्वे आपः पितृगणास्तथा।
दर्शश्च पौर्णमासश्च देवानां पितृभिः सह॥ ८॥

'जल ही देवता हैं तथा जल ही पितृगण हैं। दर्श और पौर्णमास याग पितरों तथा देवताओंके लिये किये जाते हैं॥ ८॥

देवताः पितरस्तस्मात् पितरश्चापि देवताः।
एकीभूताश्च पूज्यन्ते पृथक्त्वेन च पर्वसु॥ ९॥

'अतः देवता पितर हैं और पितर ही देवता हैं। विभिन्न पर्वोंपर ये दोनों एक रूपमें भी पूजे जाते हैं और पृथक्-पृथक् भी॥ ९॥

देवताः पितरश्चैव भुञ्जते मयि यद् हुतम्।
देवतानां पितॄणां च मुखमेतदहं स्मृतम्॥ १०॥

'मुझमें जो आहुति दी जाती है, उसे देवता और पितर दोनों भक्षण करते हैं। इसीलिये मैं देवताओं और पितरोंका मुख माना जाता हूँ॥ १०॥

अमावास्यां हि पितरः पौर्णमास्यां हि देवताः।
मुखेनैव हूयन्ते भुञ्जते च हुतं हविः॥ ११॥
सर्वभक्षः कथं त्वेषां भविष्यामि मुखं त्वहम्।

'अमावास्याको पितरोंके लिये और पूर्णिमाको देवताओंके लिये मेरे मुखसे ही आहुति दी जाती है और वे आहुतिके रूपमें प्राप्त हुए हविष्यका उपभोग करते हैं, सर्वभक्षी होनेपर मैं इन सबका मुख कैसे हो सकता हूँ?'॥ ११½॥

सौतिरुवाच

उक्त्वा ततो वह्निश्चक्रे संहारमात्मनः॥ १२॥
द्विजाग्निहोत्रेषु यज्ञसत्रक्रियासु च।
वषट्काराः स्वधास्वाहाविवर्जिताः॥ १३॥
ततः प्रजाः सर्वास्तत आसन् सुदुःखिताः।
सम्भ्रान्ता देवान् गत्वाब्रुवन् वचः॥ १४॥

उग्रश्रवाजी कहते हैं—महर्षियो! तदनन्तर अग्निदेवने कुछ सोच-विचारकर द्विजोंके अग्निहोत्र, यज्ञ, सत्र तथा संस्कारसम्बन्धी क्रियाओंमेंसे अपने-आपको समेट लिया। फिर तो अग्निके बिना समस्त प्रजा ॐकार, वषट्कार, स्वधा और स्वाहा आदिसे वंचित होकर अत्यन्त दुःखी हो गयी। तब महर्षिगण अत्यन्त उद्विग्न हो देवताओंके पास जाकर बोले—॥ १२—१४॥

अग्निनाशात् क्रियाभ्रंशाद् भ्रान्ता लोकास्त्रयोऽनघाः।
विदध्वमत्र यत् कार्यं न स्यात् कालात्ययो यथा॥ १५॥

'पापरहित देवगण! अग्निके अदृश्य हो जानेसे अग्निहोत्र आदि सम्पूर्ण क्रियाओंका लोप हो गया है। इससे तीनों लोकोंके प्राणी किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये हैं; अतः इस विषयमें जो आवश्यक कर्तव्य हो, उसे आपलोग करें। इसमें अधिक विलम्ब नहीं होना चाहिये'॥ १५॥

अथर्षयश्च देवाश्च ब्रह्माणमुपगम्य तु।
अग्नेरावेदयञ्छापं क्रियासंहारमेव च॥ १६॥

तत्पश्चात् ऋषि और देवता ब्रह्माजीके पास गये और अग्निको जो शाप मिला था एवं अग्निने सम्पूर्ण क्रियाओंसे जो अपने-आपको समेटकर अदृश्य कर लिया था, वह सब समाचार निवेदन करते हुए बोले—॥ १६॥

भृगुणा वै महाभाग शप्तोऽग्निः कारणान्तरे।
कथं देवमुखो भूत्वा यज्ञभागाग्रभुक् तथा॥ १७॥
हुतभुक् सर्वलोकेषु सर्वभक्षत्वमेष्यति।

'महाभाग! किसी कारणवश महर्षि भृगुने अग्निदेवको सर्वभक्षी होनेका शाप दे दिया है, किंतु वे सम्पूर्ण देवताओंके मुख, यज्ञभागके अग्रभोक्ता तथा सम्पूर्ण लोकोंमें दी हुई आहुतियोंका उपभोग करनेवाले होकर भी सर्वभक्षी कैसे हो सकेंगे?'॥ १७½॥

श्रुत्वा तु तद् वचस्तेषामग्निमाहूय विश्वकृत्॥ १८॥
उवाच वचनं श्लक्ष्णं भूतभावनमव्ययम्।
लोकानामिह सर्वेषां त्वं कर्ता चान्त एव च॥ १९॥
त्वं धारयसि लोकांस्त्रीन् क्रियाणां च प्रवर्तकः।
स तथा कुरु लोकेश नोच्छिद्येरन् यथा क्रियाः॥ २०॥
कस्मादेवं विमूढस्त्वमीश्वरः सन् हुताशन।
त्वं पवित्रं सदा लोके सर्वभूतगतिश्च ह॥ २१॥

देवताओं तथा ऋषियोंकी बात सुनकर विश्वविधाता ब्रह्माजीने प्राणियोंको उत्पन्न करनेवाले अविनाशी अग्निको

बुलाकर मधुर वाणीमें कहा—'हुताशन! यहाँ समस्त लोकोंके स्रष्टा और संहारक तुम्हीं हो, तुम्हीं तीनों लोकोंको धारण करनेवाले हो, सम्पूर्ण क्रियाओंके प्रवर्तक भी तुम्हीं हो। अतः लोकेश्वर! तुम ऐसा करो जिससे अग्निहोत्र आदि क्रियाओंका लोप न हो। तुम सबके स्वामी होकर भी इस प्रकार मूढ़ (मोहग्रस्त) कैसे हो गये? तुम संसारमें सदा पवित्र हो, समस्त प्राणियोंकी गति भी तुम्हीं हो॥ १८—२१॥

न त्वं सर्वशरीरेण सर्वभक्षत्वमेष्यसि।
अपाने ह्यर्चिषो यास्ते सर्वं भक्ष्यन्ति ताः शिखिन्॥ २२॥

'तुम सारे शरीरसे सर्वभक्षी नहीं होओगे। अग्निदेव! तुम्हारे अपानदेशमें जो ज्वालाएँ होंगी, वे ही सब कुछ भक्षण करेंगी॥ २२॥

क्रव्यादा च तनुर्या ते सा सर्वं भक्षयिष्यति।
यथा सूर्यांशुभिः स्पृष्टं सर्वं शुचि विभाव्यते॥ २३॥
तथा त्वदर्चिर्निर्दग्धं सर्वं शुचि भविष्यति।
त्वमग्ने परमं तेजः स्वप्रभावाद् विनिर्गतम्॥ २४॥
स्वतेजसैव तं शापं कुरु सत्यमृषेर्विभो।
देवानां चात्मनो भागं गृहाण त्वं मुखे हुतम्॥ २५॥

'इसके सिवा जो तुम्हारी क्रव्याद मूर्ति है (कच्चा मांस या मुर्दा जलानेवाली जो चिताकी आग है) वही सब कुछ भक्षण करेगी। जैसे सूर्यकी किरणोंसे स्पर्श होनेपर सब वस्तुएँ शुद्ध मानी जाती हैं, उसी प्रकार तुम्हारी ज्वालाओंसे दग्ध होनेपर सब कुछ शुद्ध हो जायगा। अग्निदेव! तुम अपने प्रभावसे ही प्रकट हुए उत्कृष्ट तेज हो; अतः विभो! अपने तेजसे ही महर्षिके उस शापको सत्य कर दिखाओ और अपने मुखमें आहुतिके रूपमें पड़े हुए देवताओंके तथा अपने भागको भी ग्रहण करो'॥ २३—२५॥

सौतिरुवाच

एवमस्त्विति तं वह्निः प्रत्युवाच पितामहम्।
जगाम शासनं कर्तुं देवस्य परमेष्ठिनः॥ २६॥

उग्रश्रवाजी कहते हैं—यह सुनकर अग्निदेवने पितामह ब्रह्माजीसे कहा—'एवमस्तु (ऐसा ही हो)।' यों कहकर वे भगवान् ब्रह्माजीके आदेशका पालन करनेके लिये चल दिये॥ २६॥

देवर्षयश्च मुदितास्ततो जग्मुर्यथागतम्।
ऋषयश्च यथापूर्वं क्रियाः सर्वाः प्रचक्रिरे॥ २७॥

इसके बाद देवर्षिगण अत्यन्त प्रसन्न हो जैसे आये थे वैसे ही चले गये। फिर ऋषि-महर्षि भी अग्निहोत्र आदि सम्पूर्ण कर्मोंका पूर्ववत् पालन करने लगे॥ २७॥

दिवि देवा मुमुदिरे भूतसङ्घाश्च लौकिकाः।
अग्निश्च परमां प्रीतिमवाप हतकल्मषः॥ २८॥

देवतालोग स्वर्गलोकमें आनन्दित हो गये और इस लोकके समस्त प्राणी भी बड़े प्रसन्न हुए। साथ ही शापजनित पाप कट जानेसे अग्निदेवको भी बड़ी प्रसन्नता हुई॥ २८॥

एवं स भगवाञ्छापं लेभेऽग्निर्भृगुतः पुरा।
एवमेष पुरावृत्त इतिहासोऽग्निशापजः।
पुलोम्नश्च विनाशोऽयं च्यवनस्य च सम्भवः॥ २९॥

इस प्रकार पूर्वकालमें भगवान् अग्निदेवको महर्षि भृगुसे शाप प्राप्त हुआ था। यही अग्निशापसम्बन्धी प्राचीन इतिहास है। पुलोमा राक्षसके विनाश और च्यवन मुनिके जन्मका वृत्तान्त भी यही है॥ २९॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि पौलोमपर्वणि अग्निशापमोचने सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आदिपर्वके अन्तर्गत पौलोमपर्वमें अग्निशापमोचनसम्बन्धी सातवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७॥

अष्टमोऽध्यायः

प्रमद्वराका जन्म, रुरुके साथ उसका वाग्दान तथा विवाहके पहले ही साँपके काटनेसे प्रमद्वराकी मृत्यु

सौतिरुवाच

स चापि च्यवनो ब्रह्मन् भार्गवोऽजनयत् सुतम्।
सुकन्यायां महात्मानं प्रमतिं दीप्ततेजसम्॥ १॥
प्रमतिस्तु रुरुं नाम घृताच्यां समजीजनत्।
रुरुः प्रमद्वरायां तु शुनकं समजीजनत्॥ २॥

उग्रश्रवाजी कहते हैं—ब्रह्मन्! भृगुपुत्र च्यवनने अपनी पत्नी सुकन्याके गर्भसे एक पुत्रको जन्म दिया, जिसका नाम प्रमति था। महात्मा प्रमति बड़े तेजस्वी थे। फिर प्रमतिने घृताची अप्सरासे रुरु नामक पुत्र उत्पन्न किया तथा रुरुके द्वारा प्रमद्वराके गर्भसे शुनकका जन्म हुआ॥ १-२॥

(शौनकस्तु महाभाग शुनकस्य सुतो भवान्।)
शुनकस्तु महासत्त्वः सर्वभार्गवनन्दनः।
जातस्तपसि तीव्रे च स्थितः स्थिरयशास्ततः॥ ३॥

महाभाग शौनकजी! आप शुनकके ही पुत्र होनेके कारण 'शौनक' कहलाते हैं। शुनक महान् सत्त्वगुणसे सम्पन्न तथा सम्पूर्ण भृगुवंशका आनन्द बढ़ानेवाले थे। वे जन्म लेते ही तीव्र तपस्यामें संलग्न हो गये। इससे उनका अविचल यश सब ओर फैल गया॥ ३॥

तस्य ब्रह्मन् रुरोः सर्वं चरितं भूरितेजसः।
विस्तरेण प्रवक्ष्यामि तच्छृणु त्वमशेषतः॥ ४॥

ब्रह्मन्! मैं महातेजस्वी रुरुके सम्पूर्ण चरित्रका विस्तारपूर्वक वर्णन करूँगा। वह सब-का-सब आप सुनिये॥ ४॥

ऋषिरासीन्महान् पूर्वं तपोविद्यासमन्वितः।
स्थूलकेश इति ख्यातः सर्वभूतहिते रतः॥ ५॥

पूर्वकालमें स्थूलकेश नामसे विख्यात एक तप और विद्यासे सम्पन्न महर्षि थे; जो समस्त प्राणियोंके हितमें लगे रहते थे॥ ५॥

एतस्मिन्नेव काले तु मेनकायां प्रजज्ञिवान्।
गन्धर्वराजो विप्रर्षे विश्वावसुरिति स्मृतः॥ ६॥

विप्रर्षे! इन्हीं महर्षिके समयकी बात है—गन्धर्वराज विश्वावसुने मेनकाके गर्भसे एक संतान उत्पन्न की॥ ६॥

अप्सरा मेनका तस्य तं गर्भं भृगुनन्दन।
उत्ससर्ज यथाकालं स्थूलकेशाश्रमं प्रति॥ ७॥

भृगुनन्दन! मेनका अप्सराने गन्धर्वराजद्वारा स्थापित किये हुए उस गर्भको समय पूरा होनेपर स्थूलकेश मुनिके आश्रमके निकट जन्म दिया॥ ७॥

उत्सृज्य चैव तं गर्भं नद्यास्तीरे जगाम सा।
अथ मेनका ब्रह्मन् निर्दया निरपत्रपा॥ ८॥

ब्रह्मन्! निर्दय और निर्लज्ज मेनका अप्सरा उस नवजात गर्भको वहीं नदीके तटपर छोड़कर चली गयी।

तमग्निगर्भाभां ज्वलन्तीमिव च श्रिया।
ददृशे समुत्सृष्टां नदीतीरे महानृषिः॥ ९॥
स तु तेजस्वी विजने बन्धुवर्जिताम्।
तदा कन्यां स्थूलकेशो महाद्विजः॥ १०॥
जग्राह च मुनिश्रेष्ठः कृपाविष्टः पुपोष च।
सा वरारोहा तस्याश्रमपदे शुभे॥ ११॥

तेजस्वी महर्षि स्थूलकेशने एकान्त स्थानमें त्यागी हुई उस बन्धुहीन कन्याको देखा, जो देवताओंकी बालिकाके समान दिव्य शोभासे प्रकाशित हो रही थी। उस समय उस कन्याको वैसी दशामें देखकर द्विजश्रेष्ठ मुनिवर स्थूलकेशके मनमें बड़ी दया आयी; अतः वे उसे उठा लाये और उसका पालन-पोषण करने लगे। वह सुन्दरी कन्या उनके शुभ आश्रमपर दिनोदिन बढ़ने लगी॥ ९—११॥

जातकाद्याः क्रियाश्चास्या विधिपूर्वं यथाक्रमम्।
स्थूलकेशो महाभागश्चकार सुमहानृषिः॥ १२॥

महाभाग महर्षि स्थूलकेशने क्रमशः उस बालिकाके जात-कर्मादि सब संस्कार विधिपूर्वक सम्पन्न किये॥ १२॥

प्रमदाभ्यो वरा सा तु सत्त्वरूपगुणान्विता।
ततः प्रमद्वरेत्यस्या नाम चक्रे महानृषिः॥ १३॥

वह बुद्धि, रूप और सब उत्तम गुणोंसे सुशोभित हो संसारकी समस्त प्रमदाओं (सुन्दरी स्त्रियों)-से श्रेष्ठ जान पड़ती थी; इसलिये महर्षिने उसका नाम 'प्रमद्वरा' रख दिया॥ १३॥

तामाश्रमपदे तस्य रुरुर्दृष्ट्वा प्रमद्वराम्।
बभूव किल धर्मात्मा मदनोपहतस्तदा॥ १४॥

एक दिन धर्मात्मा रुरुने महर्षिके आश्रममें उस प्रमद्वराको देखा। उसे देखते ही उनका हृदय तत्काल कामदेवके वशीभूत हो गया॥ १४॥

पितरं सखिभिः सोऽथ श्रावयामास भार्गवम्।
प्रमतिश्चाभ्ययाचत् तां स्थूलकेशं यशस्विनम्॥ १५॥

तब उन्होंने मित्रोंद्वारा अपने पिता भृगुवंशी प्रमतिको अपनी अवस्था कहलायी। तदनन्तर प्रमतिने यशस्वी स्थूलकेश मुनिसे (अपने पुत्रके लिये) उनकी वह कन्या माँगी॥ १५॥

ततः प्रादात् पिता कन्यां रुरवे तां प्रमद्वराम्।
विवाहं स्थापयित्वाग्रे नक्षत्रे भगदैवते॥ १६॥

तब पिताने अपनी कन्या प्रमद्वराका रुरुके लिये वाग्दान कर दिया और आगामी उत्तरफाल्गुनी नक्षत्रमें विवाहका मुहूर्त निश्चित किया॥ १६॥

ततः कतिपयाहस्य विवाहे समुपस्थिते।
सखीभिः क्रीडती सार्धं सा कन्या वरवर्णिनी॥ १७॥

तदनन्तर जब विवाहका मुहूर्त निकट आ गया, उसी समय वह सुन्दरी कन्या सखियोंके साथ क्रीड़ा करती हुई वनमें घूमने लगी॥ १७॥

नापश्यत् सम्प्रसुप्तं वै भुजङ्गं तिर्यगायतम्।
पदा चैनं समाक्रामन्मुमूर्षुः कालचोदिता॥ १८॥

मार्गमें एक साँप चौड़ी जगह घेरकर तिरछा सो रहा था। प्रमद्वराने उसे नहीं देखा। वह कालसे प्रेरित होकर मरना चाहती थी, इसलिये सर्पको पैरसे कुचलती हुई आगे निकल गयी॥ १८॥

स तस्याः सम्प्रमत्तायाश्चोदितः कालधर्मणा।
विषोपलिप्तान् दशनान् भृशमङ्गे न्यपातयत्॥ १९॥

उस समय कालधर्मसे प्रेरित हुए उस सर्पने उस असावधान कन्याके अंगमें बड़े जोरसे अपने विषभरे दाँत गड़ा दिये॥ १९॥

सा दष्टा तेन सर्पेण पपात सहसा भुवि।
विवर्णा विगतश्रीका भ्रष्टाभरणचेतना॥ २०॥
निरानन्दकरी तेषां बन्धूनां मुक्तमूर्धजा।
व्यसुरप्रेक्षणीया सा प्रेक्षणीयतमाभवत्॥ २१॥

उस सर्पके डँस लेनेपर वह सहसा पृथ्वीपर गिर पड़ी। उसके शरीरका रंग उड़ गया, शोभा नष्ट हो गयी, आभूषण इधर-उधर बिखर गये और चेतना लुप्त हो गयी। उसके बाल खुले हुए थे। अब वह अपने उन बन्धुजनोंके हृदयमें विषाद उत्पन्न कर रही थी। जो कुछ ही क्षण पहले अत्यन्त सुन्दरी एवं दर्शनीय थी, वही प्राणशून्य होनेके कारण अब देखनेयोग्य नहीं रह गयी॥ २०-२१॥

प्रसुप्ते वाभवच्चापि भुवि सर्पविषार्दिता।
भूयो मनोहरतरा बभूव तनुमध्यमा॥ २२॥

वह सर्पके विषसे पीड़ित होकर गाढ़ निद्रामें सोयी हुईकी भाँति भूमिपर पड़ी थी। उसके शरीरका मध्यभाग अत्यन्त कृश था। वह उस अचेतनावस्थामें भी अत्यन्त मनोहारिणी जान पड़ती थी॥ २२॥

ददर्श तां पिता चैव ये चैवान्ये तपस्विनः।
विचेष्टमानां पतितां भूतले पद्मवर्चसम्॥ २३॥

उसके पिता स्थूलकेशने तथा अन्य तपस्वी महात्माओंने भी आकर उसे देखा। वह कमलकी-सी कान्तिवाली किशोरी धरतीपर चेष्टारहित पड़ी थी॥ २३॥

ततः सर्वे द्विजवराः समाजग्मुः कृपान्विताः।
स्वस्त्यात्रेयो महाजानुः कुशिकः शङ्खमेखलः॥ २४॥
उद्दालकः कठश्चैव श्वेतश्चैव महायशाः।
भरद्वाजः कौणकुत्स्य आर्ष्टिषेणोऽथ गौतमः॥ २५॥
प्रमतिः सह पुत्रेण तथान्ये वनवासिनः।

तदनन्तर स्वस्त्यात्रेय, महाजानु, कुशिक, शंखमेखल, उद्दालक, कठ, महायशस्वी श्वेत, भरद्वाज, कौणकुत्स्य, आर्ष्टिषेण, गौतम, अपने पुत्र रुरुसहित प्रमति तथा अन्य सभी वनवासी श्रेष्ठ द्विज दयासे द्रवित होकर वहाँ आये॥ २४-२५½॥

तां ते कन्यां व्यसुं दृष्ट्वा भुजङ्गस्य विषार्दिताम्॥ २६॥
रुरुदुः कृपयाविष्टा रुरुस्त्वार्तो बहिर्ययौ।
ते च सर्वे द्विजश्रेष्ठास्तत्रैवोपाविशंस्तदा॥ २७॥

वे सब लोग उस कन्याको सर्पके विषसे पीड़ित हो प्राणशून्य हुई देख करुणावश रोने लगे। रुरु तो अत्यन्त आर्त होकर वहाँसे बाहर चला गया और शेष सभी द्विज उस समय वहीं बैठे रहे॥ २६-२७॥

इति श्रीमहाभारते आदिपर्वणि पौलोमपर्वणि प्रमद्वरासर्पदंशेऽष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत आदिपर्वके अन्तर्गत पौलोमपर्वमें प्रमद्वराके सर्पदंशनसे सम्बन्ध रखनेवाला आठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल २७½ श्लोक हैं)

~~○~~

नवमोऽध्यायः

रुरुकी आधी आयुसे प्रमद्वराका जीवित होना, रुरुके साथ उसका विवाह, रुरुका सर्पोंको मारनेका निश्चय तथा रुरु-डुण्डुभ-संवाद

सौतिरुवाच

तेषु तत्रोपविष्टेषु ब्राह्मणेषु महात्मसु।
रुरुश्चुक्रोश गहनं वनं गत्वातिदुःखितः॥ १॥
शोकेनाभिहतः सोऽथ विलपन् करुणं बहु।
अब्रवीद् वचनं शोचन् प्रियां स्मृत्वा प्रमद्वराम्॥ २॥
शेते सा भुवि तन्वङ्गी मम शोकविवर्धिनी।
बान्धवानां च सर्वेषां किं नु दुःखमतः परम्॥ ३॥

उग्रश्रवाजी कहते हैं—शौनकजी! वे ब्राह्मण प्रमद्वराके चारों ओर वहाँ बैठे थे, उसी समय रुरु अत्यन्त दुःखित हो गहन वनमें जाकर जोर-जोरसे रुदन